स्वच्छन्दतावादी समीक्षा: नये आयाम

डॉ० शर्मीला डाली कुद्दूसी

हिन्दुस्तानी एकेडेमी
इलाहाबाद

डॉ० शर्मीला डॉली कुद्दूसी

सहारनपुर में जन्मी श्रीमती शर्मीला डॉली कुद्दूसी की आरंभिक शिक्षा सैनिक स्कूल, नैनीताल में और माध्यमिक शिक्षा राजकीय कन्या इण्टर कालेज, फैजाबाद में। १९७७ में हाईस्कूल परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर आपने १९७९ में इण्टर, १९८२ में बी० ए० आनर्स, १९८३ में बी० डी० ए० (वाणिज्य), १९८४ में बी० एड०, १९८७ में एम० एड० करने के बाद अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से १९९० में हिन्दी में प्रथम श्रेणी में एम०ए० की उपाधि प्राप्त की। १९९५ में वहीं से एम० फिल० की भी उपाधि हिन्दी में प्राप्त करने के बाद सन् १९९९ में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से पी० एच-डी० की उपाधि ससम्मान प्राप्त की। प्रतिष्ठित कुद्दूसी सूफी परंपरा में जन्मी श्रीमती डा० शर्मीला डॉली कुद्दूसी आधुनिक हिन्दी साहित्य की स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा की प्रातिभ अध्येता हैं।

उनके सद्यः प्रकाशित ग्रन्थों– स्वच्छन्दतावादी समीक्षा : नये आयाम और देवराज उपाध्याय की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा–दृष्टि से उनके विशद अध्ययन की सरणियाँ उद्घाटित होती हैं।

हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के नये आयाम

हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के नये आयाम

डॉ० शर्मीला डॉली कुद्‌दूसी

हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

समर्पण

पितातुल्य अग्रज न्यायमूर्ति

श्री इशरत मसरूर कुद्दूसी

को

सादर समर्पित

प्रकाशकीय

सुधी पाठकों के समक्ष श्रीमती शर्मीला डॉली कुद्दूसी लिखित "हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी समीक्षाः के नये आयाम" शीर्षक रचना प्रकाशित करते हुए हमें प्रसन्नता हो रही है। स्वच्छन्दतावादी समीक्षा सम्बंधी मान्यताओं को प्रामाणिक एवं विश्वसनीय बनाने में लेखिका ने अधिकांश मानक आधार-ग्रन्थों का सावधान एवं सतर्क आलोड़न-विलोड़न किया है। यह श्रीमती कुद्दूसी की एकेडेमी के प्रति सदाशयता है कि उन्होंने इस ग्रंथ के प्रकाशन में अपनी ओर से मूल्यवान् योगदान किया है।

हिन्दुस्तानी एकेडेमी को इस ग्रंथ के प्रकाशन के लिए प्रेरणा अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्रो० अजब सिंहजी से प्राप्त हुई है।

विश्वास है कि स्वच्छन्दतावादी साहित्य और समीक्षा के स्वरूप को पहचानने में रुचि रखनेवालों को यह ग्रन्थ विशेषतया उपयोगी सिद्ध होगा और हिंदी के समीक्षा-साहित्य की श्रीवृद्धि करेगा।

महेन्द्र प्रताप
सचिव तथा कोषाध्यक्ष
हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद

दो शब्द

अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है कि डॉ० शर्मीला डॉली कुद्दूसी, प्राध्यापिका हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ की आलोचनात्मक कृति 'हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के नये आयाम' का प्रकाशन देश के महत्त्वपूर्ण एवं गौरवपूर्ण साहित्यिक संस्थान हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद से हो रहा है। इस ग्रन्थ के निर्माण में विदुषी लेखिका ने श्रमपूर्वक देश-विदेश के सर्जनात्मक एवं आलोचनात्मक संदर्भों को व्यापक फलक पर विश्लेषित किया है। आधुनिकता के कई संदर्भों को यह आलोचना कृति अपने अनुशीलन का आधार बनाती है। यह कृति अपने विषय-क्षेत्र में एक नया मानदण्ड स्थापित करती है। इस ग्रन्थ के निर्माण में विदुषी लेखिका ने स्वच्छन्दतावादी चिंतन को एक नया संदर्भ दिया है।

यह कृति पाश्चात्य काव्य अवधारणा को हिन्दी स्वच्छन्दतावादी वैचारिकता के माध्यम से हिन्दी साहित्यालोचन को एक नया संदर्भ देती है। लेखिका ने इस ग्रन्थ के निर्माण में देश-विदेश की सामग्री का उपयोग करते हुए इसे प्रामाणिक एवं उपयोगी बनाने का विशिष्ट प्रयत्न किया है।

मैं इस ग्रन्थ की लेखिका के उज्ज्वल भविष्य की कामना करता हूँ। मुझे पूर्ण विश्वास है कि भविष्य में इस तरह के गम्भीर आलोचनात्मक चिंतन-बिन्दुओं को रेखांकित करने के लिए प्रयत्नशील रहेंगी।

शुभकामनाओं सहित–

(डॉ० महमूदुर्रहमान)
कुलपति
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़

आमुख

'हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के नये आयाम' डॉ० शर्मीला डॉली कुद्दूसी, प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ द्वारा लिखित हिन्दी-समीक्षा-जगत् की एक महत्वपूर्ण कृति है। इस कृति में विदुषी लेखिका ने पूर्व स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों, स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों एवं नवस्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का समालोचनात्मक अनुशीलन प्रस्तुत किया है। यह प्रस्तुति अन्तर्राष्ट्रीय कला अवधारणा की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। हिन्दी स्वच्छन्दतावादी-छायावादी एवं पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी दृष्टि से यह अनुशीलन एक मौलिक एवं नवीन प्रयास है।

यह ग्रन्थ वैश्विक आलोचना की स्वच्छन्दतावादी कला अवधारणा की महत्तम उपलब्धि का एक मानक रूप है। इस समीक्षा कृति में हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा की विकास-रेखाएँ सुनिश्चित की गयी हैं। विदुषी लेखिका ने नवस्वच्छन्दतावाद की व्याख्या सामाजिक, मनोवैज्ञानिक एवं यथार्थवादी संदर्भों में की है। यथार्थवाद भी अपने पूर्णतम रूप में यहाँ विश्लेषित एवं अन्वेषित किया गया है। हंगरियन दार्शनिक जार्ज लुकाच की यथार्थवादी अवधारणा को विस्तार देती हुई विदुषी लेखिका ने यथार्थवादी सन्दर्भों की नवीन एवं मौलिक स्थापना प्रस्तुत की है। यह यथार्थवादी संदर्भ की पूर्णता एवं मानव व्यक्तित्व की परिपूर्णता का बोधक है। इस प्रकार इस समीक्षा कृति में नवस्वच्छन्दतावादी कला अवधारणा को स्वच्छन्दतावादी, यथार्थवादी वैचारिकता से जोड़कर एक नया निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। वस्तुतः नवस्वच्छन्दतावादी कला अवधारणा किस प्रकार स्वच्छन्दतावाद, यथार्थवाद से समन्वित होकर नवस्वच्छन्दतावाद का रूप धारण करती है। नवस्वच्छन्दतावादी चेतना वस्तुतः अपने में मनोवैज्ञानिक, मार्क्सवादी, लोक संस्कृति, लोकप्रिय संस्कृति एवं लोक-चेतना का व्यापक फलक लेकर चलता है। इसलिए कुछ विद्वानों ने इसे क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद के नाम से सम्बोधन दिया है। कुछ ने नवस्वच्छन्दतावादी संज्ञा से सम्बोधित किया है। कुछ ने इसे उत्तर स्वच्छन्दतावाद कहा है।

कुल मिलाकर भावबोध एवं शिल्पगत वैशिष्ट्य के अनुशीलन की दृष्टि से यह समीक्षा कृति स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के नये आयाम को नवस्वच्छन्दतावाद के पद पर प्रतिष्ठित करती है। यह एक उच्च स्तरीय उत्कृष्ट समीक्षा कृति है।

वस्तुतः यह एक ऐसी समीक्षा कृति है जो भारतीय एवं पाश्चात्य कलाओं की समीक्षा का एक नव्य मार्ग प्रशस्त करती है। निश्चय ही यह अध्ययन-अनुशीलन वैश्विक समीक्षा-जगत् के लिए एक उत्कृष्ट साहित्यिक कलात्मक विकास का द्योतक है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन से न केवल विषय प्रतिपादन के अध्ययन का मार्ग प्रशस्त होगा वरन् अनुशीलन के नये गवाक्ष भी खुलेंगे। लेखिका एवं विश्वविद्यालय दोनों का गौरव बढ़ेगा। हिन्दी जगत् इस आलोचना कृति का सम्मान करेगा। लेखिका ने श्रमपूर्वक कार्य किया है तथा देश-विदेश के सर्जनात्मक एवं आलोचनात्मक संदर्भों को यहाँ इकट्ठा किया गया है। आधुनिकता के कई संदर्भों को यह कृति अपनी व्याख्या का आधार बनाती है। कुल मिलाकर यह कृति अपने विषय-क्षेत्र में एक नूतन मानदण्ड स्थापित करती है। निश्चय ही इसके प्रकाशन में हिन्दी समीक्षा का विस्तार होगा।

मैं ऐसी उत्कृष्ट साहित्यिक समीक्षात्मक कृति के लिए इस ग्रंथ की लेखिका को साधुवाद देता हूँ और कामना करता हूँ कि वे भविष्य में इसी तरह निरन्तर अपनी समीक्षात्मक प्रतिभा के द्वारा आलोचना जगत् को नयी दिशा देती रहेंगी।

प्रोफेसर अजब सिंह
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़

प्राक्कथन

सम्पूर्ण विश्व का साहित्य किसी-न-किसी रूप में युगों-युगों से स्वच्छन्दतावाद से जुड़ा है। मानव-चेतना से सम्बद्ध होने के कारण स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति सभी देशों के जीवन और साहित्य में अभिव्यक्त होती है। मौलिक रूप से स्वच्छन्दतावाद एक विचारधारा है, जिसके परिप्रेक्ष्य में सामाजिक, आर्थिक तथा राजनैतिक परिस्थितियाँ प्रमुख रूप से अपना योग देती रही हैं । स्वच्छन्दतावाद की मूल चेतना क्रान्ति होती है, जो आधुनिक हिन्दी काव्य में राष्ट्रीय चेतना का रूप लेकर अभिव्यंजित होती है । इस प्रकार हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी विचारधारा का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक एवं विस्तृत हो जाता है । वैसे भी हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी अवधारणा का स्वरूप इतना व्यापक हो चुका है कि इसे परिभाषित् करना कठिन है।

स्वच्छन्दतावादी समीक्षा का जो रूप आज हमारे समक्ष उपस्थित है, वह इसके क्रमिक विकास का ही परिणाम है। सर्वप्रथम पूर्व स्वच्छन्दतावादी समीक्षा, स्वच्छन्दतावादी समीक्षा तत्पश्चात् नवस्वच्छन्दतावादी समीक्षा । डॉ० नामवर सिंह ने 'क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद' के रूप में स्वच्छन्दतावादी समीक्षा में एक नूतन अध्याय जोड़ा, किन्तु डॉ० अजब सिंह ने 'क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद' को नवस्वच्छन्दतावाद की एक प्रवृत्ति के रूप में विश्लेषित किया है । डॉ० बच्चन सिंह ने नवस्वच्छन्दतावाद को 'उत्तर स्वच्छन्दतावाद' के रूप में मूल्यांकित किया है ।

स्वच्छन्दतावाद एवं यथार्थवाद का समन्वित रूप ही नवस्वच्छन्दतावादी कला के रूप में उभरता है, जिसमें कवि की चेतना सक्रिय कल्पना के सहयोग से अभिव्यंजना करती है। यही इसकी अपनी विशिष्ट पहचान है । वास्तव में नवस्वच्छन्दतावाद सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में यथार्थवादी धरातल पर मानवीय अनुभूतियों की अभिव्यंजना करता है। नवस्वच्छन्दतावाद स्वच्छन्दतावाद का क्षय नहीं, वरन् व्यापक विस्तार है। स्वच्छन्दतावाद में 'नव' जोड़ने से स्वच्छन्दतावाद को विस्तार तो मिलता ही है, साथ ही, नवस्वच्छन्दतावाद अपने में पूर्ण युग सापेक्षता की चेतनाभिव्यक्ति बन जाता है।

वस्तुतः स्वच्छन्दतावाद और यथार्थ के कलात्मक समन्वित रूपायन से ही 'नवस्वच्छन्दतावाद' उभरता है। स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद जब कल्पना के सम्पर्क में आता है तो यथार्थ भावात्मक रूप लेता है और कवि की भावना से जुड़ जाता है तो वास्तव में यही 'नवस्वच्छन्दतावाद' की स्थिति होती है। इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी यथार्थ चेतना और सक्रिय कल्पना का समन्वित रूप और सामूहिक अचेतन जब एक साथ जुड़ जाता है तो वह स्वच्छन्दतावादी चेतना का रूप परिवर्तित कर देता है। स्वच्छन्दतावादी चेतना का यही परिवर्तन एवं विकसित रूप साहित्य में 'नवस्वच्छन्दतावाद' के नाम से अपनी पताका फहराता है। किन्तु आज नवस्वच्छन्दतावादी चिन्तन निरन्तर विकसन की स्थिति में आगे की ओर अग्रसर है और स्वयं में निरन्तर नये मूल्य और

नूतन संदर्भों का अधिग्रहण कर रहा है। मानववाद की नूतन व्याख्या ने मानव को अखण्डमानव रूप प्रदान किया जिसके कारण यथार्थवाद के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता उद्‌भूत हुई, फलस्वरूप 'रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थ' के रूप में यथार्थवाद की नूतन व्याख्या पल्लवित हुई। मानव के विकास के साथ अस्तित्ववाद भी नये परिप्रेक्ष्य में नवस्वच्छन्दतावाद से जुड़ता है। इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद एवं यथार्थवाद का समन्वित चिंतन मनोवैज्ञानिक एवं अस्तित्ववादी परिप्रेक्ष्य में सामाजिक धरातल पर जब आध्यात्मिकता से जुड़कर एकरूपता को प्राप्त होता है तो नवस्वच्छन्दतावाद सहज रूप में विस्तृत व्याख्या पाकर, सहज नवस्वच्छन्दतावाद के रूप में उभरता है। स्वच्छन्दतावादी चिंतन को पूर्णत्व में वैश्विक संदर्भों में आत्मसात् करने के लिए नवस्वच्छन्दतावाद को नये संदर्भों में ग्रहण करना होगा क्योंकि सम्पूर्ण विश्व साहित्य युगों-युगों से किसी-न-किसी रूप में स्वच्छन्दतावादी चिंतन से जुड़ा होता है। 'हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के नये आयाम' यही विषय है - इस ग्रन्थ का।

यह मेरा अत्यन्त सौभाग्य है कि मुझे स्वच्छन्दतावाद के महान् ज्ञाता और प्रख्यात अन्तर्राष्ट्रीय समीक्षक प्रोफेसर अजब सिंह के दिशा-निर्देशन में कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। अध्ययन के क्रम में मुझे प्रोफेसर अजब सिंह से अदम्य प्रेरणा, प्रोत्साहन और स्नेह प्राप्त हुआ। अपनी अत्यधिक व्यस्तता के मध्य भी डॉ० अजब सिंह ने मुझे समय दिया, जिसके लिए मैं हृदय से आभारी हूँ।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के कुलपति पदम्श्री डॉ० महमूदुर्रहमान के प्रति आभारी हूँ जिनके आशीर्वाद एवं प्रोत्साहन ने ही मुझे संबल प्रदान किया, मेरी इस पुस्तक के लिए विशेष आमुख लिखकर मुझे कृतार्थ किया। आपका आशीर्वाद सदैव मेरा मार्ग प्रशस्त करेगा।

प्रस्तुत अध्ययन प्रस्तुत करने के लिए मैं मौलाना आजाद लाइब्रेरी के श्री राकिम अली का विशेष आभार व्यक्त करना चाहती हूँ, जिनके अथक सहयोग के कारण ही यह ग्रन्थ-लेखन सम्भव हो सका।

वास्तव में इस ग्रंथ के प्रेरणा-स्रोत मेरे जीवनसाथी श्री निसार हैदर रिजवी हैं। इनके सहयोग के अभाव में तो मेरा यह ग्रंथ केवल सपना ही रह जाता। पारिवारिक दायित्वों से मुक्त करना, पुस्तकालय से पुस्तकें एवं लेखन-सामग्री लाकर देना, टंकण के लिए सामग्री इत्यादि उपलब्ध कराना यह सब श्री रिजवी के सहयोग एवं सहायता से ही सम्भव हो सका है।

इस अवसर पर मैं अपनी सात वर्षीय पुत्री आफरीन और चार वर्षीय पुत्रा अहमद को किसप्रकार विस्मृत कर सकती हूँ। मुझको शैक्षिक दायित्व से मुक्त करना और छोटे भाई को शिक्षा में सहायता दे कर आफरीन ने जो सहयोग दिया है मेरे लिए चिरस्मरणीय रहेगा।

इस अवसर पर मैं अपने स्व० पिता एम० एच० कुद्दूसी को विस्मृत नहीं कर पा रही हूँ। हिन्दी साहित्य एवं भाषा के प्रेरणा-स्रोत मेरे स्व० पिता ही थे।

अपनी माता श्रीमती जकिया कुद्‌दूसी को स्मरण करना आपना पुनीत दायित्व समझती हूँ, जिन्होंने मुझसे बहुत दूर रहकर मेरे लिए प्रार्थना की और जिनका आशीर्वाद मेरे ग्रन्थ-लेखन में सहयोगी रहा।

इस अवसर पर पितातुल्य अग्रज न्यायमूर्ति श्री आई० एम० कुद्‌दूसी का आभार व्यक्त करना केवल औपचारिकता होगी। ग्रन्थ-लेखन क्रम में मुझे आपसे जो स्नेह संबल-सहयोग एवं प्रेरणा मिली, उसी का परिणाम है कि आज इस ग्रन्थ का प्रकाशन सम्भव हो सका।

समस्त हिन्दुस्तानी एकेडेमी परिवार के प्रति मैं आभार व्यक्त करती हूँ। विशेषरूप से हिन्दुस्तानी एकेडेमी के अध्यक्ष श्री हरिमोहन मालवीय एवं सचिव श्री महेन्द्रप्रताप ने इस ग्रन्थ के प्रकाशन की जिम्मेदारी ली। मेरे सपनों की रेखाओं में रंग भरने का समस्त श्रेय हिन्दुस्तानी एकेडेमी परिवार को जाता है।

पांडुलिपि की सुन्दर टंकण व्यवस्था का श्रेय श्री एच० एम० त्रिपाठी को है जिसके लिए मैं श्री त्रिपाठी को हार्दिक धन्यवाद देती हूँ।

इन सबके अतिरिक्त मैं उन सभी सहयोगियों, मित्रों एवं शुभचिन्तकों को आभार व्यक्त करती हूँ, जिनकी प्रेरणा, प्रोत्साहन, सहयोग एवं स्नेह मुझे आगे बढ़ाने में सहायक बना है। अन्ततः मैं सभी ज्ञात-अज्ञात माध्यमों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करती हूँ।

शर्मीला डॉली कुद्दूसी
प्राध्यापिका, हिन्दी विभाग
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय
अलीगढ़

अनुक्रम

स्वच्छन्दतावादी समीक्षा : सैद्धान्तिक विश्लेषण

स्वच्छन्दतावाद अंग्रेजी के Romanticism का हिन्दी अनुवाद है। सर्वप्रथम **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने अपने **हिन्दी साहित्य के इतिहास** में Romanticism का हिन्दी अनुवाद **स्वच्छन्दतावाद** किया और क्रमानुसार **स्वच्छन्दतावाद और छायावाद** को रेखांकित भी किया। **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने डॉ० देवराज उपाध्याय की पुस्तक **रोमांटिक साहित्य-शास्त्र** की भूमिका में Romanticism के हिन्दी अनुवाद स्वच्छन्दतावाद पर आपत्ति भी की, किन्तु विकल्प रूप में कोई अन्य शब्द भी नहीं सुझाया अपितु कई स्थानों पर **डॉ० द्विवेदी** ने **Romanticism** को 'रोमांटिक साहित्य' के नाम से सम्बोधित किया है। **'प्रसाद जयन्ती'** 1962 के अवसर पर वाराणसी के सभा-भवन में हो रहे कार्यक्रम में इसे **'रमन्तवाद'** के नाम से अभिहित किया गया था।[1] किन्तु साथ ही इसे नकार दिया गया। हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि समालोचक **डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल** ने अपने शोध-प्रबन्ध **'आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य**, में Romanticism को रोमांसवाद कहा है।[2] **डॉ० रामधारी सिंह 'दिनकर'** ने भी अपनी पुस्तक **'शुद्ध कविता की खोज'** में 'रोमांटिस्ज़्मि को रोमांसवाद कहा है।[3]

डॉ० अजब सिंह ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक **'आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ'** में स्वच्छन्दतावाद के नामकरण के विषय में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि वादों की उत्पत्ति सदैव आलोचना से ही होती है। साहित्य सर्जना से सीधे नहीं। इस रोमांटिक युग की कविता की मुख्य प्रवृत्तियों को मापने के लिए उसे वाद (इज़्म) के रूप में परिलक्षित किया जाने लगा और उसका नामकरण संस्कार रोमांटिसिज़्म किया गया। इस प्रकार रोमांस से रोमांटिक और रोमांटिक से रोमांटिसिज़्म रूप निःसृत हुआ।[4] स्वच्छन्दतावादी चेतना परम्परावादी चेतना की प्रतिक्रियास्वरूप वैयक्तिक स्तर में कला, काव्य एवं साहित्य में अभिव्यंजित हुई है। आधुनिकता व उत्तर आधुनिकता-बोध की धारा में स्वच्छन्दतावादी आलोचना के नूतन आयाम संदर्भ लेते हैं। "आधुनिकता एक कलासापेक्षबोध है जिससे रचना में ताप का संचार होता है और जिसके अभाव में उत्पन्न श्रेष्ठ काव्य-सम्पदा के अधिकारी होते हुए भी **कवि रत्नाकर** आधुनिक नहीं बन सके। लेकिन घाट बाँधकर पानी को गहरा बनाना परम्परा का काम है और इस तत्त्व के अभाव में **मुक्तिबोध** क्लासिक नहीं बन सके।"[5]

अतः हिन्दी समीक्षा साहित्य में रोमांटिसिज़्म के लिए स्वच्छन्दतावाद शब्द के प्रयोग का ही प्रचलन है।

प्रसिद्ध पाश्चात्य विचारक **C.M. Bowra** अपनी प्रसिद्ध पुस्तक **The Romantic Imagination** में लिखते हैं कि Romantic शब्द का प्रयोग यूँ तो अनेकार्थों में लम्बे समय से होता चला आ रहा है किन्तु, इसको किसी एक अर्थ में परिभाषित करना आज भी कठिन-सा जान पड़ता

---

1. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ,* पृ० 1
2. डॉ रामेश्वर लाल खण्डेलवाल : *आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य,* प्र० सं०, पृ० 318-319
3. डॉ० रामधारी सिंह 'दिनकर' *शुद्ध कविता की खोज,* पृ० 29
4. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ,* पृ० 2
5. डॉ० विजयेन्द्र नारायण सिंह : *काव्यालोचन की समस्याएँ,* पृ० 123

है। वैसे अंग्रेजी समीक्षा साहित्य में Romantic शब्द का प्रयोग उस कविता के लिए किया जाता रहा है जो 1789 में **विलियम ब्लैक** के Song of Innocence से प्रारम्भ होकर **कीट्स** और **शेली** की मृत्यु के पश्चात् स्वयं भी समाप्त हो गयी। अंग्रेजी साहित्य में इस काल को Romantic Age कहा गया और इस काल की कविता Romantic कविता कहलायी। इसके प्रतिनिधि कवियों में थे—**Blake, Coleridge, Wordsworth, Shelley and Keats.**

पाश्चात्य स्वच्छन्दतावाद का प्रारम्भ वैसे 18वीं शताब्दी में हो चुका था किन्तु वह अपने पूर्ण विकास को 19वीं शताब्दी तक ही प्राप्त हो सकी थी। **प्रो० अजब सिंह** के अनुसार, "19वीं शताब्दी के प्रथम तीन दशकों में अंग्रेजी-साहित्य के सर्जनात्मक एवं आलोचनात्मक क्षेत्रों में एक नयी विचारधारा विकसित हुई, जिसे साहित्यकारों ने स्वच्छन्दतावादी चेतना की संज्ञा से सम्बोधित किया।"[1]

इस प्रकार अन्य भाषाओं के समान अंग्रेजी साहित्यिक आलोचना का भी अपना इतिहास है। अंग्रेजी साहित्यिक आलोचना के इतिहास को सामान्यतः तीन युगों में विभक्त किया जाता है। प्रथम युग एलिजाबेथ तथा मिलटन का है, दूसरा पुनरागमन (Verflovation) से फ्रांस की राज्यक्रान्ति तक तथा तीसरा युग फ्रांस की क्रान्ति से लेकर आधुनिक काल तक का है।"[2] अंग्रेजी 'Romanticism' का समय द्वितीय युग के अंत और तृतीय युग के आरम्भ का माना जाता है।"[3]

फ्रांस की राज्यक्रान्ति के फलस्वरूप ही विद्रोह के स्वर मुखरित हुए और इस विद्रोह ने साहित्यिक जगत् में भी अपने पैर पसारे। सामाजिक, राजनीतिक और व्यावसायिक क्रान्ति ने तो सम्पूर्ण यूरोप, फ्रांस, इंग्लैण्ड को भी अपने आगोश में ले लिया था। बंधनमुक्ति की लालसा प्रत्येक मनुष्य की प्रियसंगिनी बन चुकी थी। ऐसे में कला साहित्य अपने को किस प्रकार बाँध सकता था। इस प्रकार रोमांटिक कला का जन्म हुआ। अंग्रेजी के सर्जनात्मक और आलोचनात्मक साहित्य में एक नयी विचारधारा, नयी चेतना जागृत हुई जो तत्कालीन परम्परावादी सिद्धान्त का विरोध और विद्रोह रूप थी। परम्परावादी चेतना कला की चेतन-प्रक्रिया का परिणाम है, जिसमें भावना, कल्पना तथा अचेतन को कोई महत्त्व नहीं प्राप्त था किन्तु **वर्ड्सवर्थ** और **कॉलरिज** नवीन सर्जनात्मक विचारधारा के उन्नायक थे। प्रतिभा, प्रेरणा, कल्पना और आविष्कार सभी शब्द उसके काव्यशास्त्र के भण्डार में थे। उनके संयुक्त प्रयत्न से ही स्वच्छन्दतावाद ने एक नवीन आन्दोलन का रूप धारण किया था।[4]

वर्ड्सवर्थ, कॉलरिज, शेली ये सभी कवि अपने युग-विशेष की केवल विचारधारा का ही प्रतिनिधित्व नहीं करते वरन् इन सभी के पीछे एक अलग संस्कृति की लहर स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है और अपनी उस विशेष संस्कृति की लहर को प्रवाहित करनेवाले ये समस्त कवि उस लहर के सर्वोच्च शिखर भी हैं। इन सभी कवियो के प्रयत्नों का ही परिणाम है कि आज अंग्रेजी साहित्य-शास्त्र में साहित्यिक आलोचना का एक सर्वथा भिन्न स्थान है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक स्वच्छन्दतावादी समीक्षक **डॉ० देवराज उपाध्याय** ने अपनी एकमात्र पुस्तक **'रोमांटिक साहित्य-शास्त्र'** में पाश्चात्य स्वच्छन्दतावाद पर चर्चा करते हुए **वर्ड्सवर्थ** एवं **कॉलरिज** के

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 9
2. डॉ० देवराज उपाध्याय : *अपनी बात, रोमांटिक साहित्य-शास्त्र,*
3. वही,
4. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 9

संयुक्त प्रयास **Lyrical Ballads** का विशेष रूप से उल्लेख किया है। यहाँ तक कि **Lyrical Ballads** की भूमिका को आप रोमांटिक काव्यशास्त्र का बाइबिल मानते हैं और इसी को पाश्चात्य रोमांटिक साहित्य-शास्त्र का आरम्भ भी मानते हैं।

'Lyrical Ballads' की कविताएँ वैयक्तिक अनुभूतियों की आधारशिला पर उन्मुक्त रूप से लिखी गयी थीं। कला जगत् की कृत्रिमता को दूर करने का यह एक प्रयास था। इस काव्य-सर्जना में स्वाभाविकता और उन्मुक्तता को विशेष स्थान मिला था, साथ ही, कविता का रुझान उपेक्षित घटनाओं, पात्रों, निम्न तथा ग्रामीण जीवन तथा स्वाभाविक भाषा के प्रयोग की ओर था। काव्य को सामान्य जीवन से मिलाने तथा दैनिक जीवन को अलौकिकता प्रदान करने का यह एक सम्मिलित प्रयास था। यही कारण है कि **Lyrical Ballads** की भूमिका **अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद** का घोषणा-पत्र मानी जाती है। स्वच्छन्दतावादी कविता में आलंकारिकता का विरोध तथा अनुभूति व कल्पनाशीलता की प्रधानता मिलती है। स्वच्छन्दतावादी कवि प्रकृति के अनन्य भक्त थे जिनके कारण प्रकृति-प्रेम एक प्रकार से स्वच्छन्दतावाद का पर्याय बन गया। 'Back to the nature' के नारे के साथ रोमांटिक कवियों ने ग्रामों की ओर प्रस्थान किया, प्रकृति के प्रत्येक रूप को निहारा तथा उसके रस का आस्वादन किया।

स्वच्छन्दतावाद अपने आप में एक क्रांतिकारी आन्दोलन है। विद्रोह उसका मूल और क्रांति जननी है। इसमें परम्परा एवं रूढ़ियों के प्रति विद्रोह भी है। स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन फ्रांस की राज्यक्रांति से प्रेरित हुआ। "स्वतंत्रता, भ्रातृत्व तथा समानता का जो मंत्र इसने यूरोप में फूँका उसका प्रभाव इंग्लैण्ड पर पड़ा। इसके अतिरिक्त जर्मन अध्यात्म-दर्शन तथा सौन्दर्य-दर्शन का भी प्रभाव अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद पर पड़ा।[1] **कॉलरिज** भी जर्मन अध्यात्म-दर्शन और सौन्दर्य-दर्शन से इतना अधिक प्रभावित हुआ कि उसने **काण्ट** तथा **शेलिंग** के विचारों को अपनाया और इस प्रकार काव्यात्मक कल्पना का एक नवीन सिद्धान्त उसने स्वच्छन्दतावादी साहित्य में प्रतिपादित किया। इधर फ्रांस में **जैकब बोडमर** तथा **हेनरिच मिलर** ने साहित्यिक सत्ता का भार वहन न कर पाने के कारण राष्ट्रीय साहित्य अपेक्षा अनिवार्य घोषित कर दी। इसका परिणाम यह हुआ कि लोगों के विचार इस ओर केंद्रित हुए फलस्वरूप **गेटे, श्लेगल** तथा **नोवालिस** सरीखे साहित्यकारों को साहित्य में स्थान प्राप्त हुआ। इन सभी साहित्यकारों की रचनाओं में विशेष रूप से राष्ट्रीय चेतना की अभिव्यक्ति होती है।

स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा को प्रवाहित करने और उसके निर्माण में फ्रांस की औद्योगिक क्रांति ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। फ्रांस की क्रांति केवल आर्थिक, सामाजिक अथवा राजनीतिक परिवर्तन की ही क्रांति नहीं थी वरन् वह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आयी आमूल परिवर्तन की चाह थी। वैचारिक, वैज्ञानिक और सांस्कृतिक के क्षेत्रों में यहाँ तक कि काव्यजगत् में भी इस क्रांति ने प्रवेश कर आमूल परिवर्तन कर दिया था। नये-नये वैज्ञानिक आविष्कारों और साधनों के उपयोग से मनुष्य के अन्दर सभ्यता उत्पन्न हुई। वैज्ञानिक सार्वभौमिकता ने कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की कि अनायास ही परम्परा की कड़ियाँ स्वयमेव ही टूटती चली गयीं। विज्ञान के आश्चर्यजनक आविष्कारों की अभूतपूर्व प्रगति को देखकर मनुष्य का मन आन्दोलित हो चुका था और इस विचित्र आन्दोलन ने मनुष्य के अन्तर्जगत् में क्रांति उत्पन्न कर दी थी। मनुष्य का बहिर्जगत् अत्यधिक ऊँचाइयों को प्राप्त हो रहा था वहीं दूसरी ओर उसका अन्तर्जगत् उतनी ही गहराइयों को प्राप्त हो रहा था। मनुष्य के

1. डॉ० अजब सिंह : आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, पृ० 10

चतुर्दिक् परिवर्तन के कारण उसके बहिर्जगत् और अन्तर्जगत् दोनों में क्रांति की लपटें उठ रही थीं। इस प्रकार समाज में होने वाले आमूल परिवर्तनों और भाववादी दार्शनिक उद्भावनाओं के सम्मिलित प्रभाव से स्वच्छन्दतावादी प्रवाह का साहित्यिक दृष्टिकोण निर्मित हुआ था।[1] फ्रांस की पूँजीवादी क्रांति द्वारा रूसो वाल्टेयर और गेटे ने साहित्य में स्वच्छन्दतावादी धारा को नयी दिशा और शक्ति प्रदान की। इस प्रकार कविता में व्यक्ति की स्वतंत्रता, सामाजिक तथा राष्ट्रीय भावना का समावेश होता है तथा इसमें आन्तरिक संवेदनशीलता तथा अनुभूतियों की गम्भीर अभिव्यक्ति होती थी।[2] स्वच्छन्दतावादी धारा का मुख्य स्वर मर्यादाओं के विरोध में रहा है— चाहे वे साहित्यिक मर्यादाएं हों अथवा मानव जीवन सम्बन्धी हों। यह धारा सौन्दर्य, प्रेम और रहस्य को आध्यात्मिक अनुभूति पर पहुँचाने का प्रयत्न करती रही है। इसका विरोध एक ओर प्राचीन क्लासिकल काव्य की सामूहिकता से रहा है और दूसरी ओर यह यथार्थवाद की कथ्यात्मक पद्धति को पर्याप्त मानती है।[3]

स्वच्छन्दतावाद क्या है? इस सम्बन्ध में पाश्चात्य आलोचकों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से अपने विचार व्यक्त किये हैं। उसे हम इस प्रकार देख सकते हैं।

स्टैंढल ने रोमांटिक कविता के सम्बन्ध में दृढ़ एवं स्पष्ट रूप से कहा है कि, ''रोमांटिक कविता का केवल एक प्रकार ही नहीं, बल्कि कविता का एक तत्त्व भी है।''[4]

एफ० डब्ल्यू० वेटसन ने स्वच्छन्दतावाद को कुछ इस प्रकार परिभाषित किया है, ''प्रकृति-प्रतीक, जो चेतन और अचेतन मस्तिष्क के बीच समन्वयात्मक कड़ी है, वह स्वच्छन्दतावादी कविता की मूल इकाई है।''[5]

रीडर्स एनसाइक्लोपीडिया में स्वच्छन्दतावाद की व्याख्या इस प्रकार है, ''स्वच्छन्दतावाद की मुख्य विशेषताएँ हैं, व्यक्तिवाद, प्रकृति-पूजा, अतीतवाद, मध्ययुग के प्रति ललक, दार्शनिक आदर्शवाद, स्वतंत्र विचार धार्मिक, रहस्यवाद की ओर प्रतिक्रियात्मक मनोवृत्ति, राजनीतिक सत्ता और सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह, शारीरिक आवेग का उन्नयन, स्वान्तः सुखाय संवेग तथा मनोवेग का प्रोत्साहन तथा अलौकिक, दूषित, एकान्तिक और निर्दय के प्रति अबाध आकर्षण।''[6]

प्रस्तुत परिभाषा में आन्तरिक भावनाओं और अनुभूतियों से सम्बद्ध स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों के तो दर्शन होते हैं किन्तु इसमें स्वच्छन्दतावाद की कुछ प्रमुख प्रवृत्तियों का आकलन नहीं हो पाया है। परिभाषा की इस कमी को **'The Encyclopaedia Americana'** कुछ सीमा तक पूर्ण करने का प्रयास इस प्रकार करता है:

''क्योंकि स्वच्छन्दतावाद भावात्मक जीवन में जो कुछ विचित्र और रहस्यात्मक है, उसे अभिव्यंजित करने का प्रयास करता है, वह प्रकृति से अपनी सामग्री का आधार अतीत में ढूँढता है, विशेषकर मध्ययुग से सहानुभूति रखता है, जबकि भावनात्मक लालसाएँ शौर्य या साहसिक के प्रति

1. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ,* पृ० 11
2. वही, पृ० 11
3. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, धर्मयुग, (6 अगस्त, 1967), पृ० 67
4. L.E. Furst : *Romantic in Perspective*, P. 317
5. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ,* पृ० 40
6. *Readers Encyclopaedia Third Printing*, Dec. 1951, New York, P. 943

प्रेम और रहस्यात्मक बोध की अभिव्यक्ति करती थीं। इसलिए अतीत के प्रति सहानुभूति और मानवता के नवीन अभिरुचि स्वच्छन्दतावाद के लक्षण हैं।[1] **"The World Book Encyclopaedia"** में स्वच्छन्दतावादी कवियों एवं लेखकों के सम्बन्ध में इस प्रकार का उल्लेख है कि स्वच्छन्दतावादी कवि तथा लेखक प्रकृति से प्रेम करता है, राजनीतिक, सामाजिक तथा कलात्मक सत्ता से विद्रोह करता है तथा व्यक्तिवाद को उनकी जगह पसन्द करता है।[2]

'Cassell's Encyclopaedia of Literature' में स्वच्छन्दतावादी शैलियों के सम्बन्ध में निम्न तथ्यपरक विचार दृष्टिगोचर होते हैं:

स्वच्छन्दतावादी शैलियों में प्रकृति सचेतन बन गयी है, कलात्मक अभिव्यक्ति में अबाध कल्पना की उड़ान, प्रतीक तथा मिथक का प्रयोग हुआ है।[3] **Romanticism Edited by John Holsted** में स्वच्छन्दतावाद को अति नूतन, अत्याधुनिक सुन्दर अभिव्यक्ति[4] कहा गया है तो वहीं दूसरी ओर **Studies in Romanticism** के Vol. 17, No. 3, Summer, 1978 में स्वच्छन्दतावादी कविता को कभी पूर्णता न प्राप्त करनेवाली और सदैव विकास की ओर बढ़नेवाली कविता कहा गया है:

स्वच्छन्दतावादी कविता सदैव विकसन की स्थिति में होती है, जो कभी पूर्णता को प्राप्त नहीं होती।[5]

मनोविज्ञान का भी स्वच्छन्दतावाद से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः समीक्षकों एवं मनोवैज्ञानिकों ने भी स्वच्छन्दतावाद को मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोणों से भी परिभाषित किया है। **फ्रायड, युंग** एवं **एडलर** सभी मनोवैज्ञानिक समीक्षकों ने अपनी समीक्षा में स्वच्छन्दतावाद को पर्याप्त स्थान दिया है। **फ्रायड** के अनुसार लिबिडो जिसे हम मूल प्रवृत्तियाँ कहते हैं मनुष्य के सभी क्रिया-कलापों की जननी है। इसी लिबिडो की प्रतिक्रिया स्वच्छन्दतावाद का मूल है, उसकी आत्मा है।

T. E. Hulme ने स्वच्छन्दतावाद पर नवीन दृष्टि से विचार किया है:

"तुम ईश्वर में विश्वास नहीं करते हो, इसलिए तुम मनुष्य में ही ईश्वर का विश्वास करने लगते हो, तुम स्वर्ग में विश्वास नहीं करते हो, इसलिए तुम धरती पर ही स्वर्ग है, ऐसा विश्वास करते हो। दूसरे शब्दों में तुम स्वच्छन्दतावाद को प्राप्त करते हो।"[6]

भारतीय:-- 19 वीं शताब्दी के वैज्ञानिक आविष्कारों ने सम्पूर्ण विश्व को एक कर दिया था। यातायात के साधनों के आविष्कार के कारण सम्पूर्ण विश्व जैसे सिमटकर रह गया था। स्वेज नहर पर जब पुल बना तो यूरोप से भारत की यात्रा अत्यन्त सुलभ हो गयी फलस्वरूप भारत और यूरोप के मध्य व्यापारिक सम्बन्ध अधिक प्रगाढ़ हो गये और विदेशी वस्तुओं ने भारतीय बाजार पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

---

1. *Enclyclopaedia of Americana*, Vol XXIII, P. 655-656
2. *The World Book Encyclopaedia*, 1960, U.S.A. P. 603
3. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ*, पृ० 28
4. *Romanticism*, Edited by J.B. Holsted, London 196, p. 120
5. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद*, पृ० 33
6. T. E. Hulme, *Speculations*, Edited by Herbert Read, P. 118

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त और बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ का यह वह समय था जब भारत पर अंग्रेजों का साम्राज्य था और भारतीय परिवार अभावग्रस्त, संत्रस्त एवं कुंठित जीवन जीने पर विवश थे। उन्नीसवीं ई० के गुजरात अकाल ने रही-सही कसर भी तोड़ दी। अकाल की स्थिति के कारण देश का आर्थिक ढाँचा तहस-नहस हो चुका था। अंग्रेज भारतीय जनता की भलाई के लिए कोई भी कार्य न करना अपना मूल सिद्धान्त बना चुके थे और वह अपने स्वार्थों की सिद्धि के लिए भारतीय जनता का शोषण ही एकमात्र विकल्प समझते थे। वे भारतीय जनता पर तरह-तरह के अत्याचार करते थे। अंग्रेजी अत्याचारों एवं आर्थिक स्थिति के बिगड़ जाने के कारण उद्योग धन्धे भी नहीं पनप पा रहे थे बल्कि सामन्ती व्यवस्था को देश में बल मिल रहा था। इस समय अनेक दूसरी समस्याओं ने भी जन्म ले लिया था। अंग्रेजों का दमनचक्र अभी भी जारी था। राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक दमन के लिए अंग्रेजों ने भिन्न-भिन्न कानून बनाने शुरू कर दिये। इधर ईसाई धर्म का प्रचार जोरों से होने के कारण हिन्दू धर्म भी शिथिल होता जा रहा था। समाज में हर ओर धार्मिक एवं सामाजिक बुराइयाँ बढ़ चुकी थीं और कुप्रथाओं ने घर-घर पैर पसार लिये थे। अतएव समाज की बुराइयों को समाप्त करने के लिए शिक्षा की आवश्यकता को बल मिलने लगा। स्त्री-शिक्षा का शुभारम्भ भी यहीं से हुआ। यह समझा जाने लगा कि यदि घर की स्त्री शिक्षित है तो समाज भी शिक्षित होगा। अछूतोद्धार, उपेक्षित वर्ग के प्रति सहानुभूति एवं दहेज की कुप्रथा का बहिष्कार करने के लिए समाज सुधारकों ने अपने पुराने रीति-रिवाज एवं परम्पराओं का खून किया और सुधार आन्दोलन चलाये।

"इस प्रकार सामाजिक दृष्टि से एक ओर तो देश पुराने प्रगति विरोधी संस्कारों, रीति-रिवाजों, परम्पराओं और रूढ़ियों से मुक्ति पाने के लिए करवट ले रहा था, तो दूसरी ओर अंग्रेजी साम्राज्य जान-बूझकर देश को सामाजिक दृष्टि से पिछड़ा रखना चाहता था और तीसरी ओर अंग्रेजी सभ्यता संस्कृति का सम्पर्क, देशवासियों के जीवन में विकृति तथा विघटन उत्पन्न कर रहा था।"[1]

साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब होता है और कवि की वाणी उस युग के सम्यक् स्वर की ध्वनि होती है। अतएव कवियों और साहित्यकारों ने सर्वप्रथम अपना उत्तरदायित्व समझा। इस युग के विचारकों ने सर्वप्रथम मानवता के प्रति विस्तृत दृष्टिकोण का पाठ पढ़ाया और उपेक्षित वर्ग के प्रति अपनी सहानुभूति दिखायी। यूँ भी शिक्षा के प्रभाव से लोगों का दृष्टिकोण व्यापक हो रहा था तथा साहित्यकारों का सामाजिक समस्याओं को परखने का दृष्टिकोण भी बदल रहा था।[2] भारतीय सामाजिक जीवन की आर्थिक व्यवस्था पर पूँजीवाद एवं साम्राज्यवाद का विपरीत प्रभाव पड़ा जिसके परिणाम-स्वरूप विद्रोह की चिन्गारी सुलगने लगी थी और यही विद्रोही भावना हमारी परिस्थितियों के अन्तर्गत देश की नवोदित राष्ट्रीय भावना को बढ़ावा दे रही थी।"[3] प्रतिक्रियावादी सामन्ती प्रणाली और साम्राज्यवादी व्यवस्था के गठबन्धन ने राष्ट्रीय भावना का हिंसात्मक दमन करने की चेष्टा की क्योंकि उस समय भारत आर्थिक दृष्टि से भी कमजोर हो चुका था। कहा जाता है कि जब प्रचलित शासन-व्यवस्था की विषमता सीमा को पार कर जाये तभी व्यवस्था में नूतनता और परिवर्तन की आवश्यकता अनुभूत होती है।"[4] भारत में भी कुछ ऐसा ही हुआ जब अंग्रेजी राज्य की विषमता अपनी सीमा को पार कर गयी तो

1. डॉ० राम गोपाल सिंह चौहान, *आधुनिक हिन्दी साहित्य,* पृ० 7
2. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ* पृ० 54
3. वहीं, पृ० 54
4. वहीं, पृ० 51

भारतीय वर्ग में भी नूतनता और परिवर्तन की ज्वाला प्रज्वलित हो गयी। परिवर्तन और क्रान्ति की इस लहर ने समस्त भारत को अपने बाहुपाश में ले लिया तो फिर साहित्य जगत् किस प्रकार इससे अछूता रह जाता, क्योंकि सार्वभौमिक सत्य का उद्घोष है कि साहित्य समाज का दर्पण है और समाज में ही रहने के कारण कवि भी एक सामाजिक प्राणी होता है। समाज में रहकर ही वह काव्य का सृजन करता है। कवि पर सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक परिस्थितियों का पूर्ण प्रभाव पड़ता है। अतः उसके काव्य में वैयक्तिक अनुभूति के साथ-साथ उस युग की आत्मा की आवाज भी बोलती है। कवि ही युग व समाज की आत्मा की धड़कन व स्पन्दन की ध्वनि स्पष्ट रूप से सुन सकता है और उसे अपनी वैयक्तिक अनुभूति के माध्यम से कविता रूपी माला में पिरो सकता है। अतः कवि ही अपनी कविता के माध्यम से तत्कालीन विचारधारा का सामूहिक रूप से प्रतिनिधित्व करता है। युग की आत्मा की आवाज कवि हृदय की सर्वोत्तम साधन बनती है और कवि की वाणी से ही अपना जयोच्चार कराती है। कवि अपने छोटे से व्यक्तित्व में उस युग की आत्मा का भार लिये फिरता है। भारत की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक स्थितियाँ तथा अंग्रेजों के शासन से लेकर स्वतंत्रता-प्राप्ति तक के आन्दोलनों की यात्रा इस बात का प्रमाण है कि आमूल परिवर्तन की चाह कवि की वैयक्तिक अनुभूति और उसके समवेत कण्ठस्वर की ध्वनि ही है। इसी को यदि सृजनात्मक प्रेरक शक्ति का नाम दिया जाय तो गलत नहीं होगा और यही सृजनात्मक प्रेरक शक्ति स्वच्छन्दतावादी कविता की जननी भी है। परिस्थिति और वातावरण के साथ-साथ पर्याप्त संदेश पाकर भारतीय कवि की वाणी भी मुखरित हो उठी और परिणाम मिला — स्वच्छन्दतावादी काव्य के रूप में। मैं समझती हूँ कि फ्रांस की क्रांति और वहाँ के साहित्यिक परिवर्तन के परिणाम से प्रेरणा अवश्य ग्रहण की होगी भारतीय कवियों ने, किन्तु पूर्णतया उससे प्रभावित नहीं दिखते। यूरोपीय कवि और वहाँ के साहित्यिक विचारों ने भारतीय कवियों के समक्ष एक आदर्श उपस्थित किया था न कि भारतीय कवि पूर्णतः यूरोपीय मूल्यों एवं विचारों से प्रभावित थे। **आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी** के इन्हीं विचारों की पुष्टि उनकी प्रख्यात पुस्तक **आधुनिक साहित्य** में 'नयी कविता' शीर्षक निबन्ध से होती है। आचार्य वाजपेयी के शब्दों में—

"बहुधा हिन्दी कविता की तुलना पाश्चात्य कविता से की जाती है और पाश्चात्य साहित्य के अध्ययन के आधार पर हिन्दी-काव्य पर सम्मतियाँ भी दी जाती हैं, किन्तु यूरोप की परिस्थिति और भारतीय परिस्थिति में अन्तर है। यूरोपीय समाज, प्रगतिशील रूस को छोड़कर प्रायः साम्राज्यवादी और शोषक राष्ट्रों का समाज रहा है। उन देशों की राष्ट्रीय शक्ति क्षीण हो गयी है और उन्हें नवीन रूप में उज्जीवित होने की आवश्यकता है। वहाँ का काव्य इसी कारण बहुत-कुछ उद्देश्यहीन और कलावादी रहा है। भारतीय काव्य और विशेषतः हिन्दी-कविता परतंत्र देश की स्वतंत्रता कांक्षिणी भावना की प्रतिनिधि है। अवश्य कुछ कवियों ने व्यक्तिगत असामर्थ्य के कारण आत्महीनता-द्योतक भावनाओं की सृष्टि की है किन्तु सामूहिक रूप में हिन्दी-कविता भारतीय राष्ट्र के नवजीवन की प्रतिनिधि है। विदेशी कविता के प्रतिमानों को हिन्दी में चरितार्थ करना ठीक न होगा।"[1]

अतः भारतीय कवियों द्वारा रचित हिन्दी काव्य पर पाश्चात्य काव्य का प्रत्यक्ष रूप में कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। अप्रत्यक्ष रूप से भारतीय कवियों ने यूरोपीय कवियों की भावनाओं को समझा, परखा और उसे प्रेरणात्मक शक्ति के रूप में ग्रहण किया। **रामधारी सिंह 'दिनकर'** भी अपनी कविताओं

1. आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य, पृ० 65

की चयनिका **'चक्रवाल'** में कुछ इस प्रकार वक्तव्य देते हैं:

''**'प्रसाद', 'निराला', 'पन्त' और 'महादेवी'** की कविताओं की रीढ़ भारत के प्राचीन सत्यों की अनुभूति है। केवल अभिव्यक्ति की शैली उन्होंने यूरोप की अपनायी है और यूरोपीय शैली को अपनाने में भी वे इतने भारतीय रहे हैं कि हम आसानी से उनकी शैली को भारतीय शैली का विकास कह स ते हैं।''[1]

जब भारत-यूरोप सम्पर्क स्थापित हुआ तो यूरोपीय मार्ग से नये ज्ञान का आगमन भारत की ओर भी होने लगा। भारतीय मनुष्य की चेतना एकाएक जागृत हो गयी थी उसके भीतर अनेक जिज्ञासाएँ एक साथ जागृत हो गयी थीं। सुन्दरता की कामना और उसके साक्षात्कार को भारतीय मानव तड़प उठा। अपरिचित से परिचय को तथा अपरिचित भूमि में स्वच्छन्द विचरण को उसके अन्दर उत्साह उमड़ पड़ा। प्रत्येक रूढ़ि एवं शास्त्राज्ञा को एक ओर रख वह उस लोक के दर्शन को चल पड़ा जहाँ जाने की उसे कभी अनुमति ही नहीं थी। यही कारण था कि भारतीय कवि ने अपने ढंग से इन सभी प्रवृत्तियों को अभिव्यक्ति भी प्रदान की। अतः स्पष्ट है कि भारतीय मूल की कविता पाश्चात्य कविता से परोक्ष रूप में कोई भी प्रभाव ग्रहण नहीं करती है वरन् यह कविता उस समय की, उस समय के समाज की आवश्यकता थी बल्कि उस युग के समवेत स्वर की कण्ठध्वनि थी। उस युग की आत्मा की आवाज थी जो कवि को स्वयं की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाये हुए थी। **डॉ० रामधारी सिंह 'दिनकर'** ने **'चक्रवाल'** में कहा है:

''राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं जन्मी, उसने बाहर से आकर मुझे आक्रान्त किया। उस समय सारा देश उत्साह से उच्छल और दासता की पीड़ा से बेचैन था। अपने समय की धड़कन सुनने को जब भी मैं देश के हृदय से कान लगाता, मेरे कान में भी किसी बम के धड़ाके की आवाज आती, फाँसी पर झूलनेवाले किसी नौजवान की निर्भीक पुकार आती अथवा मुझे दर्दभरी ऐंठन की वह आवाज सुनायी देती जो गाँधी जी के हृदय में चल रही थी; जिनसे बढ़कर मैं किसी और को श्रद्धेय नहीं समझता था।''[2]

पुनः इसी क्रम में डॉ० दिनकर का कथन है:

''भारतवर्ष के इतिहास में यह वह समय आया हुआ था जब, कुछ दिनों के लिए, वैयक्तिक कर्तव्यों के निशान मिट जाते हैं: वैयक्तिक अनुभूतियाँ सिमटकर एक कोने में चली जाती हैं और सबके स्थान पर सामूहिक कर्तव्य और सामूहिक अनुभूतियों का साम्राज्य छा जाता है।''[3]

आगे चलकर अत्यन्त भावावेश में दिनकर ने लिखा है, ''हमारी अपनी भाषा में **पंत, निराला, महादेवी** और **प्रसाद** कम से कम कविता में, इन हलचलों से अलग रहे यद्यपि पंत जी ने 'गुंजन' के बाद-जिस भावाधारा को अंगीकार किया, उसका देश के सामाजिक आन्दोलनों से पूरा सम्बन्ध था, भिन्नता की बात यह रही कि वे फिर भी संयमशील रहे, किन्तु मुझ जैसे लोग राष्ट्रीय एवं क्रांतिकारी भावनाओं के प्रवाह में बह गये। मेरी वैयक्तिक अनुभूतियाँ धरी रह गयीं और मेरा सारा अस्तित्व

1. रामधारी सिंह 'दिनकर' : *चक्रवाल,* पृ० 17 -
2. वही, पृ० 33
3. वही, पृ० 33

समाज और राष्ट्र की अनुभूतियों के अधीन हो गया।"[1]

अतः स्पष्ट है कि स्वच्छन्दतावादी कविता न तो परोक्ष रूप से ही और न ही अप्रत्याशित रूप से पाश्चात्य कविता की नकल है अपितु रोमांटिक कविता की उत्पत्ति का श्रेय तत्कालीन भारतीय परिवेश एवं परिस्थितियों को जाता है, साथ ही, उस परिवर्तन की चाह को भी जो भारतीय मानव हृदय में विद्यमान थी और अनुकूल परिस्थितियों के लिए प्रतीक्षारत थी। वास्तव में रोमांटिक आन्दोलन का मूलाधार भावुकता है और भावुकता जब वर्तमान से असन्तुष्ट हो जाती है तब स्वभावतः वह अतीत की ओर लालसा से दौड़ती है।[2] भारतीय अतीत की ओर इसलिए देख रहा था क्योंकि वह उसका गौरवकाल था। अपने गौरव को जगाने के लिए वह अतीत की ओर दौड़ पड़ा।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि रोमांटिक कविता आज जिस रूप में हमें मिलती है यह इसके क्रमिक विकास का परिणाम है। रोमांटिक कविता शनैः शनैः क्रमशः विकसित होती हुई आज इस रूप को प्राप्त है। "कविता का यह प्रयास उस नयी मानवता की अभिव्यक्ति का प्रयास था, जिसका जन्म भारत यूरोप-सम्पर्क से हुआ, वह भारत के उस सांस्कृतिक नवोत्थान का परिणाम था, जिसका प्रवर्तन राजा राम मोहन राय ने किया।"[3]

यूँ तो स्वच्छन्दतावादी कविता शनैः-शनैः विकसित हुई है किन्तु स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों की रेखा भारतेन्दु युग से पूर्व ही उभरती दिखायी देती है। **बोधा, ठाकुर** और **घनानन्द** के काव्यों में स्वच्छन्दतावाद के अंकुर स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते हैं। **राजा लक्ष्मण सिंह** द्वारा किये गये हिन्दी अनुवादों में **'शकुन्तला'** एवं **'मेघदूत'** एवं प्रेमघन की कजलियाँ एवं लावनियाँ आदि की इस संदर्भ में चर्चा अपेक्षित है। भारतेन्दु युग में स्वच्छन्दतावादी कवि कहलाने का श्रेय **ठाकुर जगमोहन सिंह** को जाता है। केवल भाषा, छन्द आदि के सम्बन्ध में **ठाकुर जगमोहन सिंह** परम्परा को नहीं तोड़ सके हैं।

भारतेन्दु युग में स्वच्छन्दतावादी चेतना का कोई स्पष्ट रूप नहीं मिलता, केवल भाषा, छन्द एवं भाव के क्षेत्र में कुछ नवीनता आने के कारण प्रेरक शक्ति अवश्य उत्पन्न हो गयी थी, जिसने रूढ़िवादिता को समाप्त करने की चेष्टा की थी किन्तु स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ स्पष्टतः नहीं दिखायी देती हैं। स्वच्छन्दतावादी भावना की अस्पष्टता के मध्य भारतेन्दु काल में कविता की जो धारा उद्भूत हुई आगे चलकर उसका विकास 'छायावाद' के रूप में हुआ। स्वच्छन्दतावादी कविता छायावादी कविता के समानान्तर, भले ही उससे निर्बल किन्तु चलती रही और आगे जाकर स्वच्छन्दतावाद और छायावाद आपस में इतने घुल-मिल गये कि उन्हें एक ही समझा जाने लगा।

यद्यपि स्वच्छन्दतावादी काव्य के अंकुर भारतेन्दु काल के काव्य में ही फूट पड़े किन्तु रीतिकाल की रूढ़ियों को तोड़कर स्वच्छन्द काव्य की रचना का श्रीगणेश **पं० श्रीधर पाठक** से ही माना जाता है। अतः **पं० श्रीधर पाठक** ही स्वच्छन्दतावादी काव्य के अग्रदूत माने जाते हैं। स्वच्छन्दतावादी कवि होने के कारण ही स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन को उनसे अत्यधिक बल मिला था। इस काव्यांदोलन में **पं० श्रीधर पाठक** का साथ देनेवालों में **पं० रामनरेश त्रिपाठी, रूपनारायण पाण्डेय** तथा **मुकुटधर पाण्डेय**

1. रामधारी सिंह 'दिनकर' : *चक्रवाल,* पृ० 34
2. वही, पृ० 20
3. वही, पृ 16

का नाम अग्रणीय है। **आचार्य शुक्ल** ने **'हिन्दी साहित्य का इतिहास'** में इस संदर्भ में लिखा है, ''स्वच्छन्दतावाद का आभास पहले पहल **पं० श्रीधर पाठक** ने ही दिया और सब बातों पर विचार करने पर **पं० श्रीधर पाठक** ही स्वच्छन्दतावाद (रोमांटिसिज्म) के सच्चे प्रवर्तक ठहरते हैं।''[1]

किन्तु **आचार्य शुक्ल** द्वारा प्रतिपादित स्वच्छन्दतावाद के विकास की रूपरेखा बाद में मान्यता नहीं प्राप्त कर सकी। **आचार्य शुक्ल** के अनुसार—''**पं० श्रीधर** के बाद सच्चे और स्वाभाविक स्वच्छन्दतावाद का मार्ग हमारे काव्य-क्षेत्र के बीच चल न पाया क्योंकि एक ओर उसी समय पिछले संस्कृत काव्य संस्कारों के साथ **पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी** हिन्दी साहित्य-क्षेत्र में आये, जिससे इति-वृत्तात्मक पद्यों का खड़ीबोली में ढेर लगने लगा और दूसरी ओर **रवीन्द्र बाबू** की **गीतांजलि** की धूम मच जाने के कारण नवीनता प्रदर्शन के इच्छुक नये कवियों की रूपरेखा लाने में लगे, कुछ लोग पाश्चात्य काव्य-पद्धति को 'विश्व साहित्य' का लक्षण समझ उसके अनुकरण में तत्पर हुए। इन बाधाओं के कारण इने गिने नए कवि ही स्वच्छन्दतावाद के स्वाभाविक पथ पर चले।''[2]

अतः **पं० श्रीधर पाठक** से ही सच्चे और स्वाभाविक स्वच्छन्दतावाद का सूत्रपात माना जाता है। **पं० श्रीधर** तथा उनके समाकालीन स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्यों में सीधी-सरल भाषा, वनवैभव, एकान्त-प्रणय, सौन्दर्यप्रियता, अतीत प्रेम और देशभक्ति आदि स्वच्छन्दतावाद के प्रमुख तत्त्व उन्मुक्त भाव से प्रकट हुए हैं।[3] वैयक्तिक विद्रोह भाव जो आगे चलकर छायावाद में विकसित हुआ, इन कवियों के काव्य में नहीं मिलता। इन कवियों की काव्य-सरिता में स्वच्छन्द धारा का प्रवाह गतिशील दृष्टिगत होता है।

कहा जाता है कि जब परिवर्तन मन्द गति से चले तो वह परिवर्तन है किन्तु यदि इसमें तीव्रता आ जाये तो वह क्रान्ति का रूप ले लेता है। **पं० श्रीधर** ने भी काव्य की जो सरिता प्रवाहित की वह चरम परिणति को प्राप्त हुई **प्रसाद, निराला, पन्त** तथा **महादेवी** की कविताओं में। द्विवेदी युग में सरल भाषा को प्रयोग में लाया जाता था किन्तु भाषा की क्लिष्टता छायावादी काव्य में दिखायी पड़ी थी। इस काव्य में प्रेम-सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में स्पष्टता, खुलापन एवं अनुभूति की अभिव्यंजना भली प्रकार नहीं हो पायी है क्योंकि इस काल के कवियों के काव्य में आध्यात्मिक्ता का आवरण पड़ा है, जिससे प्रेम-सौन्दर्य के वर्णन में कवि परम्परावश आगे नहीं बढ़ते। छायावादी कवियों के काव्य में अतिशय कल्पनाशीलता, भावुकता, व्यक्तिवादिता आदि प्रवृत्तियाँ प्रचुर मात्रा में मिलती हैं।

छायावाद के बाद अनुभूतिपरक कवियों में **बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', हरिवंशराय 'बच्चन', रामधारी सिंह 'दिनकर', भगवती चरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', गोपाल सिंह 'नेपाली'** एवं **आर० सी० प्रसाद सिंह** प्रमुख हैं। इन कवियों में प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति में सच्चाई के साथ-साथ निराशा व विद्रोह का स्वर तथा मानववादी स्वर मुखरित हुआ है।

छायावादी कविता के साथ-साथ समाजवादी यथार्थवाद के साथ प्रगतिवाद भी आगे बढ़ रहा था। छायावाद के क्रांतिकारी रूप का अगला चरण ही यह प्रगतिवाद था। लोक-संस्कृति और लोक-जीवन इस काल के कवियों का प्रिय विषय था। **'पंत'** की **'ग्राम्या'** **निराला** की **'बेला'**, **'नये**

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : *हिन्दी साहित्य का इतिहास,* पृ० 517
2. वही, पृ० 577-78
3. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक कविता : स्वच्छन्दतावादी उपलब्धियाँ, नागरी पत्रिका, जून-जुलाई,* 1975

पत्ते' **केदारनाथ अग्रवाल** की **'युग की गंगा'**, **त्रिलोचन शास्त्री** की **'धरती'** तथा **डॉ० रामविलास शर्मा** की कविताएँ इसका अत्यन्त सजीव एवं मार्मिक उदाहरण हैं।

प्रयोगवादी कवियों के काव्य में रोमानी प्रवृत्ति विद्यमान है। **अज्ञेय** की **'भग्नदूत'** और **'चिन्ता'** में स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का बहाव स्पष्ट दिखायी देता है। **प्रभाकर माचवे** की कविताओं में भी स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। छायावादी काव्य के बाद व्यक्तिवाद जो प्रगतिवादी कवियों के काव्य से लुप्त हो गया था, प्रयोगवाद में पुनः अस्तित्व को प्राप्त होता है। किन्तु छायावादी व्यक्तिवाद से भिन्न अवस्था में यह प्रयोगवाद में पुनः प्रवेश करता है। यह व्यक्तिवादी भावना काव्य परिसर में नये विचार, नयी प्रेरणा और नयी अनुभूति लेकर हिन्दी में आयी थी और यही व्यक्तिवाद हमारी मानव चेतना का प्राण था।

नयी कविताओं में जन-जीवन तथा साधारण विषय भी कविताओं का प्रतिपाद्य बनने लगा है जो स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति है। कविता पर अंग्रेजी के Romanticism का सीधा प्रभाव पड़ता है। इस काल के कवियों ने अपनी कविताओं के लिए **Lyrical Ballads** तथा **Literaria Biographia** को ही आधार माना है और उसी के आधार पर अपनी कविताएँ सँवारते रहे हैं। नयी कविता और नवगीतकारों के काव्यों में स्वच्छन्दतावादी और नवस्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ दोनों ही प्रचुर मात्रा में अपने सघन रूप में दिखायी पड़ती हैं। इन कवियों में प्रमुख हैं— **अज्ञेय, मुक्तिबोध, रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण', धर्मवीर भारती, केदारसिंह, शमशेर बहादुर सिंह, जानकी वल्लभ शास्त्री, गिरिजा कुमार माथुर, शंभुनाथ सिंह, ठाकुरप्रसाद सिंह, राम दरश मिश्र, डॉ० कुमार विमल, प्रेमशंकर** तथा **अशोक वाजपेयी**।

हिन्दी समीक्षा संसार के समीक्षकों द्वारा स्वच्छन्दतावाद क्या है? इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न व्याख्याएँ आयी हैं और स्वच्छन्दतावाद को नवीन-नवीन दृष्टिकोणों से विश्लेषित किया गया है।

हिन्दी आलोचकों में सर्वप्रथम **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने स्वच्छन्दतावाद को रेखांकित किया था। **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** स्वच्छन्दतावादी कविता को कृत्रिम और रूढ़िबद्ध काव्य-प्रवाह की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न स्वाभाविक भावधारा की कविता मानते हैं। उनका कथन है कि, ''प्रकृति प्रांगण के चर-अचर प्राणियों का सम्पूर्ण परिचय, उनकी गतिविधि पर आत्मीयता व्यंजक दृष्टिपात, सुख-दुःख में उनके साहचर्य के पद-चिह्न हैं।''[1]

डॉ० अजब सिंह ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक **आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ** में लिखा है कि **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** की यह परिभाषा अंग्रेजी के रोमांटिसिज़्म के केवल एक ही पक्ष को उजागर करती है। अतः **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने जिन कवियों अर्थात् **पं० श्रीधर पाठक, पं० रामनरेश त्रिपाठी, ठाकुर गुरुभक्त सिंह 'भक्त'** तथा **उदयशंकर भट्ट** आदि को स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का प्रतिनिधि कवि घोषित किया है वे सभी इस नूतन काव्यान्दोलन के प्रारम्भिक कवि माने जा सकते हैं, प्रतिनिधि कवि नहीं।

डॉ० नामवर सिंह ने स्वच्छन्दतावाद को अत्यन्त व्यापक रूप से विश्लेषित कर इसे अन्तर्राष्ट्रीय काव्य अवधारणा कहा है। **डॉ० नामवर सिंह** के कथनानुसार, ''यह एक अन्तर्राष्ट्रीय अवधारणा है।

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : *हिन्दी साहित्य का इतिहास,* 13वाँ सं०, पृ० 628

रोमैटिसिज़्म को रोमैटिसिज़्म कहना चाहिए अर्थात् एक वचन नहीं बहुवचन क्योंकि कोई एक रोमैटिसिज़्म था ही नहीं। हिन्दी में ही देखें तो **पन्त** और **निराला** का सौंदर्य शास्त्र वह नहीं जो **पन्त** का था। कुछ बातें जरूर सामान्य थीं लेकिन बहुत-सी अलग भी हैं।''[1]

डॉ० नामवर सिंह, 'कविता के नये प्रतिमान' में क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद का आह्वान करते हैं। **'मुक्तिबोध'** की कविता **'अँधेरे'** के संदर्भ में **डॉ० नामवर सिंह** ने 'क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद' का उल्लेख किया है। इसी क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद को **डॉ० अजब सिंह** ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक **'नवस्वच्छन्दतावाद'** की प्रमुख प्रवृत्तियों के रूप में विश्लेषित किया है।

डॉ० नामवर सिंह के विचारों का पूर्वाभास वर्षों पूर्व **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** द्वारा **डॉ० देवराज उपाध्याय** की स्वच्छन्दतावाद पर प्रथम पुस्तक **'रोमांटिक साहित्य-शास्त्र'** की भूमिका में व्यक्त विचारों से हो गया। **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** के अनुसार, ''यह कहना कि **कबीर** का रहस्यवाद **रवीन्द्रनाथ** का रहस्यवाद है या **मीरा** का ही रूपान्तर **महादेवी वर्मा** हैं, पूर्ण सत्य नहीं है। ऐसी बातें विचारगत गंभीरता का निदर्शन नहीं हैं। इतिहास अपने आपको चाहे तथ्यात्मक जगत् में कभी-कभी दुहरा भी देता हो प्ररन्तु विचारों की दुनिया में वह जो गया तो गया। मनुष्य का जीवन अपना उपमान आप ही है।[2]

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने स्वच्छन्दतावाद को इस सम्पूर्ण विश्व की अवधारणा माना है। स्वच्छन्दतावाद को सम्पूर्ण युग की चेतना का सार मानते हुए कहते हैं कि, ''यह साहित्य अपने युग की सम्पूर्ण चेतना और विचार संघर्ष की सुन्दर कलात्मक अभिव्यक्ति है। यह समविरोध की ही चीज है।''[3]

डॉ० देवराज उपाध्याय अपनी पुस्तक **'रोमांटिक साहित्य -शास्त्र'** में कहते हैं कि रोमांटिक काव्य तो स्वतः प्रसूत काव्य है। इसके लिए कवि को परिश्रम नहीं करना पड़ता है न ही रोमांटिक कविता को तराशने की आवश्यकता पड़ती है अपितु यह तो स्वयं की अभिव्यक्ति के लिए कवि को विवश कर देती है। यह किसी बाहरी प्रभाव के कारण नहीं वरन् कवि के अंतःकरण की आवाज होती है, उस युग की आत्मा की आवाज होती है जो कवि के माध्यम से प्रकट होती है। यह अपनी अभिव्यक्ति की भाषा भी साथ लेकर आती है। **डॉ० देवराज उपाध्याय** के अनुसार, ''सत्य की आन्तरिक ज्योति अपनी अभिव्यक्ति की भाषा को साथ लिये आती है। गान आह से निकलता है और आंखों से निकलकर कविता चुपचाप बह जाती है। इस मनोवृत्ति से प्रसूत कविता रोमांटिक कविता होगी।''[4]

डॉ० देवराज उपाध्याय रोमांटिक काव्य को क्लासिकल काव्य से इतर (भिन्न) अवस्था में रखकर पुनः विश्लेषित करते हैं—क्लासिकल काव्य में क्या नहीं है, सब कुछ है, रूप है, रंग है, अंग सौष्ठव है और है बाहरी साज-सज्जा और नहीं है तो केवल आन्तरिक जीवन का प्राण स्पन्दन।''[5]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के अनुसार स्वातंत्र्य की लालसा और बन्धनों का त्याग रोमांटिक

---

1. संकलन एवं संपादन-समीक्षा ठाकुर, कहना न होगा, पृ० 110
2. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र, भूमिका डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी,* पृ० 4
3. वही, पृ० 4
4. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र,* पृ० 19
5. वही, पृ० 19

धारा के रूप में व्याप्त है।[1]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने स्वतंत्रता की अभिलाषा और प्राचीन रूढ़ि, बन्धनों के प्रति विद्रोह व अमान्यता की भावना को स्वच्छन्दतावादी कविता के लिए आवश्यक बताया है किन्तु इस संदर्भ में वह पुनः तर्क देते हैं कि रोमांटिसिज्म में वस्तु का उदात्त होना आवश्यक नहीं। साधारण से साधारण वस्तु में भी काव्यात्मक चित्रण बनने की क्षमता है, यह स्वच्छन्दतावादी मत है। रोमांटिक काव्य-पद्धति में चित्रण के योग्य कोई सीमा निर्धारित नहीं है।''[2] अतः **आचार्य वाजपेयी** का साधारण वस्तु आंकलन ही उनका स्वच्छन्दतावादी मत है ऐसा विचार डॉ० अजब सिंह का है।

आचार्य वाजपेयी ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक **आधुनिक साहित्य** में स्वच्छन्दतावाद को इस प्रकार विश्लेषित किया है, ''जो काव्यधारा अत्यन्त नियमित पद्धति संयत रहित प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देती है, वह रोमांटिक गति की सूचक है। काव्य में भावना के अतिरेक से जो असंयम आता है, नियमों की जो अवहेलना होती है, रोमांटिसिज्म की अलत की परिचायक है।''[3]

आचार्य वाजपेयी रोमांटिक काव्य की परिपक्वता के प्रति अत्यन्त आश्वस्त थे, स्वच्छन्दतावाद के विकास को नवस्वच्छन्दतावाद के रूप में वह पहले ही कल्पित कर चुके थे। अपनी पुस्तक **आधुनिक साहित्य** में इस दूरदर्शिता का परिचय देते हुए कहते हैं कि नवीन कविता छायावादी कल्पना-प्रवणता के स्थान पर यथार्थवादी पद्धति को अपना रही है। काव्य में यथार्थवाद अथवा बाह्यार्थवाद की योजना एक ऐसी शैली के रूप में स्वागत के योग्य है। हमारा काव्य इन नवीन शैली को अपनाकर विकास की नयी दिशा में चल रहा है।[4] इसी संदर्भ में चर्चा को और आगे बढ़ाते हुए **आचार्य वाजपेयी** का कथन है कि काव्य में यथार्थवाद को अपनाकर एक नवीन मार्ग पर चलने का अर्थ यह नहीं है कि कविता अकाव्यत्व की ओर बढ़ रही है अथवा काव्य संस्कृति का परित्याग कर रही है। काव्य में यथार्थवाद का अर्थ काव्य के स्थायी प्रतिमानों का त्याग नहीं है।

यह समझना कि वह अकाव्यत्व की ओर बढ़ रहा है, अथवा काव्य-संस्कृति का परित्याग कर रहा है, अनुचित होगा। काव्य में यथार्थवाद का अर्थ अकाव्यत्व नहीं है, न उसका अर्थ काव्य के स्थायी प्रतिमानों का त्याग ही है।''[5]

डॉ० नामवर सिंह स्वच्छन्दतावाद को प्राचीन रूढ़ियों से मुक्ति की आकांक्षा[6] मानते हैं किन्तु स्वच्छन्दतावाद केवल विद्रोह नहीं है, प्रकृति के प्रति गम्भीर प्रेम, व्यक्तित्व, जीवनानुभूति, स्वच्छन्द व रमणीय कल्पना आदि भी है।

कवि आलोचक **डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल** 'तरुण' का कथन है कि, ''हिन्दी स्वच्छन्दतावाद या रोमांसवाद के मूल तत्त्व प्रायः वे थे जो अंग्रेजी कविता के रोमांसवाद में प्राप्त होते हैं अर्थात् रूढ़ियों से मुक्ति, व्यक्तिगत जीवनानुभूति, स्वच्छन्द व रमणीय कल्पना, प्रकृति के प्रति गम्भीर प्रेम तथा उसमें

1. आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी : *आधुनिक साहित्य*, पृ० 439
2. वही, पृ० 443
3. वही, पृ० 416.
4. वही, पृ ० 67
5. वही, पृ० 67
6. डॉ० नामवर सिंह : *छायावाद*, पृ० 15

चेतन सत्ता का आरोप, अतीत और भविष्य के प्रति लालसा, ललक, बौद्धिकता के स्थान पर कोमल भावना का प्राधान्य, मुक्त छन्द विधान आदि।''[1] यह विश्लेषण स्वच्छन्दतावादी प्रायः सम्पूर्ण प्रवृत्तियों की झलक देता है।

'चक्रवाल' की भूमिका में **दिनकर** ने रोमांटिक कविता पर विस्तृत चर्चा की है। **दिनकर** रोमांटिक कविता को विज्ञान का सबसे बड़ा प्रतिलोम मानते हुए कहते हैं कि –रोमांटिसिज्म कविता का सर्वाधिक काव्यात्मक तत्त्व है और कविता यदि विज्ञान का प्रतिलोम है तो रोमांटिक कविता विज्ञान का सबसे बड़ा प्रतिलोम है।''[2]

कल्पना जो रोमांटिक कविता की जननी है, के सम्बन्ध में दिनकर का मत है कि – ''कल्पना की प्रचुरता के बिना कोई भी कविता नहीं लिखी जा सकती।[3]

अनुभूति के समय भावुकता, किन्तु रचना के समय बुद्धि का सहयोग, यही वह मार्ग है, जिससे ऊँचे साहित्य का सृजन हो सकता है।[4] **दिनकर** का मत है कि निरी बुद्धि और कोरी भावुकता से कविता की रचना नहीं हो सकती है। इसी कारण दिनकर इलियट के इस मत से शत प्रतिशत सहमत हैं कि ''रोमांटिसिज्म और क्लासिसिज्म साहित्य की राजनीति[5] कही जा सकती है। **दिनकर** यह भी मानते हैं कि रोमांटिक मनोदशा अत्यन्त तीव्र चेतना से उत्पन्न होती है और कल्पना की तीक्ष्णता के साथ इस मनोदशा का मेल होता है।[6] रोमांटिक भावना विद्रोहिणी होती है और वह स्थापित समाज की आत्मरक्षापरक दकियानूसी प्रवृत्तियों को तोड़कर एक नया समाज लाना चाहती है।[7]

मानविकी परिभाषिकी कोश का सम्पादन करते हुए **डॉ० नगेंद्र** स्वच्छन्दतावाद को इस प्रकार विश्लेषित करते हैं– ''राष्ट्रीय अतीत तथा मध्य युग से सम्बद्ध दृश्यों, घटनाओं एवं पात्रों का चित्रण, अमूर्त की अपेक्षा मूर्त की स्वीकृति, प्राकृतिक दृश्यावली तथा तज्जनित प्रबल रागात्मक अद्भुत तथा विस्मयोत्पादक व्यापार, आत्मा और परमात्मा, स्वप्न तथा अवचेतन ये सभी स्वच्छन्दतावाद के प्रिय विषय रहे हैं। गीतात्मकता, दिवास्वप्न, बहुलता, कल्पना तथा उत्प्रेरणा इस साहित्य के प्रमुख लक्षण हैं।[8]

डॉ० नगेन्द्र के इस विश्लेषण में स्वच्छन्दतावाद के मूल तत्त्व विद्रोह आकलन नहीं हो पाया है।

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, हिन्दी का समसामयिक इतिहास में स्वच्छन्दतावाद को ''सामाजिक बन्धनों को तोड़कर जीवन में स्वच्छन्द विचरण करने की लालसा''[9] कहकर सम्बोधित करते हैं।

---

1. डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल : *आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य,* पृ० 325
2. डॉ० रामधारी सिंह दिनकर : *चक्रवाल,* पृ० 14
3. वही, पृ० 16
4. वही, पृ० 15
5. वही, पृ० 15
6. वही, पृ० 11
7. वही, पृ० 2
8. डॉ० नगेन्द्र : *मानविकी परिभाषिक कोश* (साहित्य खण्ड), पृ० 226-227
9. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 14

डॉ० रामचंद्र मिश्र का कथन है – "स्वच्छन्दतावादी काव्य, काव्य की विशेष सर्जना है, जो कल्पना और आवेग से युक्त परम्परागत विधान और बाह्यांग नियंत्रण से विमुक्त और मानसिक सरलता तथा अकृत्रिमता से सम्पन्न मानसिक तथा लोकभूमि की भावना से युक्त है।"[1]

इस विश्लेषण में स्वच्छन्दतावाद के प्रायः सभी तत्त्वों का आकलन तो है किन्तु मनोवैज्ञानिक और दार्शनिक संदर्भ में कोई विवरण लेखक की ओर से नहीं मिला। अतः यह परिभाषा स्वच्छन्दतावाद के सम्पूर्ण घेरे को व्यक्त करने में असमर्थ है। फलस्वरूप पूर्ण नहीं कही जा सकती।

डॉ० अजब सिंह ने अपनी बहुचर्चित पुस्तक **'नवस्वच्छन्दतावाद'** में स्वच्छन्दतावाद को इस प्रकार विश्लेषित किया है, "स्वच्छन्दतावाद नवीन अनुभूति की भूमि पर पुरानी परम्पराओं और रूढ़ियों से विद्रोह कर, चेतन प्रकृति तथा लोक जीवन की अनुभूति को वाणी देता है। नये और अचेतन विषय और विषयी, अन्तः और बाह्य, मानव और प्रकृति दो विरोधी तत्त्वों का समन्वय भी करता है तथा इसकी दुनिया पूरी तरह से नयी होती है।[2]

डॉ० सिंह द्वारा दिये गये इस विश्लेषण में स्वच्छन्दतावाद के प्रायः सभी तत्त्वों को सम्मिलित करने का प्रयास किया गया है साथ-ही स्वच्छन्दतावाद को एक विस्तृत फलक पर विश्लेषित तथा इसका क्षेत्र-विस्तार भी किया गया है।

भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षकों के विश्लेषण एवं अनुशीलन के परिप्रेक्ष्य में स्वच्छन्दतावाद को कुछ इस प्रकार भी विश्लेषित किया जा सकता है।

वह विकास एवं रहस्य से पूर्ण, दार्शनिकता का पुट लिये, आध्यात्मिकता से मण्डित, स्वतः प्रसूत काव्य, जो यथार्थ की भूमि पर नवीन अनुभूतियों के वातावरण में बोधातीत सत्य के प्रति विचारशील युग की सम्पूर्ण चेतना व विचारों से संघर्ष करता हुआ, प्रत्येक नियम व परम्परा को तोड़ता हुआ, स्वातंत्र्य का पक्षधर है, राष्ट्र व प्रकृति प्रेम से पुलकित, प्रवृत्ति से चंचल, कृत्रिमता से परे, सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति लिये, जो ऐन्द्रिय ग्राह्य हो, जो अवचेतन मस्तिष्क पर प्रतिबिम्बित हो मानसिक व्यापार में संलग्न हो जाये; अन्तः एवं बाह्य, जड़ तथा चेतन दो परस्परविरोधी तत्त्वों को इस प्रकार समन्वित कर दे कि वे एक ही प्रतीत हों जो कवि के अन्तःकरण की आवाज हो, आन्तरिक स्पन्दन जिसका प्राण हो, आन्तरिक अदम्य प्रेरणा जिसकी जननी हो, जिसका संसार वह स्वयं हो अन्ततः आनन्दोद्रेक जिसका परम लक्ष्य हो वही स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा का उत्स बनता है।

यदि पाश्चात्य एवं भारतीय विचारकों द्वारा दी गयी स्वच्छन्दतावादी कविता की परिभाषाओं का विश्लेषण एवं अनुशीलन किया जाये तो निष्कर्ष रूप में कुछ सामान्य तत्वों से भी परिचय होता है। इन्हीं तत्त्वों की दिशाओं के आधार पर ही कवि की सर्जनात्मक एवं निविड़ आवेग, आन्तरिक अनुभूति एवं रहस्यानुभूति, व्यक्तिवाद एवं मानववाद, दार्शनिकता, सत्य के प्रति विचारशीलता, युग की सम्पूर्ण चेतना एवं विचारों से संघर्ष, नियम व परम्परा की अवहेलना, स्वातंत्र्य की लालसा, राष्ट्र-प्रेम एवं प्रकृति-प्रेम की भावना, प्रवृत्ति की चंचलता, कृत्रिमता का परित्याग, सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति, मानसिक व्यापार में संलग्न, दो परम्परा विरोधी तत्त्वों का समन्वय, अन्तःकरण की आवाज, अदम्य

---

1. डॉ० रामचंद्र मिश्र, *पं० श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य,* पृ० 46
2. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 18

प्रेरणा, उत्साह और उमंग की भावना, आत्मगौरव की भावना, जीवन-दर्शन का पुट, यथार्थ दर्शन, विद्रोह और नवीनता, लोक-साहित्य एवं लोक-गीत, वैयक्तिक स्वातंत्र्य की प्रबल लालसा, मिथक, बिम्ब एवं प्रतीक-योजना, प्रगीत मुक्तक काव्यों की प्रधानता तथा संगीतात्मकता आदि स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों की प्रबल अभिव्यक्ति विविध रूपों में हुई है।

हित्त्व-समीक्षा-संसार के समीक्षकों ने **'स्वच्छन्दतावाद'** को अपने गहन चिन्तन से भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से विश्लेषित कर विभिन्न नवीन दृष्टिकोणों से मूल्यांकित किया और उसे विभिन्न नवीन आयाम दिये और उसके विकास को सुनिश्चित किया।

हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास में **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** का योगदान महत्त्वपूर्ण है। **आचार्य शुक्ल** ने ही रोमांटिसिज्म को हिन्दी शब्द रूपान्तर **'स्वच्छन्दतावाद'** किया है। **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ही वह सर्वप्रथम आलोचक हैं, जिन्होंने स्वच्छन्दतावाद को छायावाद के क्रम-अनुक्रम में विश्लेषित किया था। आपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में सर्वप्रथम अंग्रेजी के रोमांटिसिज्म को हिन्दी स्वच्छन्दतावाद के नाम से पुकारा तथा इसी क्रम में स्वच्छन्दतावाद और छायावाद को विश्लेषित किया था। **आचार्य शुक्ल** छायावाद को स्वच्छन्दतावाद की एक विकसित शैली मानते हैं।[1] स्वच्छन्दतावाद के विश्लेषण और अनुशीलन के **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ही अग्रदूत माने जाते हैं। **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** के प्रयासों के फलस्वरूप ही हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास का प्रारम्भ होता है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ही अपने **'हिन्दी साहित्य का इतिहास'** में सर्वप्रथम छायावाद और स्वच्छन्दतावाद के पार्थक्य की ओर दृष्टि केंद्रित कर ध्यानाकर्षण किया था। यही कारण था कि **पं० श्रीधर पाठक** को **आचार्य शुक्ल** हिन्दी स्वच्छन्दतावाद का प्रवर्तक और अग्रदूत मानते हैं तथा **पं० रामनरेश त्रिपाठी** को उनका अनुयायी। **आचार्य शुक्ल** छायावाद को स्वच्छन्दतावाद की अनुकृति न मानकर उसका विकसित रूप मानते थे। अतः **आचार्य शुक्ल** ने छायावाद को स्वच्छन्दतावाद की विकसित शैली के रूप में विश्लेषित किया है।

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने यद्यपि हिन्दी स्वच्छन्दतावाद को विश्लेषित करने के लिए कोई पुस्तक नहीं लिखी किन्तु **डॉ० देवराज उपाध्याय** की पुस्तक **रोमांटिक साहित्य-शास्त्र** की भूमिका में स्वच्छन्दतावाद क्या है? इस सम्बन्ध में उनका लेख हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षकों के समक्ष आज भी महत्त्वपूर्ण स्थिति प्राप्त कर चर्चा का विषय बना हुआ है। **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने इस लेख में रोमांटिसिज्म का 'स्वच्छन्दतावाद' के नाम से हिन्दी अनुवाद करने में आपत्ति तो की है किन्तु इसके विकल्प में वह कोई अन्य शब्द भी नहीं सुझा सके हैं किन्तु स्वच्छन्दतावाद को रोमांटिक साहित्य के नाम से अभिहित करने से नहीं चूके हैं। **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** स्वच्छन्दतावाद को अपने युग की सम्पूर्ण चेतना और विचार संघर्ष की कलात्मक अभिव्यक्ति के रूप में विश्लेषित करते हैं।[2]

स्वच्छन्दतावाद को वह पुराने विचारों का नाममात्र न मानकर समविरोध की वस्तु मानते हैं। इस प्रकार **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने स्वच्छन्दतावाद को वैश्विक अवधारणा के रूप में विश्लेषित किया है तथा साथ ही, वह उसका अन्य वादों से समविरोधी रूप भी विश्लेषित करते हैं। **डॉ० हजारीप्रसाद**

---

1. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ* पृ० 83
2. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्यशास्त्र, भूमिका- डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी,* पृ० 4

द्विवेदी स्वच्छन्दतावाद तथा छायावाद को भिन्न तो मानते हैं किन्तु छायावाद को अंग्रेजी के 'रोमांटिसिज्म' से प्रेरित मानते हैं जो कि तर्कसंगत नहीं है। **डॉ० द्विवेदी** के शब्दों में 'छायावादी' काव्यधारा की प्रेरणा का मूलस्रोत अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों की कविता ही हो सकती है।[1]

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी रोमांटिसिज्म में कल्पना के अविरल प्रवाह और घन संश्लिष्ट निविड़ आवेग की प्रधानता मानते हैं तथा दोनों की उपस्थिति को अनिवार्य मानते हैं। भले ही एक की कुछ अधिक प्रधानता हो या दोनों की बराबर किन्तु इन दोनों के अभाव में कविता रोमांटिक कविता का रूप धारण नहीं कर सकती है।

डॉ० देवराज उपाध्याय का हिन्दी स्वच्छन्दतावादी आलोचना के विकास में अनन्य योगदान है। उनकी **'रोमांटिक साहित्य-शास्त्र'** हिन्दी स्वच्छन्दतावादी आलोचना की प्रथम पुस्तक है जो हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के क्रमिक विकास की प्रथम कड़ी है। इसी पुस्तक की भूमिका के लिए **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** द्वारा लिखित लेख हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास में मील का पत्थर है।

डॉ० देवराज उपाध्याय हिन्दी समीक्षा के एकमात्र समीक्षक हैं, जिन्होंने हिन्दी स्वच्छन्दतावादी क्षेत्र में पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्यों के मनोवैज्ञानिक चिंतन-बिन्दुओं को अनुशीलन-विश्लेषण के द्वारा अपनी समीक्षा में स्थान दिया है। यद्यपि उन्होंने अपनी आलोचनात्मक क्षमता का उपयोग कथा-साहित्य के मनोवैज्ञानिक विश्लेषण अनुशीलन में लगाया था किन्तु स्वच्छन्दतावादी समीक्षा पर एकमात्र पुस्तक **'रोमांटिक साहित्य-शास्त्र'** में क्लासिकल व रोमांटिक अवधारणाओं को विश्लेषित करते हुए पाश्चात्य अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों की स्वच्छन्दतावादी अवधारणाओं को मनोवैज्ञानिक वैचारिकता प्रदान करते हुए अपने चिंतन का विषय बनाया। इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी अवधारणा को मनोवैज्ञानिक वैचारिकता की दिशा में प्रवाहित कर हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा को एक नये आयाम पर विश्लेषित कर, हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के लिए एक नवीन भूमि तैयार की। **डॉ० देवराज उपाध्याय** ने हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा को मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में, मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्तों को केंद्र में रखकर अपने चिंतन से सींचा था, हरा-भरा किया था। हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा को एक नया आयाम देने के कारण हिन्दी समीक्षा-संसार उनका आजीवन ऋणी रहेगा तथा हिन्दी स्वच्छन्दतावादी मनोविश्लेषणात्मक समीक्षक के रूप में आपका नाम अग्रणी रहेगा।

हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास में स्वच्छन्दतावादी सौष्ठववादी समीक्षक **आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी** का विशेष महत्त्व है। **आचार्य वाजपेयी** ने **आधुनिक साहित्य** तथा **आधुनिक काव्य : रचना और विचार** में स्वच्छन्दतावाद को एक व्यापक फलक में विश्लेषित किया है। स्वच्छन्दतावाद को वाजपेयी ने स्वच्छन्द काव्यधारा या स्वच्छन्दतावाद का ही नाम दिया है। स्वच्छन्दतावादी चिंतन को छायावाद से इतर (भिन्न) दिशा की ओर उन्मुख करने में वाजपेयी जी का विशेष योगदान है। **आचार्य वाजपेयी** ने सागर विश्वविद्यालय में स्वच्छन्दतावादी अवधारणा को लेकर काव्य तथा कथा-साहित्य, उपन्यास तथा हिन्दी नाटकों का स्वच्छन्दतावादी दृष्टि से शोध की विभिन्न दिशाओं में स्वच्छन्दतावादी समीक्षा का मार्ग प्रशस्त किया था। **आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी** ने ही कविता, कहानी, नाटक तथा उपन्यास आदि में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का अनुशीलन विश्लेषण शोधपरक दृष्टि से हिन्दी में सबसे

---

1. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ,* पृ० 95

अधिक किया तथा करवाया। **आचार्य वाजपेयी** अपने चिन्तन में स्वच्छन्दतावाद पर छायावाद प्रभाव को अस्वीकारा है। वह स्वच्छन्दतावाद को एक स्वतंत्र काव्यधारा मानते हैं किसी अन्य धारा का प्रतिरूप एवं प्रतिबिम्बित रूप नहीं। इस प्रकार **आचार्य वाजपेयी** स्वच्छन्दतावाद को छायावाद से इतर दिशा में विश्लेषित करके स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास में एक और कड़ी जोड़ी। हिन्दी समीक्षा-संसार आपके इस सराहनीय योगदान के लिए सदैव ऋणी रहेगा।

डॉ० नगेन्द्र ने भी स्वच्छन्दतावाद को परिभाषित एवं विश्लेषित किया है किन्तु उन्होंने स्वच्छन्दतावाद को अपने गंभीर चिंतन का विषय नहीं बनाया है। उन्होंने स्वच्छन्दतावाद को रोमानी या 'रोमांटिक' नाम से सम्बोधित किया है। वे प्रायः सभी काव्यों को मूलतः रोमानी ही मानते हैं। इसी कारण चेतना का स्वच्छन्द उन्मेष ही सर्जन प्रतिभा का लक्षण[1] कहते हुए उसे स्वच्छन्दतावाद का प्राणतत्त्व स्वीकार करते हैं। उनका मत है कि यह आवश्यक नहीं कि स्वच्छन्दतावाद का जादू किसी कवि या आलोचक के सिर पर चढ़कर बोले किन्तु स्वच्छन्दतावाद उसकी अंतश्चेतना में किसी-न-किसी रूप में विद्यमान रहता है। इस प्रकार वे स्वच्छन्दतावाद का मनुष्य की अंतश्चेतना से सम्बन्ध स्थापित करते हुए स्वच्छन्दतावाद को मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में स्वाभाविक रूप प्रदान करते हैं। **डॉ० नगेन्द्र** स्वच्छन्दतावाद और छायावाद को अभिन्न मानते हैं और अपनी सुप्रसिद्ध **आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ** नामक पुस्तक में इस संदर्भ में लिखते हैं कि इसमें संदेह नहीं कि छायावाद मूलतः रोमानी कविता है और दोनों की परिस्थितियों में जागरण और कुंठा का मिश्रण है।[2]

यदि देखा जाय तो **डॉ० नगेन्द्र** के चिन्तन से स्वच्छन्दतावादी समीक्षा में विकास का कोई आयाम नहीं मिल सका है। वे स्वच्छन्दतावादी समीक्षा की चर्चा-परिचर्चा में केवल सम्मिलित दिखायी देते हैं तथा एक चिर-परिचित पथ पर कुछ दूर तक चलते हैं किन्तु स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास को कोई दिशा प्रदान नहीं कर सके।

डॉ० विनयमोहन शर्मा स्पष्ट रूप से छायावाद और स्वच्छन्दतावाद को अभिन्न मानते हैं। वे अपनी पुस्तक **'साहित्यान्वेषण'** में लिखते हैं कि हमारा निश्चित मत है कि छायावादी काव्य अंग्रेजी के **वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स, बायरन, कॉलरिज** आदि के रोमांटिसिज्म से अधिक प्रभावित है।"[3] इस प्रकार उनके अनुसार छायावाद को स्वच्छन्दतावाद से पृथक् नहीं किया जा सकता है। छायावाद पर अंग्रेजी कवियों के प्रभाव और स्वच्छन्दतावाद की श्रृंखला के रूप में स्वीकारते हुए वे छायावाद और स्वच्छन्दतावाद की अभिन्नता पर जोरदार वकालत करते हैं। **डॉ० विनय मोहन शर्मा** आलोचकों के उसी दल से सम्बन्ध रखते हैं जो स्वच्छन्दतावाद और छायावाद को सर्वथा अभिन्न मानते हैं। इसी कारण स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास को नवीन पथ पर अग्रसर करने में सर्वथा असमर्थ दिखायी पड़ते हैं।

डॉ० देवराज, छायावाद का पतन में स्वीकारते हैं कि छायावादी काव्य रोमांटिक काव्य से प्रभावित हुआ था और उसी से समानता भी रखता है।"[4] वे छायावाद को आध्यात्मिक तथा रहस्यवादी काव्य कहने की अपेक्षा रोमांटिक कहना अधिक समीचीन समझते हैं और रोमांटिक काव्य से छायावादी काव्य

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद, आमुख डॉ० नगेन्द्र*, पृ० 5
2. डॉ० नगेन्द्र : *आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ*, पृ० 20
3. डॉ० विनयमोहन शर्मा : *साहित्यान्वेषण*, पृ० 14
4. डॉ० देवराज : *छायावाद का पतन, पृ०* 21

को इतना प्रभावित और समान मानते हैं कि उन्हें छायावादी काव्यों को रोमांटिक कहना अधिक भाता है।

श्री सुमित्रानन्दन पंत स्वयं के काव्य को **शेली, कीट्स बर्ड्सवर्थ** तथा **टेनिसन** के काव्य से प्रभावित मानते हैं। इस सम्बन्ध में वह स्वयं भी कहते हैं–''**पल्लव** काल में उन्नीसवीं सदी के अंग्रेजी कवियों में मुख्यतः **शेली, कीट्स , बर्ड्सवर्थ** और **टेनिसन** से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूँ क्योंकि इन कवियों ने मुझे मशीन युग का सौन्दर्य-बोध और मध्यवर्गीय संस्कृति का जीवन स्वप्न दिया है।''[1] किन्तु **'पंत' छायावाद का पुनर्मूल्यांकन** में स्वच्छन्दतावाद को छायावाद से भिन्न करार देते हैं। यही नहीं स्वच्छन्दतावाद का रूप उन्हें छायावाद के समक्ष अत्यन्त गौण लगता है तथा स्वच्छन्दतावाद से भी अधिक गम्भीरता आपको छायावादी काव्य में दिखायी देती है।

छायावाद को रोमांटिक काव्य तक ही सीमित कर देना उसके मौलिक मूल्य के प्रति आँखें मूँद लेना है। छायावादी कविता में इससे कहीं अधिक गंभीर विगूढ़ तथा व्यापक तत्त्वों की प्रधानता है।[2]

इस प्रकार **सुमित्रानन्दन पन्त** ने स्वच्छन्दतावाद को अत्यन्त सीमित बताकर उसके विकास को एक कदम पीछे ही ढकेला है।

आधुनिक समीक्षकों में **डॉ० नामवर सिंह** का नाम गर्व के साथ लिया जा सकता है। उन्होंने स्वच्छन्दतावादी अवधारणा को विस्तृत एवं व्यापक फलक पर विश्लेषित कर उसके विकास को गौरवपूर्ण आयाम दिया है।

डॉ० नामवर सिंह स्वच्छन्दतावाद को अन्तर्राष्ट्रीय अवधारणा बताते हुए उसके विस्तृत रूप को विश्लेषित करते हैं। उनके अनुसार **रोमांटिसिज़्म** को रोमांटिसिज़्म न कहकर रोमांटिसिज़्स कहना अधिक समीचीन होगा क्योंकि कोई एक रोमांटिसिज़्म था ही नहीं। चाहे **पन्त** हों अथवा **निराला** या **महादेवी** हों अथवा **प्रसाद** कोई भी समान नहीं। सभी एक-दूसरे से अलग अत्यन्त भिन्न हैं। **समीक्षा ठाकुर** के संकलन एवं सम्पादन **''एक दशक की बातचीत : डॉ० नामवर सिंह के साथ''** तथा **'कहना न होगा'** में **डॉ० नामवर सिंह** के इन विचारों का उल्लेख मिलता है।

''यह एक अन्तर्राष्ट्रीय अवधारणा है । रोमांटिसिज़्म को रोमांटिसिज़्म्स कहना चाहिए अर्थात् एकवचन नहीं बहुवचन, क्योंकि कोई एक रोमांटिसिज़्म था ही नहीं। हिन्दी में ही देखें तो **पन्त** और **निराला** में बड़ा फर्क है। **प्रसाद, महादेवी, पन्त, निराला** सब अलग हैं। देखा जाये तो **निराला** का सौन्दर्यशास्त्र वह नहीं जो **पन्त** का था। कुछ बातें जरूर सामान्य हैं लेकिन बहुत-सी अलग भी हैं।''[3]

डॉ० नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक **कविता के नये प्रतिमान** में क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद का उल्लेख किया है। **मुक्तिबोध** की कविता **अँधेरे में** के संदर्भ में उन्होंने क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद का उल्लेख किया है। इसी क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद को **डॉ० अजब सिंह** ने बहुचर्चित पुस्तक **'नवस्वच्छन्दतावाद'** में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों के रूप में स्वीकार किया है।

डॉ० नामवर सिंह ने स्वच्छन्दतावाद का छायावाद से सम्बन्ध अथवा कोई भी परोक्ष-अपरोक्ष

1. सुमित्रानन्दन पंत : *आधुनिक कवि,* पृ० 19
2. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ,* पृ० 138
3. संकलन एवं सम्पादन : समीक्षा ठाकुर, *कहना न होगा, पृ०* 110

प्रभाव को स्वीकारा नहीं है। इस सम्बन्ध में तो वह तर्क देते भी हैं कि यदि छायावाद स्वच्छन्दतावाद से प्रभावित होता है तो भारतेन्दु काल के कवियों पर इसका प्रभाव अवश्य पड़ता। **वर्डस्वर्थ** एवं **शेली** आदि के काव्य तो उस समय भी थे और भारतेन्दु काल के कवि अंग्रेजी भाषा भी जानते थे। अपना यह मत व्यक्त कर **डॉ० नामवर सिंह** ने छायावाद और स्वच्छन्दतावाद को नितान्त भिन्न बताकर स्वच्छन्दतावाद को विस्तृत रूप प्रदान कर उसके विकास में अपना गौरवपूर्ण योगदान दिया है।

स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास को एक नवीन आयाम प्रदान करने का श्रेय अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के **प्रोफेसर अजब सिंह** को जाता है। हिन्दी समीक्षा संसार के **प्रोफेसर अजब सिंह** ही वह समर्थ समीक्षक हैं, जिन्होंने **आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी** की तर्ज पर स्वच्छन्दतावाद और छायावाद को व्यापक फलक पर विश्लेषित कर, स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास को आगे बढ़ाया।

''आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, स्वच्छन्दतावाद : छायावाद तथा 'नवस्वच्छन्दतावाद' के माध्यम से **प्रोफेसर अजब सिंह** ने स्वच्छन्दतावादी अवधारणा को एक व्यापक फलक पर रेखांकित किया है। हिन्दी में **आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी** की परम्परा-छायावाद और स्वच्छन्दतावाद में किंचित वैभिन्य को रेखांकित करके अध्ययन को जारी रखा है। इस प्रकार **डॉ० अजब सिंह** ने स्वच्छन्दतावादी चिन्तन को एक नया आयाम दिया है। **डॉ० सिंह** ने इस संदर्भ में पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों को आधार लेकर स्वच्छन्दतावादी चिंतन को अद्यतन रूप में मूल्यांकित करने का प्रयास किया है। **डॉ० अजब सिंह** का विचार है कि स्वच्छन्दतावादी चिंतन जीवन परम्पराओं और रूढ़ियों से मुक्ति का संदेश देता है। यही काव्य की मोह चेतना भी है। अतः स्वच्छन्दतावादी चिंतन अंग्रेजी के रोमांटिक आन्दोलन से प्रेरणा लेता है और विशुद्ध भारतीय सामाजिक एवं राजनैतिक परिवेश में इसकी प्रस्तुति होती है। इस ने स्वच्छन्दतावादी अवधारणा को अपने गंभीर चिंतन का विषय बनाया और स्वच्छन्दतावादी अवधारणा को एक विशेष सिंहासन पर प्रतिष्ठापित किया। **डॉ० अजब सिंह** का यह प्रयास हिन्दी समीक्षा संसार में एक प्रामाणिक एवं महत्वपूर्ण निष्कर्ष के रूप में स्वीकृत भी हुआ है।

डॉ० अजब सिंह ने **स्वच्छन्दतावाद : छायावाद** ग्रन्थ के माध्यम से स्वच्छन्दतावाद व छायावाद को एक व्यापक फलक पर विश्लेषित किया है। स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद की अनेक भ्रांतियों का निराकरण इस ग्रन्थ के माध्यम से होता है क्योंकि **डॉ० अजब सिंह** ने स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद के मध्य एक पार्थक्य रेखा खींच स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास को एक नया आयाम दिया है। पूर्व स्वच्छन्दतावादी काव्य एवं स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, स्वच्छन्दतावाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि आदि के माध्यम से स्वच्छन्दतावादी छायावादी समीक्षा के विस्तृत अनुशीलन व विश्लेषण तथा उसे एक दूसरे से पृथक् रूप में देखने व विश्लेषित करने की प्रवृत्ति को बल देकर **डॉ० अजब सिंह** ने **आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी** की समीक्षा पद्धति को आगे बढ़ाया है। **आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ** ग्रन्थ के माध्यम से **डॉ० सिंह** ने स्वच्छन्दतावाद को काव्य का प्रकार नहीं वरन् काव्य का तत्व बताकर उसे शाश्वत प्रवृत्ति कहा है जो किसी देश या काल के साहित्य में अभिव्यक्ति को प्राप्त होती है। स्वच्छन्दतावाद की मूल चेतना क्रान्ति की भावना में निहित होती है। अतः हिन्दी में स्वच्छन्दतावादी चिंतन असहयोग आन्दोलन के रूप में अभिव्यंजित होता है। राष्ट्रीय चेतना को क्रांति की भावना से बल व नयी दिशा आहूत होती है और राष्ट्रीय भावनाओं का गुबार निकलता है स्वच्छन्दतावादी

कविताओं के माध्यम से।

प्रो० अजब सिंह के महत्त्वपूर्ण प्रयास के पूर्व स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद सम्बन्धी तर्क-वितर्क, चर्चा-परिचर्चा तथा संगोष्ठियाँ आदि होती रहीं किन्तु स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद के मध्य व्यवस्थित विभाजक रेखा खींचने का श्रेय उन्हीं को ही जाता है।

'नवस्वच्छन्दतावाद' ग्रन्थ के माध्यम से **डॉ० अजब सिंह** ने स्वच्छन्दतावाद के साथ यथार्थवाद का समन्वय कर मार्क्सवादी दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में स्वच्छन्दतावादी अवधारणा को व्यापक फलक पर विश्लेषित कर स्वच्छन्दतावादी समीक्षा को विकसित किया तथा स्वच्छन्दतावादी चिंतन के विकास को एक नयी दिशा प्रदान कर, उसे एक नवीन क्षितिज की ओर अग्रसर कर हिन्दी समीक्षा के महत्त्व को उच्चता की ओर ले गये।

हिन्दी समीक्षा के स्वच्छन्दतावादी चिंतन के इस नये सूत्र ने इसे अन्तर्राष्ट्रीय गौरव प्रदान किया। **प्रो० अजब सिंह** ने स्वच्छन्दतावाद के नवीन विकसित रूप को 'नवस्वच्छन्दतावाद' का नाम दिया है। **प्रो० अजब सिंह** का विचार है कि–स्वच्छन्दतावाद अपने उत्कर्ष पर पहुँचकर जब दूसरी दिशा की ओर उन्मुख होता है और यह यथार्थवाद के साथ सहज मैत्री भाव से नया रूप लेता है, यही नवीनता स्वच्छन्दतावाद को 'नवस्वच्छन्दतावाद' के रूप में परिवर्तित कर देती है......... इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद तथा यथार्थवाद बोध के समन्वय से स्वच्छन्दतावाद एक नये रूप में उभरता है।''[1]

महान् स्वच्छन्दतावादी समीक्षक का विचार है कि–''नवस्वच्छन्दतावादी काव्यान्दोलन में कवि की चेतना फैंटेसी एवं सक्रिय कल्पना के पंख लिये होती है जो इसकी अपना खास पहचान होती है।''[2] अपने गंभीर चिंतन-क्रम में **प्रो० सिंह** का मानना है कि ''नवस्वच्छन्दतावाद सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक धरातलों की सीमा-रेखा में अपने को समेटता है तथा यथार्थवादी धरातल पर मानवीय अनुभूतियों को चित्रित करता है।''[3] नवस्वच्छन्दतावाद का सामाजिक धरातल मूलतः स्वच्छन्दतावाद का मार्क्सवादी संदर्भ है।''[4] **डॉ० नामवर सिंह** ने जिस क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद का आह्वान किया है, **डॉ० अजब सिंह** ने उसे नवस्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति के रूप में सम्बोधित किया है। स्वच्छन्दतावादी समीक्षक **प्रो० अजब सिंह** ने नवस्वच्छन्दतावाद को स्वच्छन्दतावाद के ही आधुनिक यथार्थवाद बोध से समन्वित कर नये रूप में ग्रहण किया है।''[5] इस संदर्भ में **युंग, लुकाच, अर्न्स्टफिशर** तथा **माइकेल** की नयी समाजवादी दृष्टि तथा भारतीय ऐतिहासिकता के माध्यम से, हिन्दी कविता के बदलते प्रतिमानों को ध्यान में रख, **युंग** के सामूहिक अचेतन विस्तार का सहारा लेते हुए, स्वच्छन्दतावाद का सामाजिक व मनोवैज्ञानिक स्वरूप निर्धारित किया है। नवस्वच्छन्दतावाद के नामकरण के मतभेदों के संदर्भ में **प्रोफेसर सिंह** स्वयं विस्थापित करते हैं कि छायावादोत्तर काव्य की सारी प्रवृत्तियों को 'नवस्वच्छन्दतावाद' के नाम से ही सम्बोधित करना चाहिए क्योंकि आधुनिक कविता में स्वच्छन्दतावादी चेतना का स्पन्दन

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद, प्राक्कथन,* पृ० 8
2. वही, पृ० 9
3. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद, प्राक्कथन,* पृ० 90
4. वही, पृ० 9
5. कैसर आफताब : *हिन्दी समीक्षा के विकास में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का योगदान अप्रकाशित* लघु-शोध-प्रबन्ध, पृ० 65

स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।"[1] इसका कारण शायद स्वच्छन्दतावादी कविता में रूढ़ियों के प्रति विद्रोह का स्वर है। केवल ग्रन्थ लिखकर ही नहीं वरन् पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर उनके आलेख भी इस संदर्भ में दर्शनीय हैं।

1. **आधुनिक कविता : स्वच्छन्दतावादी उपलब्धियाँ,** नागरी पत्रिका, काशी, जून-जुलाई, 1975
2. **हिन्दी स्वच्छन्दतावाद का विकास,** नागरी पत्रिका, काशी, अगस्त-सितम्बर, 1975
3. **लोक-साहित्य का स्वच्छन्दतावादी आयाम,** साहित्य धर्मिता, जौनपुर, दिसम्बर, 1986
4. **विद्रोह और क्रान्ति : नवस्वच्छन्दतावादी संदर्भ,** नई धारा, पटना, अक्टूबर-नवम्बर, 1986
5. **आधुनिकता और नवस्वच्छन्दतावाद,** नई धारा, पटना, अप्रैल-मई, 1988
6. **काव्य का मनोवैज्ञानिक संदर्भ,** नई धारा, पटना, दिसम्बर,1988 एवं जनवरी, 1989
7. **मानववाद : नवमानववाद,** निशान्त, अलीगढ़, जून, 1985
8. **कामायनी की स्वच्छन्दतावादी अस्मिता,** साहित्य धर्मिता, जौनपुर, दिसम्बर, 1990
9. **छायावाद : स्वच्छन्दतावाद का सहज विकास,** कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, हिन्दी विभाग की शोध-पत्रिका के लिए स्वीकृत आलेख।

डॉ० अजब सिंह ने न केवल अपने ग्रन्थों, आलेखों के द्वारा ही स्वच्छन्दतावादी चिंतन के विकास को नया आयाम दिया वरन् अपने निर्देशन में भी अनेक गम्भीर चिन्तन कार्य कराकर स्वच्छन्दतावादी चिंतन के विकास को आगे बढ़ाने में अपना बहुमूल्य समय एवं महत्त्वपूर्ण योगदान भी दिया है। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में उनके निर्देशन में स्वच्छन्दतावादी दृष्टिकोण से कई महत्त्वपूर्ण शोध कार्य हुए हैं। स्वच्छन्दतावाद और आधुनिक कविता को लेकर अधोलिखित शोध-कार्य महत्वपूर्ण हैं, जो उनके दिशा-निर्देशन में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय से पी-एच० डी० तथा एम० फिल्० की उपाधि के लिए स्वीकृत हो चुके हैं :

1. **छायावादोत्तर हिन्दी कविता : स्वच्छन्दतावादी मूल्यांकन,**
   स्वर्गीय डॉ० वीरेन्द्र कुमार गुप्त, एम० ए० (स्वर्णपदक प्राप्त), 1982।
2. **शिवमंगल सिंह 'सुमन' के काव्य में स्वच्छन्दतावादी चेतना का मूल्यांकन,**
   डॉ० मो० रशीद खाँ, 1983।
3. **कामायनी का स्वच्छन्दतावादी मूल्यांकन, डॉ० कमलेश कुमारी, 1983।**
4. **रामेश्वरलाल खण्डेलवाल के काव्य का स्वच्छन्दतावादी मूल्यांकन,**
   डॉ० कुसुमलता शर्मा 1986।
5. **डॉ० धर्मवीर भारती के काव्य का स्वच्छन्दतावादी दृष्टि से मूल्यांकन,**
   डॉ० मो० इम्तियाज खाँ, 1990।
6. **नयी कविता का स्वच्छन्दतावादी मूल्यांकन,**
   डॉ० रेखा वर्मा, एम० ए० (स्वर्णपदक प्राप्त)।
7. **हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का योगदान,** (एम० फिल्० की उपाधि के लिए स्वीकृत लघु शोध-प्रबन्ध)
   श्रीमती कैसर आफताब 1995।

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद, प्राक्कथन,* पृ० 65

8. **देवराज उपाध्याय की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा-दृष्टि** (एम० फिल्० की उपाधि के लिए स्वीकृत लघु शोध-प्रबन्ध)

श्रीमती शर्मीला डॉली कुद्दूसी

इसी महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में स्वच्छन्दतावादी विकास का अद्यतन चरण है यह प्रयास मेरा –''स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के नये आयाम'' । हिन्दी स्वच्छन्दतावादी चिंतन के विकास में स्वच्छन्दतावाद एवं यथार्थवाद के समन्वय से नवस्वच्छन्दतावादी कला के चिन्तन का विकास होता है। अतः हिन्दी समीक्षा में नवस्वच्छन्दतावादी अवधारणा को विकसित एवं प्रतिष्ठित करने का श्रेय अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग को ही जाता है।

यही कारण है कि सागर विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के साथ-साथ सम्प्रति अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में स्वच्छन्दतावादी चेतना-क्रम में सबसे अधिक कार्य हुआ है और आज भी हो रहा है। **आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी** की परम्परा को विकसित करने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देते हुए **प्रो० अजब सिंह** ने हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षकों को अद्यतन वैचारिकता के परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकित करते हुए, इस अन्तर्राष्ट्रीय अवधारणा स्वच्छन्दतावाद को यथार्थवादी चेतना से जोड़कर, हिन्दी समीक्षा को एक नूतन संदर्भ दिया है। इस प्रकार मेरा निश्चित अभिमत है कि अन्तर्राष्ट्रीय अवधारणा स्वच्छन्दतावाद पर अन्तर्राष्ट्रीय अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ में व्यवस्थित कार्य हो रहा है।

यह स्पष्ट है कि स्वच्छन्दतावादी समीक्षा का क्रमिक विकास हो रहा है। सर्वप्रथम पूर्व-स्वच्छन्दतावादी, स्वच्छन्दतावादी तत्पश्चात् नवस्वच्छन्दतावादी जिसे **क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद** का नाम **डॉ० नामवर सिंह** और **डॉ० अजब सिंह** ने देकर उसे विस्तृत फलक पर विश्लेषित कर स्वच्छन्दतावाद को एक नवीन आयाम प्रदान किया।

आज स्वच्छन्दतावादी चिंतन का विकास नवस्वच्छन्दतावाद से भी अधिक निरन्तर आगे की ओर बढ़ रहा है। स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद का समन्वित रूप जब मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में आध्यात्मिक चिंतन से जुड़ एकरूपता को प्राप्त होता है। तब उसे हम 'सहज नवस्वच्छन्दतावाद' के रूप में स्वीकार कर सकते हैं, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के चिंतन के रूप में भी इसे 'सहज नवस्वच्छन्दतावाद' ही कहना अधिक समीचीन लगता है।

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने स्वच्छन्दतावाद को अपने युग की सम्पूर्ण चेतना और विचार-संघर्ष की कलात्मक अभिव्यक्ति कहकर उसे वैश्विक स्तर पर विश्लेषित किया है। किन्तु मैं 'स्वच्छन्दतावाद' को केवल अन्तर्राष्ट्रीय अथवा वैश्विक अवधारणा के रूप में ही नहीं, वरन् उसे ब्रह्माण्ड के सम्पूर्ण चिंतन की कलात्मक अभिव्यक्ति मानती हूँ क्योंकि आज यदि हम वैयक्तिकवाद की बात करते हैं तो स्वच्छन्दतावाद की बात स्वयं ही करेंगे, मानववाद की बात करते हैं तो स्वच्छन्दतावाद की ही बात करते हैं, यथार्थवाद की बात है तब भी स्वच्छन्दतावाद की बात करते है। यही नहीं, जब हम प्रकृतिवाद, अनुकृतिवाद तथा अध्यात्मवाद की बात करते हैं तब भी स्वच्छन्दतावाद की ही बात करते हैं। इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी चिंतन का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। कविता जब रचना-शिल्पी की चेतना के रस में बसती है तब वह नवीनता एवं मौलिकता से युक्त होती है और कविता का यह रूप स्वच्छन्दतावादी चेतना का ही है और यही स्वच्छन्दतावाद का प्राणतत्त्व है।

अतएव ! यह मेरी स्वयं की मान्यता है कि स्वच्छन्दतावादी चिंतन किसी युग-विशेष का चिन्तन नहीं है वह तो युगों-युगों से किसी-न-किसी रूप में इस जगत् में विद्यमान रहा है। अतः स्पष्ट है कि स्वच्छन्दतावादी अवधारणा वह अन्तर्राष्ट्रीय काव्य अवधारणा है, जिसके चिन्तन के साथ समस्त विश्व का साहित्य कहीं-न-कहीं जुड़ा होता है। क्योंकि स्वच्छन्दतावादी चेतना मानवीय अनुभूतियों की ही सहज अभिव्यक्ति है। इसमें परम्परा एवं रूढ़ियों से मुक्ति की आकांक्षा होती है। वस्तुतः जीवन एवं जगत् की सहजता, मानवीय इहलौकिकता ही स्वच्छन्दतावादी चेतना-वैश्विक-ब्रह्माण्ड चेतना ही सहजावस्था का दूसरा नाम है।

हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा का विकास

19 वीं शताब्दी का अन्त तथा 20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में अंग्रेजों के अत्याचार अपनी चरम सीमा की ओर बढ़ रहे थे और भारतीय सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक परिस्थितियाँ अत्यन्त ही विषम स्थिति को प्राप्त कर चुकी थीं, तब व्यवस्था में नूतनता एवं परिवर्तन की आवश्यकता अनुभूत हुई और भारतीय वर्ग में नूतनता और परिवर्तन की ज्वाला प्रज्वलित हो गयी। परिवर्तन और क्रान्ति की इन लपटों से साहित्य जगत् किस प्रकार अछूता रह पाता? परिस्थिति और वातावरण के साथ-साथ पर्याप्त संदेश पाकर भारतीय कवि की वाणी मुखरित हो उठी और परिणाम मिला—हिन्दी स्वच्छन्दतावादी कला आन्दोलन के रूप में। मेरे विचार से भारतीय कवियों ने फ्रांस की क्रान्ति एवं वहाँ के साहित्यिक परिवर्तन के परिणामों से प्रेरणा अवश्य ग्रहण की होगी किन्तु उससे पूर्णतया प्रभावित नहीं दिखायी देते। यूरोपीय कवि एवं वहाँ के साहित्यिक विचारों ने भारतीय कवियों के समक्ष एक आदर्श उपस्थित किया था न कि भारतीय कवि पूर्णतः यूरोपीय मूल्यों एवं विचारों से प्रभावित थे। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि स्वच्छन्दतावादी कविता न तो परोक्ष रूप से ही और न ही अप्रत्याशित रूप से पाश्चात्य कविता की नकल है अपितु रोमांटिक कविता की उत्पत्ति का श्रेय तत्कालीन भारतीय परिवेश एवं परिस्थितियों को जाता है, साथ ही, उस परिवर्तन की चाह को भी जो भारतीय हृदय में विद्यमान थी और अनुकूल परिस्थितियों के लिए प्रतीक्षारत थी। वास्तव में रोमांटिक आन्दोलन का वास्तविक मूलाधार भावुकता है और भावुकता जब वर्तमान से असंतुष्ट हो जाती है तब स्वभावतः वह अतीत की ओर लालसा से दौड़ती है।[1] भारतीय अतीत की ओर इसलिए देख रहा था क्योंकि वह उसका गौरवकाल था। फलतः अपने गौरव को जगाने के लिए अतीत की ओर दौड़ पड़ा।

रोमांटिक कविता आज हमें जिस रूप में मिलती है यह उसके क्रमिक विकास का परिणाम है। रोमांटिक कविता शनैः-शनैः क्रमशः विकसित होती हुई ही आज इस रूप को प्राप्त है। यूँ तो स्वच्छन्दतावादी कविता शनैः-शनैः क्रमशः विकसित हुई है किन्तु स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों की रेखा भारतेन्दु-युग से पूर्व रीतिकाल में उभरती दिखायी देती है। **बोधा, ठाकुर** और **घनानन्द** के काव्यों में स्वच्छन्दतावाद के अंकुर स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते हैं। **राजा लक्ष्मणप्रसाद सिंह** द्वारा किये गये हिन्दी अनुवादों- **शकुन्तला** एवं **मेघदूत, प्रेमघन** की **कजलियाँ** एवं **लावनियाँ** आदि की इस संदर्भ में चर्चा अपेक्षित है।

भारतेन्दु-युग में स्वच्छन्दतावादी कवि कहलाने का श्रेय **ठाकुर जगमोहन सिंह** को जाता है। केवल भाषा, छन्द आदि के सम्बन्ध में **ठाकुर जगमोहन** परम्परा को नहीं तोड़ सके हैं।

यद्यपि स्वच्छन्दतावादी काव्य के अंकुर **भारतेन्दु-काल** के काव्य में ही फूट पड़े थे, किन्तु स्वच्छन्दतावादी चेतना का कोई स्पष्ट रूप भारतेन्दु-युग में नहीं मिलता। केवल भाषा, छन्द एवं भाव के क्षेत्र में कुछ नवीनता आने के कारण प्रेरक शक्ति अवश्य उत्पन्न हो गयी थी, जिसने रीतिकालीन रूढ़िवादिता को समाप्त करने की चेष्टा की थी, किन्तु स्वच्छन्दतावादी काव्य की प्रवृत्तियाँ स्पष्ट नहीं देखायी देतीं। हालाँकि, रीतिकाव्य की रूढ़ियों को तोड़कर स्वच्छन्द काव्य की रचना का श्रीगणेश

. श्री रामधारी सिंह दिनकर : *चक्रवाल,* पृ० 34

पं० श्रीधर पाठक से ही माना जाता है। अतः **पं० श्रीधर पाठक** ही स्वच्छन्दतावादी काव्य के अग्रदूत माने जाते हैं। सच्चे स्वच्छन्दतावादी कवि होने के कारण ही स्वच्छन्दतावादी काव्यान्दोलन को उनसे अत्यधिक बल मिला था। इस काव्यान्दोलन में **पं० श्रीधर पाठक** का साथ देनेवालों में **पं० रामनरेश त्रिपाठी, पं० रूपनारायण पाण्डेय** तथा **पं ० मु कु टधर पाण्डेय** के नाम अग्र णीय है । सच्चे औ र स्वाभाविक स्वच्छन्दतावाद का सूत्रपात करनेवाले इन कवियों के काव्यों में सीधी-सरल भाषा, वनवैभव, एकान्त-प्रणय, सौन्दर्य-प्रियता, अतीत-प्रेम एवं देशभक्ति और स्वच्छन्दतावाद के प्रमुख तत्त्व उन्मुक्त भाव से प्रकट हुए हैं।[1] वैयक्तिक विद्रोह भाव जो आगे चलकर छायावाद में विकसित हुआ, इन कवियों के काव्य में नहीं मिलता। इन कवियों की काव्य-सरिता में स्वच्छन्द धारा का प्रवाह गतिशील दृष्टिगत होता है।

स्वच्छंदतावादी भावना की अस्पष्टता के मध्य भारतेन्दु-काल में कविता की जो धारा उद्‌भूत हुई, आगे चलकर उसका विकास **'छायावाद'** के रूप में हुआ। स्वच्छन्दतावादी कविता छायावादी कविता के समानान्तर, भले ही उससे निर्बल, किन्तु चलती रही। आगे जाकर स्वच्छन्दतावाद और छायावाद आपस में इतने घुल-मिल गये कि उन्हें एक ही समझा जाने लगा।

श्रीधर पाठक ने काव्य की जो सरिता प्रवाहित की थी वह उसकी चरम परिणिति **प्रसाद, निराला, पन्त** एवं **महादेवी** की कविताओं में ही प्राप्त हो सकी। यद्यपि द्विवदी-युग में सरल भाषा का सुन्दर प्रयोग किया गया, किन्तु भाषा की क्लिष्टता के दर्शन हमें 'छायावादी काव्य' में होते हैं। इस काल में कवियों के काव्यों में आध्यात्मिकता का आवरण पड़ाने के कारण उनके काव्यों में प्रेम एवं सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में स्पष्टता, खुलापन एवं अनुभूति की अभिव्यंजना भी भली प्रकार से नहीं हो पायी है। फलतः प्रेम-सौन्दर्य के वर्णन में कवि परम्परावश आगे नहीं बढ़ते। अतिशय कल्पनाशीलता, भावुकता, व्यक्तिवादिता आदि प्रवृत्तियाँ इस समय के काव्यों में प्रचुर मात्रा में मिलती हैं।

छायावादी काव्य के बाद अनुभूतिपरक कवियों के काव्यों में प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति भी सच्चाई के साथ-साथ निराशा व विद्रोह का स्वर एवं मानववादी स्वर मुखरित हुआ है। इस सम्प्रदाय के कवियों में **नवीन, बच्चन, दिनकर, अंचल, नेपाली** आदि के साथ-साथ **भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा** एवं **आर० सी० प्रसाद सिंह** प्रमुख हैं।

छायावाद के क्रांतिकारी रूप का अगला चरण था **'प्रगतिवाद'**। यह छायावादी कविता के साथ-साथ ही आगे बढ़ता रहा। कला के स्तर पर यह अपने-आपको पुष्ट न बना सका वरन् यह रोमांटिक वृत्ति का तीव्र विरोधी साबित हुआ। शायद यही उसकी अल्पावधि का कारण था। प्रगतिवादी कवियों के काव्यों का प्रिय विषय था लोक-संस्कृति एवं लोक-साहित्य। **पन्त** की **ग्राम्या, निराला** की **बेला** व **नये पत्ते, केदारनाथ अग्रवाल** की **युग की गंगा**, **त्रिलोचन शास्त्री** की **धरती** तथा **डॉ० रामविलास शर्मा** की कविताएँ इसका सजीव उदाहरण हैं।

छायावादी काव्य के बाद व्यक्तिवाद जो प्रगतिवादी कवियों के काव्य से प्रायः लुप्त हो गया था, प्रयोगवाद में पुनः नये रूप में जीवन्त होता है। यह व्यक्तिवादी भावना काव्य परिसर में नये विचार, नयी प्रेरणा और नयी अनुभूति लेकर हिन्दी में आयी थी और यही व्यक्तिवाद हमारी मानव

1. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक कविता : स्वच्छन्दतावादी उपलब्धियाँ, नागरी पत्रिका*, जून-जुलाई, 1975

चेतना का प्राण था। प्रयोगवादी कवियों में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति विद्यमान है। **अज्ञेय** की **भग्नदूत** और **चिन्ता** तथा **प्रभाकर माचवे** की कविताओं में इस रोमानी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं।

प्रयोगवाद के उपरान्त अस्तित्व को प्राप्त हुई नयी कविताओं पर अंग्रेजी के Romanticism का सीधा प्रभाव है। इन कविताओं का मख्य प्रतिपाद्य था जन-जीवन तथा साधारण विषय। इस काल के कवियों ने **Lyrical Ballads and Literaria Biographia** को आधार मानकर अपनी कविताओं को रचा और सँवारा। नयी कविता तथा नवगीतकारों के काव्यों मे स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ अपने सघन रूप में दिखायी पड़ती हैं। **अज्ञेय, मुक्तिबोध, रामेश्वर लाल खण्डेलवाल 'तरुण', धर्मवीर भारती, केदारनाथ सिंह, शमशेरबहादुर सिंह, जानकी-वलल्भ शास्त्री, गिरिजा-कुमार माथुर, शंभुनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र, प्रेमशंकर** तथा **अशोक वाजपेयी** प्रमुख हैं। **पं० श्रीधर पाठक** के काव्य की तरंगें अपने को अत्यधिक सघन एवं विकराल रूप प्रदान करती हुई **पन्त, प्रसाद, निराला** एवं **महादेवी** के काव्यों में चरम परिणत को प्राप्त होती हैं। अतः स्पष्ट रूप से अंतर्निहित है कि स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा अपना रूप निखारती है और फिर जब वह अपनी चरम स्थिति को प्राप्त होती है तो अधिक आध्यात्मिक हो जाती है किन्तु यहाँ वह अपना रूप ही नहीं वरन् नाम भी बदलकर **छायावादी काव्यधारा** में परिणति हो जाती है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि स्वच्छन्दतावादी कविता के अत्यन्त प्रौढ़ एवं विकसित होने के बाद ही छायावाद का जन्म एवं उदय हुआ। यही कारण है कि छायावाद अपने उदय-काल से ही अत्यन्त सशक्त, प्रौढ़ एवं विकसित रूप में मिलता है।

छायावाद का आरम्भ मध्यकालीन रीति-काव्य के आत्यन्तिक विरोध के कारण हुआ था।[1] मौलिक रचनाओं तथा अनुवादों के द्वारा **श्रीधर पाठक** ने अपने युग की परिपाटी को एक नवीन संदेश ग्रहण करने की शक्ति दी तथा ऐतिहासिक महत्त्व को स्वीकारते हुए नयी प्रवृत्तियों को स्वीकार किया जो द्विवेदीयुगीन कवियों के द्वारा प्रयुक्त होकर बाद में 'छायावाद' के रूप में सामने आया।[2]

आधुनिक हिन्दी काव्य-क्षितिज पर छायावादी काव्य की किरणें 1914 के बाद से ही अपनी आभा बिखेरना शुरू कर चुकी थीं। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के मध्य सन् 1920 ई० में छायावादी काव्य का विस्तार प्रसार एवं विकास का आरम्भ होता है। छायावादी काव्य साहित्य आन्दोलन के रूप में, हिन्दी काव्य जगत् में 25 से 30 वर्षों, तक क्रियाशील रहा है किन्तु इसके प्रौढ़तम एवं विकसित रूप के दर्शन हमें सन् 1920 से सन् 1936 के मध्य होते हैं।[3]

छायावाद पर सर्वप्रथम निबन्ध लिखने का श्रेय **पं० मुकुटधर पाण्डेय** को है। सन् 1920 में जबलपुर की पत्रिका **श्री शारदा** के जुलाई, सितम्बर, नवम्बर तथा दिसम्बर अंकों में **मुकुटधर पाण्डेय** द्वारा लिखित **'हिन्दी में छायावाद'** शीर्षक से प्रकाशित, चार निबन्धों को पाण्डेय लेखन-माला के रूप में जाना गया। यह चारं निबन्ध छायावाद का सर्वप्रथम स्वरूप विश्लेषण करते हैं।

अत्यन्त प्रारम्भ में **गंगाप्रसाद पाण्डेय** ने **'महाप्राण निराला'** में 'छायावाद' को **निराला जी** की 'देन' कहकर पुकारा था। इस शब्द के प्राथमिक प्रयोग में सम्भवतः 'लांछना' अधिक अन्तर्निहित थी किन्तु बाद में इसे लाक्षणिक शैली में ध्वन्यार्थ छायापरक परियोजना तथा मनः बिम्ब के व्यक्त प्राकृतिक

1. आचार्य नन्ददुलारे वायपेयी : *आधुनिक साहित्य*, पृ० 57
2. राजेश्वरदयाल सक्सेना : *छायावादः स्वरूप और व्याख्या*, पृ० 107
3. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ*, पृ० 90

सौन्दर्य पर छायात्मक आवरण के अर्थ में ग्रहण किया गया। अतः 'छायावाद' नाम काव्य-गरिमा के अनुरूप ही दिखाई दिया और उसे स्वीकार कर लिया गया। **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने अपनी पुस्तक **'हिन्दी-साहित्य'** में छायावाद के नामकरण के विषय में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है—"इस नवीन प्रकार की कविता को किसी ने छायावाद नाम दे दिया। यह शब्द बिल्कुल नया है। यह भ्रम ही है कि इस प्रकार के काव्य को बँगला में छायावाद कहा जाता था और वहीं से यह शब्द हिन्दी में आया है। छायावाद शब्द केवल चल पड़ने के जोर से ही स्वीकारणीय हो सका है, नहीं तो इस श्रेणी की कविता की प्रकृति को प्रकट करने में यह शब्द एकदम असमर्थ है।"[1]

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने **छायावाद** पर पाश्चात्य चिन्तन का पूर्ण प्रभाव स्वीकारा है। यहाँ तक कि वह 'छायावादी काव्यधारा की प्रेरणा का मूलस्रोत अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों की कविता[2] ही मानते हैं। किन्तु **डॉ० द्विवेदी** का उपयुक्त कथन सत्य नहीं है। इसका कारण यह है कि 'छायावादी काव्यान्दोलन' विशुद्ध भारतीय काव्यधारा है। 'छायावाद' भारतीयत्व से जुड़ा हुआ शब्द है।[3] वास्तव में छायावादी काव्यांदोलन का प्रेरणास्रोत वह व्यापक सांस्कृतिक आन्दोलन और सांस्कृतिक नवजागरण था जिसकी बागडोर **ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य-समाज, थियोसाफिकल सोसाइटी, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द** तथा **अरविन्द** आदि के हाथ थी। छायावादी काव्यांदोलन के लिए भारतीय संस्कृति की वैचारिकता एवं विशुद्ध भारतीय सभ्यता का प्रमुख योगदान रहा है। छायावाद का आधार परतंत्रता में विकसित होनेवाली राष्ट्रीय भावना और प्राचीन दर्शन की नूतन आख्या से प्रसूत मानवतावादी तथा अध्यात्मवादी दर्शन है।[4] छायावादी काव्यों पर रहस्यवाद, उपनिषदों का ब्रह्मवाद, सांख्य और वेदान्त दर्शन, अद्वैतवाद, बौद्ध-दर्शन का दुःखवाद, शैवागम का आनन्दवाद, सूफियों का प्रतिबिम्बवाद आदि दार्शनिक विचारों का प्रभाव पड़ा है।........ दर्शन का व्यापक प्रभाव छायावादी कविताओं के मूल में है।[5]

यदि छायावादी काव्य की प्राणशक्ति को दृष्टि में रखकर 'छायावाद' नामकरण के औचित्य की सार्थकता पर दृष्टिपात किया जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि कल्पना, अनुभूति तथा चिन्तन में समस्त पारदर्शी रूपों को सामने लायी है— अन्तः एवं बाह्य के समस्त रूपों की व्यंजना। अतः यदि 'छाया' शब्द को अतिविशिष्टार्थ रूप में ग्रहण करें तो यह शब्द **आचार्य द्विवेदी** द्वारा संचित शब्द कल्पना के अविरल प्रवाह से घन संश्लिष्ट आवेगों की पूर्णाभिव्यक्ति व्यंग्यात्मक रूप में करता है। यदि 'छाया' शब्द की गूढ़ व्याख्या की जाय तो हमें आत्मनिष्ठ स्थितियों का परिचय परम्परा और स्वच्छन्दतावाद में, यथार्थ और आदर्श में, भौतिकता के साथ आध्यात्म में तथा संवेदना के साथ भावना की कल्पनात्मक भावानुभूतियों में, 'छाया' शब्द स्वयं तो अदृश्य भाव का सूचक है किन्तु वह व्यक्त तत्त्वों की ओर आकर्षण की माँग करते हुए रूपात्मक विरोधों की समन्वयात्मकता का सूचक एवं प्रेरक भी है।

अतः 'छायावाद' शब्द की सार्थकता को शंका की दृष्टि से देखना अथवा उसे भारतीयत्व से परे तौलना उचित नहीं है। ऐसा करके हम छायावाद शब्द की सार्थकता को अत्यन्त सीमित कर देते

---

1. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी, *हिन्दी साहित्य*, पृ० 461-462
2. सं० हजारीप्रसाद द्विवेदी, *अवन्तिका काव्यालोचनांक*, जनवरी 1954, पृ० 212
3. राजेश्वरदयाल सक्सेना : *छायावाद, स्वरूप और व्याख्या*, पृ० 105-106.
4. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ*, पृ० 102
5. वही, पृ० 100

हैं क्योंकि 'छायावाद' शब्द की सार्थकता उसमें निहित काव्य-गुणों में स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। शब्दार्थौचित्य की दृष्टि से भी 'छायावाद' शब्द इतना व्यापक है कि इसमें शास्त्रीय से लेकर उन्मुक्त पद्धतियों, दार्शनिकता, ऐतिहासिकता, वैयक्तिकता और यहाँ तक कि राष्ट्रीयता का बोध भी लक्षित होता है। दूसरे शब्दों में 'छायावाद' का अर्थ सम्पूर्ण कार्य-प्रवृत्तियों से है।

छायावादी काव्यधारा के विचार के संदर्भ में सर्वप्रथम **श्रीधर पाठक** का नाम आता है। यद्यपि **श्रीधर पाठक** ने 'छायावाद' पर अलग से कोई विचार विवेचन नहीं किया, किन्तु उन्होंने अपने युग के ऐतिहासिक महत्त्व को दृष्टि में रखते हुए नयी प्रवृत्तियों को स्वीकार कर एक नवीन संदेश प्रसारित किया। उनका यह प्रयास द्विवेदीयुगीन कवियों की लेखनी के माध्यम से अन्ततः 'छायावाद' के रूप में प्रकट हुआ।

श्रीधर पाठक के बाद पं० मुकुटधर पाण्डेय ने छायावाद पर प्राथमिक निबन्ध लिखे। **पं० मुकुटधर पाण्डेय** ने छायावाद को मिस्टीसिज़्म (पाश्चात्य मिस्टीसिज़्म) से जोड़ा है। उन्होंने छायावाद को मायामय और अविवेच्य करार देते हुए उसके केवल लांछित रूप को स्वीकार किया है। छायावाद क्या है? इस सम्बन्ध में **पं० मुकुटधर पाण्डेय** का वक्तव्य इस प्रकार है– "अंग्रेजी या किसी पाश्चात्य साहित्य अथवा बंग साहित्य की वर्तमान स्थिति की कुछ जानकारी रखनेवाले वो सुनते ही समझ जायेंगे कि यह शब्द मिस्टीसिज़्म के लिए आया है। छायावाद एक ऐसी भाषामय वस्तु है कि शब्दों द्वारा उसका ठीक वर्णन करना असम्भव है। ऐसी रचनाओं में शब्द अपने स्वाभाविक मूल्य को खोजकर सांकेतिक चिह्न मात्र हुआ करते हैं।....... छायावादी कवियों में अस्थिरता और क्षीणता के साथ एक तरह की विचित्र उन्मादकता और अंतरंगता होती है, जिनके कारण वस्तु उनको प्रकृत रूपों में नहीं, किन्तु अन्य रूपों में देखती है। इस अन्य रूप का सम्बन्ध कवि के अन्तर्जगत् से रहता है। उनकी कविता देवी की आँखें सदैव ऊपर की ओर उठी रहती हैं। मृत्युलोक से उसका बहुत कम सम्बन्ध रहता है। वह बुद्धि और ज्ञान की सामर्थ्य सीमा का अतिक्रमण करके मनः प्राण के अतीत लोक में विचरण करती है।"[1]

पं० मुकुटधर पाण्डेय के छायावादी काव्य से सम्बद्ध अत्यधिक विचार-विवेचन के द्वारा तत्सम्बन्धी विचारों का विकास सम्भव हुआ।

जब वर्णनात्मक रचनाओं का प्राधान्य हो जाता है तब उसके विरोध में भावात्मक स्वरूपों की प्रतिक्रिया आरम्भ हो जाती है। व्यंजना और ध्वनि का ही काव्य-क्षेत्र में प्रमुख स्थान है। अतः चिन्तनशील मस्तिष्क एवं भावप्रवण हृदय इस प्रकार की रचनाओं की ओर अधिक खिंचता है।[2]

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने कहा– "छायावादी कविता अस्पष्ट, गुप्त गूढ़ छायामयी है, जिसे शुष्क विचारों का विजृम्भण कहकर पुकारा जाता है जो नीरस और अमानवीय होती है।[3] छायावाद के संदर्भ में चर्चा करते हुए अन्यत्र **आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी** ने कहा है कि, "छायावाद से लोगों का क्या मतलब है? कुछ समझ में नहीं आता। शायद इसका मतलब है कि किसी कविता के भावों

1. राजेश्वरदयाल सक्सेना : *छायावाद : स्वरूप और व्याख्या*, पृ० 108.
2. अयोध्यासिंह उपाध्याय : *हरिऔध रस-साहित्य और समीक्षा*, पृ० 122-123
3. आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी : *संचयन*, पृ० 106

की छाया, यदि कहीं अन्यत्र जाकर पड़े तो उसे छायावाद की कविता कहना चाहिए।''[1] इस प्रकार **आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी** छायावादी काव्यधारा का निषेधात्मक रूप ही उजागर करते हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने **'हिन्दी साहित्य के इतिहास'** में छायावाद को एक नवीन दृष्टिकोण से परिभाषित किया था। **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने छायावाद को दो अर्थों में ग्रहण किया है। उनके अनुसार, ''छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका सम्बन्ध काव्य से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम् को आलम्बन बनाकर चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक बार व्यंजना करता है। .... छायावाद शब्द का दूसरा प्रयोग काव्यशैली या पद्धति-विशेष के व्यापक अर्थ में है।.................... रहस्यवादी कवि अपनी रचनाओं में प्रस्तुतों को लेकर चलते थे। हिन्दी छायावाद शब्द का जो व्यापक प्रयोग रहस्यवाद के अतिरिक्त हुआ, वह इसी प्रतीक शैली के अर्थ में हुआ। छायावाद का सामान्यतः अर्थ हुआ- प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करनेवाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन।''[2]

आचार्य शुक्ल ने **'चिन्तामणि' भाग- 2** के **'काव्य में रहस्यवाद'** शीर्ष क के अन्तर्ग त लिखा है कि, ''जो छायावाद नाम से प्रचलित है वह वेदान्त के पुराने प्रतिबिम्बवाद का है। यह प्रतिबिम्बवाद सूक्तियों के यहाँ से होता हुआ यूरोप में गया जहाँ कुछ दिनों के पीछे प्रतीकवाद में संश्लिष्ट होकर धीरे-धीरे बंग साहित्य के कोने आ निकला और नवीनता की धारणा करने के लिए छायावाद कहा जाने लगा।[3]

आचार्य शुक्ल द्वारा प्रतिपादित छायावाद की परिभाषा का घोर विरोध हुआ, किन्तु शुक्ल जी के प्रभाव के कारण इसका खुलकर विरोध न हो सका। **आचार्य शुक्ल** के इस नवीन दृष्टिकोण के साथ एक दिशा-सूत्र ने छायावादी काव्यधारा को उलझाने का ही कार्य किया, सम्प्रति जिसका स्पष्टीकरण नवीन उद्भावकों, जिनमें **आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी** शीर्षस्थ हैं, ने किया। **आचार्य वाजपेयी** ने नवीन साहित्य के नवीन प्रश्नों को सार्वजनिक तथा स्थायी परिमाणों में परखने का सफलतम प्रयास किया किन्तु कहीं-कहीं आचार्य वाजपेयी भी छायावाद को रहस्यवाद समझने की भ्रान्त धारणा से अपने आपको बचा नहीं पाये हैं।

छायावादी युग के प्रवर्तक एवं प्रतिनिधि कवि हैं **जयशंकर प्रसाद**। **जयशंकर प्रसाद** के छायावाद सम्बन्धी विचार एवं प्रवृत्तियाँ उनके **''काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध''** नामक ग्रन्थ में प्राप्त होती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से **प्रसाद जी** में अवचेतनीय भाव ग्रंथियाँ सक्रिय होकर उनके मनःबिम्ब के भावपूर्ण सत्य का आभास कराती हैं। अतः छायावाद को इसी संदर्भ में परिभाषित करते हुए प्रसाद ने कहा है कि, ''कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की किसी घटना अथवा देश-विदेश की सुन्दरी के बाह्य-वर्णन से भिन्न जब वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति होने लगी तब हिन्दी में उसे 'छायावाद' के नाम से अभिहित किया गया। इस ढंग की कविताओं में भिन्न प्रकार के भावों की नये ढंग से अभिव्यक्ति हुई। यह नवीन भाव आन्तरिक-स्पर्श से पुलकित थे।''[4]

---

1. आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी : *संचयन,* पृ० 86
2. राजेश्वरदयाल सक्सेना : *छायावाद : स्वरूप और व्याख्या,* पृ० 109
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, *चिन्तामणि (भाग- 2)* पृ० 15
4. जयशंकर प्रसाद : *काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध,* पृ० 123

प्रसाद जी ने अपनी इस छोटी-सी परिभाषा के द्वारा छायावादी काव्य के कलेवर की 'व्यंजना' द्वारा व्यापक अभिव्यक्ति की है। **प्रसाद जी** की छायावादी काव्य के लिए दी गयी परिभाषा अत्यन्त लचीली एवं विस्तृत है जिसमें छायावादी काव्य की अधिकतम प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं। **आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी** ने **जयशंकर प्रसाद** की पुस्तक ***काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध*** की भूमिका में प्रसाद जी की परिभाषा को ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रदान की है। **आचार्य वाजपेयी** ने कहा है कि, "छायावाद एक ऐतिहासिक आवश्यकता भी है और दार्शनिक अभ्युत्थान भी। प्रसाद जी का यह स्पष्ट मत है कि दार्शनिक दृष्टि से यह अभ्युत्थान प्राचीन रहस्यात्मक परम्परा में है, जिसे भूले भारत को बहुत दिन हो गये थे।"[1]

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने 'छायावाद' काव्यधारा के सम्बन्ध में प्रत्यक्षतः अपने विचारों को तो अभिव्यक्ति प्रदान नहीं की है किन्तु अपने काव्य की भूमिकाओं में तथा अपनी विविध निबन्ध पुस्तकों में उन्होंने छायावाद की स्वच्छन्दतावादी विवेचना अवश्य की है। उनके काव्य से ही हमें उनके काव्य-सिद्धान्तों के भी दर्शन होते हैं। हमें निराला के काव्य-सिद्धान्तों में छायावादी काव्य-चिंतन का स्वरूप अत्यन्त व्यापक धरातल पर मिलता है। इस प्रकार हमें **महाकवि निराला** के काव्य में स्वच्छन्दतावादी उन्मुक्ति, सौन्दर्य-दृष्टि, रहस्यवादी काव्य-प्रक्रिया आदि के दर्शन होते हैं। वे स्वयं अपने काव्य ग्रंथ ***प्रबन्ध-पद्म*** में स्वीकारते हैं कि छायावादी कविताएं भाषा साहित्य के विचारों से अधिक विकसित हैं।[2] वैसे निराला के काव्यग्रंथ ***परिमल*** की भूमिका में **निराला** ने स्पष्ट रूप से कहा है कि "हिन्दी में साहित्य का सही-सही युग अभी नहीं आया है- नवीन जीवन के भीतर से एक ऐसा आवर्त बढ़ाकर उठनेवाला है जिसके साथ साहित्य के अगणित जल-कण उस एक ही चक्र की प्रदक्षिणा करते हुए उसके साथ एक ही प्रवाह में बह जायेंगे।[3]

निराला के उक्त वक्तव्य से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि उन्होंने छायावाद को 'साहित्य का सही-सही युग, कहकर उसे गौरवान्वित किया है।

निराला के पश्चात् प्रकृति चेतना के कल्पनाप्रिय, भावदर्शी तथा व्यक्तिपरक आत्मचिंतक **सुमित्रानन्दन पंत** की गिनती छायावादी शीर्षस्थ कवियों में की जाती है।

छायावाद की मुख्य तथा मध्यवर्तिनी धारा, चित्रमयी अभिव्यंजना आदि रोमांटिक प्रवृत्ति न होकर राष्ट्रीय अन्तर्जागरण की चेतना तथा विश्व-विकास के नये मूल्य के रूप-स्पर्श को वाणी देने की ओर गतिशील रही, जिसने निश्चय ही मानव सम्बोधि को अपनी अभिव्यक्ति के पावन दोने में भरकर उन्मुक्त भाव से वितरित किया है।[4]

इसी संदर्भ में छायावादी रचना-शिल्पी **सुमित्रानन्दन पंत** ने अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करते हुए कहा है कि, "छायावाद की सार्थकता उस युग के विशिष्ट भावात्मक दृष्टिकोणों में जो भारतीय जागरण की चेतना का सर्वात्मवादमूलक कैशोर शुभारम्भ भर था- इसमे अभिव्यंजना के तत्त्व तथा रूपशिल्प की विशेषताओं के व्यापक उपकरण थे- छायावाद की शैली में भाव और रूप अन्यन्याश्रित

1. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, *भूमिका, काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध,* (प्रसाद) पृ० 18
2. निराला, *प्रबन्ध-पद्म,* पृ० 175
3. निराला, *परिमल (भूमिका),* पृ० 7-8
4. सुमित्रानन्दन पंत : *छायावाद-पुनर्मूल्यांकन,* पृ० 34

होकर शब्द की चित्रात्मकता में प्रस्फुटित होते हैं।''[1]

इस प्रकार **सुमित्रानन्दन पंत** के उपर्युक्त वक्तव्य में विशिष्ट भावनात्मक दृष्टिकोण द्रष्टव्य है जो वास्तव में भारतीय चेतना का सर्वात्ममूलक कैशोर शुभारम्भ था, जिसमें शिल्प विशेषताओं के व्यापक उपकरण विद्यमान थे। **श्री सुमित्रानन्दन पंत** ने छायावादी कवि अथवा कलाकार के सम्बन्ध में भी अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि, ''छायावादी कवि अथवा कलाकार वास्तव में आध्यात्मिक चेतना की अनुभूति नहीं प्राप्त कर सका था, वह केवल बौद्धिक जीवन-दर्शनों, मान्यताओं एवं धारणाओं से प्रभावित हुआ था, इसलिए वह युग-जीवन की कठोर वास्तविकता से कटकर कुछ दार्शनिक एवं मानसिक विरोधों में सामञ्जस्य स्थापित कर संतुष्ट रहने की चेष्टा करने लगा।''[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि छायावादी कवि आध्यात्मिक चेतना की अनुभूति नहीं प्राप्त कर सका था और वह नैराश्यपूर्ण बौद्धिक मान्यताओं से प्रभावित हुआ अतः युग की कठोर वास्तविकता से उसका साक्षात्कार नहीं हो पाया और यही वह खाई है छायावाद और स्वच्छन्दतावाद के बीच की जिसे छायावादी कवि पार नहीं कर सका और स्वच्छन्दतावादी कवि कहलाने का गौरव उसे प्राप्त नहीं हुआ।

जब भी कोई नवीन विचारधारा किसी भी प्रचलित धारा को तोड़कर अस्तित्व में आती है और अपने लिए उच्च स्थान के निर्माण के लिए प्रयत्नशील रहती है तो साहित्य में उसकी समीक्षा प्रारम्भ हो जाती है। उसकी समीक्षा में निर्णीत मतों की भी प्रधानता हो जाती है। वैसे आधुनिक हिन्दी साहित्य के किसी भी अंग की समीक्षा में कोई भी मत सर्वस्वीकृत नहीं हो सका किन्तु थोड़े-बहुत अन्तर के साथ सभी समीक्षकों ने अपने मतों को रख उसे स्वीकृत कराने का प्रयास किया है।

'छायावाद' की समीक्षा में सभी छोटे-बड़े समीक्षकों ने अपने मतों को सर्वमान्य स्वीकरण हेतु प्रस्तुत किया किन्तु समस्त समीक्षकों की अपेक्षा छायावादी समीक्षा के सम्बन्ध में **महादेवी वर्मा** की व्याख्या तथा निर्णय सर्वाधिक मान्य एवं विवेचनीय है। इसका कारण यह है कि **महादेवी** ने रहस्यात्मक आधार पर ही छायावाद की विवेचना की है। उन्होंने अपनी इस सैद्धान्तिक समीक्षा में दर्शन को स्वीकार किया है किन्तु सामाजिक परिस्थितियों को वह उतना स्वीकार नहीं कर सकी हैं। उन्होंने अपने काव्य मे भावना-ज्ञान, कर्म की समानावस्था को सिद्धान्त रूप में स्वीकार कर इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर ही छायावादी काव्य के स्वरूप को मूल्यांकन किया। वे काव्य के स्वरूप में 'लोक-समष्टि की भावना' तथा काव्य-प्रयोजन में 'स्वान्तः सुखाय' की भावना को सर्वोपरि रखती हैं।

छायावाद को परिभाषित करते हुए **महादेवी वर्मा** ने कहा है कि, ''छायावादी कवि धर्म के अध्यात्म से अधिक दर्शन के ब्रह्म का ऋणी है जो मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है। बुद्धि से सूक्ष्म धरातल पर कवि ने जीवन की अखण्डता का भावन किया, हृदय की भावभूमि पर उसने प्रकृति में बिखरी सौन्दर्य-सत्ता की रहस्यमयी अनुभूति और दोनों के साथ स्वानुभूत सुख-दुःखों को मिलाकर एक ऐसी काव्य-दृष्टि उपस्थित कर दी जो प्रकृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवाद, छायावाद आदि अनेक नामों का भार सँभाल सकी।''[3]

1. सुमित्रानन्दन पंत : *चिदम्बरा,* भूमिका पृ० 9
2. सुमित्रानन्दन पंत : *गद्यपथ,* पृ० 154
3. गंगाप्रसाद पाण्डेय : *महादेवी का विवेचनात्मक गद्य,* पृ० 61

छायावादी समीक्षा का विवेचन करते हुए **महादेवी वर्मा** ने कहा है कि, ''छायावाद स्थूल की प्रतिक्रिया में उत्पन्न हुआ था। छायावाद ने कोई रूढ़िगत अध्यात्म या वर्गगत सिद्धान्तों का संचयन न देकर हमें केवल समष्टिगत चेतना और सूक्ष्मगत सौन्दर्य-सत्ता की ओर जागरूक कर दिया था। इसी से उसे यथार्थ रूप में ग्रहण करना हमारे लिए कठिन हो गया।[1] ''छायावाद के जन्मकाल में मध्यवर्ग की ऐसी क्रान्ति नहीं थी, आर्थिक प्रश्न उतना उग्र नहीं था। सामाजिक विषमताओं के प्रति हम सम्पूर्ण क्षोभ के साथ आज के समान जाग्रत नहीं हुए थे। हमारे सांस्कृतिक असन्तोष का इतना स्याह रंग भी नहीं चढ़ा था।''[2]

महादेवी के अनुसार, ''छायावाद युग का काव्य व्यक्तिप्रधान होने लगा और वैयक्तिक उल्लास-विलास की अभिव्यक्ति का सफल माध्यम बन सका।''[3] इसका कारण वे यह मानती हैं, ''सृष्टि के बाह्याकार पर इतना अधिक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपनी अभिव्यक्ति के लिए रो उठा।''[4]

जिस समय **महादेवी** ने हिन्दी साहित्य जगत् में पदार्पण किया वह समय छायावाद का ऐश्वर्य काल था। यही कारण था कि उन्होंने छायावादी काव्य समीक्षा एवं विवेचना में बहुमुखी आधारों का आश्रय लिया। उनका छायावादी काव्य विवेचन मूलतः प्रकृतिमूलक, रहस्यवादी अद्वैतपक्षीय भूमिका लिये हुए है। उनकी छायावादी समीक्षा का रूप रागात्मक स्वानुभूति, परानुभूति, दुःखमूलक वेदना तथा करुणामूलक विश्वमैत्री की भावना लिये हुए है।

महादेवी ने अपने छायावादी विवेचन में छायावादी काव्य के कलापक्ष का भी तर्कपूर्ण विवेचन किया है। उनके अनुसार, ''छायावाद के नए छन्द बन्धों में सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति को जो रूप देना चाहा वह खड़ीबोली की सात्त्विक कठोरता नहीं सह सकता था। अतः कवि ने कुशल स्वर्णकार के समान, प्रत्येक शब्द को ध्वनि, वर्ण और अर्थ की दृष्टि से नाप-तौल, काट-छाँटकर तथा कुछ नये गढ़कर अपनी सूक्ष्म भावनाओं को कोमलतम कलेवर दिया।''[5]

महादेवी ने छायावादी समीक्षा-विवेचन में छायावादी काव्य की अन्तर्मुखी प्रक्रिया को स्वीकार किया है क्योंकि महादेवीयुगीन काव्य-साधना-काल में युग के प्रति दृष्टिकोण अत्यन्त संकीर्ण होने के कारण उनके सामाजिक बाह्यानुभव किसी भी ऊहापोही प्रवृत्ति को अनुभव न करने के कारण अन्तर्मुखी हो उठे हैं। इस सम्बन्ध में उन्होंने स्वयं ही कहा है- ''इस युग का कवि हृदयवादी हो या बुद्धिवादी, स्वप्न द्रष्टा हो या यथार्थ का चित्रकार, अध्यात्म से बँधा हो या भौतिकता का अनुगत, उनके निकट यही एक मार्ग शेष है कि वह अध्ययन में किसी जीवन की चित्रशाला से बाहर आकर, जड़ सिद्धान्तों का पाथेय छोड़कर अपनी सम्पूर्ण संवेदन शक्ति के साथ जीवन में घुल-मिल जाये।''[6] इस प्रकार स्पष्ट है कि, **महादेवी** ने छायावाद को रहस्यवाद की प्रवृत्तियों के माध्यम से ही देखा है तभी तो उसमें वस्तु-पक्षीय स्वरूपों का निराकरण तथा क्षणानुभव-विशेष की मार्मिक अभिव्यंजना को प्रधानता मिलती

1. महादेवी वर्मा : *आधुनिक कवि,* पृ० 20-21
2. वही, पृ० 26
3. गंगा प्रसाद पाण्डेय : *महादेवी का विवेचनात्मक गद्य,* पृ० 11
4. महादेवी वर्मा : *रश्मि* पृ० 4
5. गंगा प्रसाद पाण्डेय : *महादेवी का विवेचनात्मक गद्य,* पृ० 65
6. महादेवी वर्मा : *आधुनिक कवि,* पृ० 33

है। छायावाद के विस्तृत पटल में रहस्यवाद एक प्रक्रिया बनकर आया है, जिसकी अभिव्यंजित दशाओं में अनेक वस्तुचित्रों को स्वीकार किया गया है।

महादेवी का सूत्र सौन्दर्य-बोध भावात्मक स्वरूपों की रंगीनियाँ तो उपस्थित कर सका है, परन्तु उसमें नवप्राणों का संचार नहीं कर सकता है, यह संचार तो नवशक्तियों की माँग करता है, उनकी छायावादी विवेचना बहुरूपी तो है, परन्तु बहुमुखी नहीं।''[1]

महादेवी की समष्टिगत चेतना तथा व्यक्तिमुख भावनाओं की उदात्त अवस्थाएँ किसी अव्यक्त-आदर्श को ही सामने ला सकी हैं। छायावाद की विषय-स्थली अधिक प्रकृतिवादी होने के साथ-साथ उसमें बुद्धिगत स्वरूपों का भी स्थान है। अतः विश्लेषणात्मक गति में समष्टि की समस्या, मानववाद की समस्या बनकर आई है, किन्तु उनकी विवेचना में सीमित रूपों को व्यक्त किया गया है। वह छायावाद के पतन के कारणों को स्वीकार करती हैं, फिर भी उसे शाश्वत प्रक्रिया के रूप में मानती हैं क्योंकि उनका काव्य अनुभूतिजनित आत्माभिव्यक्ति में कल्पना के अनेक रूपों को सूक्ष्म सौन्दर्य की स्थितियों में रहस्यवादी बना देता है। इस कारण उनका आलोचनात्मक दृष्टिकोण भी भावुकता प्रधान रहा है।''[2]

महादेवी वर्मा के पश्चात् **डॉ० रामकुमार वर्मा** ने भी छायावादी काव्य विवेचन में रहस्यवाद को आधार बनाया। रहस्यवाद को वह छायावादी काव्य की आत्मा मानते हैं। **डॉ० वर्मा** ने एक ओर रहस्यवाद का दार्शनिक पक्ष पुष्ट रूप में प्रस्तुत किया है वहीं दूसरी ओर वह रहस्यवाद को भाव-स्वप्नों का दर्शी भी बना देते हैं। वे छायावाद को रहस्यवादी अनुभूतिमयी रति की भावाभिव्यक्ति मानते हैं। यहाँ वह छायावाद का विषय क्षेत्र अत्यन्त सीमित कर देते हैं। छायावाद के विषय क्षेत्र को अत्यन्त सीमित करते हुए **डॉ० वर्मा** ने छायावाद को नैसर्गिक प्रतिभा का वरदान बताते हुए उसे आध्यात्मिक अनुभूति का काव्यान्दोलन माना है।

डॉ० वर्मा के अनुसार, ''छायावाद हृदय की एक अनुभूति है। वह मौलिक संसार के क्रीड़ा में प्रवेश कर अनन्त जीवन के तत्त्व ग्रहण करती है। उसे हमारे वास्तविक जीवन से जोड़कर हृदय में जीवन के प्रति एक गहरी संवेदना और आशीर्वाद प्रदान करती है।''[3]

डॉ० वर्मा ने अपनी इस विवेचना में केवल कवि हृदय के उद्‌गारों की व्यंजना प्रस्तुत की है किन्तु बौद्धिक विवेचना का अभाव उनके छायावादी काव्य विवेचन में खटकता है।

डॉ० रामकुमार वर्मा, महादेवी वर्मा के छायावादी विवेचन से ही प्रभावित दिखायी देते हैं। इन सभी आलोचकों एवं कवियों की परिभाषाओं में नवीनता का कहीं भी आभास नहीं मिलता। इन सभी कवियों एवं आलोचकों का छायावादी विवेचन या तो **महादेवी** एवं **रामकुमार** के छायावादी विवेचन का अनुकरणमात्र है या केवल आश्रित तथ्यों का विश्लेषण। केवल **गंगाप्रसाद पाण्डेय** की परिभाषा कुछ अलग-सी प्रतीत होती है। **डॉ० गंगाप्रसाद पाण्डेय** ने अपनी पुस्तक **'छायावाद एवं रहस्यवाद'** में

---

1. राजेश्वरदयाल सक्सेना : *छायावादी काव्य और व्याख्या,* पृ० 139
2. वही, पृ० 139-140
3. डॉ० रामकुमार वर्मा : *विचार दर्शन,* पृ० 72

छायावाद को कुछ इस प्रकार परिभाषित किया है, ''एक अज्ञात-संप्राण छाया की झाँकी, जो परमात्मा को छोड़ आत्मा और जगत के क्षेत्र में विचरण करे, अतः छायावाद वस्तुवाद के आगे और रहस्यवाद के पीछे की चीज है।''[1] इस प्रकार **गंगाप्रसाद पाण्डेय** छायावाद में रहस्यवाद को स्वीकारते तो हैं, किन्तु रहस्यवाद का स्वरूप स्पष्ट करने में असमर्थ रहने के कारण वह छायावाद का भी कोई स्पष्ट स्वरूप नहीं घोषित कर पाये हैं किन्तु फिर भी उनकी इस परिभाषा में कुछ नवीन होने के कारण उनका यह काव्य-विवेचन छायावादी काव्यधारा के मूल्यांकन का आधार एवं कारण बनी।

छायावादी कवियों के साथ-साथ हिन्दी साहित्य समीक्षकों ने भी छायावादी काव्य धारा मूल्यांकन एवं विवेचन में भी अपना योगदान देकर भागीदारी निभायी।

हिन्दी समीक्षा-संसार में **आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी** का नाम अग्रणीय है। **आचार्य वाजपेयी** छायावादी काव्य के अग्रदूत तथा हिन्दी समीक्षा में वैज्ञानिक मूल्यों के स्वरूप निर्माता तथा प्रथम उद्भावक हैं। **आचार्य वाजपेयी** छायावादी काव्य के सजग व्याख्याता होते हुए उसके स्वरूप एवं सौन्दर्य के प्रथम निष्पक्ष द्रष्टा हैं। उन्होंने छायावाद की व्याख्या करते हुए कहा है कि ''मानव अथवा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु उक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भान मेरे विचार से 'छायावाद' की सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है।''[2] उनके अनुसार वह सूक्ष्म सौन्दर्य जो स्वतंत्र एवं क्रियाशील होने के साथ-साथ किसी कथा अथवा आख्यायिका का वर्ण्य विषय नहीं है छायावाद की सीमा-रेखा में आ सकता है। **आचार्य वाजपेयी** छायावादी काव्यधारा का एक आध्यात्मिक पक्ष भी स्वीकार करते हैं किन्तु इस छायावादी आध्यात्मिक पक्ष की प्रेरणा वह धार्मिक न मानकर मानवीय एवं सांस्कृतिक मानते हैं। इस प्रकार उनका यह प्रयोग तत्कालीन विचारधारा तथा उसके एकांगी प्रयोग की प्रतिक्रिया का परिणाम है। स्वयं उनके अनुसार, ''भारतीय परम्परागत आध्यात्मिक दर्शन की नव प्रतिष्ठा का वर्तमान की अनिश्चित परिस्थितियों में यह एक सक्रिय प्रयत्न है।''[3]

निष्कर्षतः **आचार्य वाजपेयी** छायावादी काव्य की सामयिक एवं सार्वजनिक, राष्ट्रीय एवं मानवतावादी काव्य तथा भौतिकवादी एवं दार्शनिक उपलब्धियों पर विचार तो करते ही हैं, साथ ही, वह छायावादी काव्य की समस्त प्रवृत्तियों एवं उसकी पूर्ण स्थितियों की भी विवेचना करते हैं। छायावादी काव्य के प्रयोजन, काव्य-प्रक्रिया के समस्त स्रोतों, समस्त विषयरूपों तथा अभिव्यक्ति के स्वच्छन्द रूप की चिरस्थायी उपादेयता में ही **आचार्य वाजपेयी** का छायावादी समीक्षात्मक विवेचन प्रकट हुआ है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने छायावादी विवेचन के परिप्रेक्ष्य में छायावादी प्रवृत्तियों की चर्चा करते हुए उन्हें स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों से नितान्त भिन्न माना है। वह छायावाद को रोमांटिक कविता की कोरी नकल नहीं मानते। वह छायावाद को हिन्दी के विकास की एक विशेष अवस्था मानते हैं। छायावाद की कोरी नकल बतलाना **रवीन्द्रनाथ, शेली** आदि से ही अनुप्राणित समझना मेरी दृष्टि में विशेष महत्व नहीं रखता। नवीन कविता की बढ़ती हुई लोकप्रियता अकेली यह सिद्ध कर रही है कि इसमें

1. डॉ० गंगाप्रसाद पाण्डेय : *छायावाद और रहस्यवाद*, पृ० 11
2. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, *हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी*, पृ० 261
3. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : *आधुनिक साहित्य*, पृ० 351

कुछ सार, कुछ-न-कुछ विशेषता अवश्य है, भले ही इसकी मात्रा अधिक न हो। अन्य शब्दों में मैं छायावाद को पहले हिन्दी के विकास की एक अवस्था-विशेष, पीछे और कुछ समझता हूँ।''[1]

आचार्य वाजपेयी की छायावादी विवेचना का एक व्यावहारिक पक्ष भी है। इसके अन्तर्गत उन्होंने छायावाद के विषय पक्ष को **प्रसाद** और **निराला** के काव्यों की विवेचना से तथा छायावाद के कला पक्ष को **निराला, पंत** तथा **महादेवी** के काव्यों की विवेचना के द्वारा समझाया है। **कामायनी** की कल्पना प्रबन्धता, **निराला** के गीतिकाव्य, **पन्त** की शब्दशक्ति व्यंजकता तथा **महादेवी** की अमूर्तचित्रों की प्रतीक व्यंजनाओं का अध्ययन ही उनके छायावादी विवेचन का प्राण है। यदि वह **महादेवी** का रहस्यवाद और सर्वात्मवाद स्वीकार करते हैं तो लोकदर्शी-अद्वैतवाद में मानव-मात्र के एकत्व की कल्पना को **निराला** के काव्य में नकार नहीं पाते, साथ ही शाश्वत अध्यात्मवादी व्यावहारिक भूमिका पर **प्रसाद जी** का समरसतावाद एवं **पंत** की क्षणभंगुरतावादी दृष्टि **आचार्य वाजपेयी** को बरबस ही अपनी ओर आकृष्ट कर देती है। चारों कवियों के अध्ययन एवं उनके काव्यों के विवेचन से एक बात तो स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है कि छायावादी काव्य तत्कालीन युग की नवमानवतावादी माँग पर सांस्कृतिक एवं युग के मूल्यों को स्वीकार करते हुए भारतीय संस्कृति के गर्भ में स्थायित्व को पाने का प्रयत्नशील था। छायावादी काव्य किसी भी कवि विशेष की व्यक्तिगत जागीर नहीं है और न ही वह किसी कवि विशेष की मानसिक योजना पर निर्मित काव्य है। यह काव्यान्दोलन समस्त मानव की सार्वजनीनता को प्रकट करनेवाला काव्य है वरन् इसका मूलरूप मानव मात्र की सहज मानसिक क्रियाओं से निर्मित लक्ष्य के गौरव को प्राप्त करता है। **आचार्य वाजपेयी** द्वारा दी गयी छायावादी काव्य की इतनी समग्र विवेचना अन्यत्र दुर्लभ है।

सांस्कृतिक अन्वेषक **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने भी छायावाद पर पर्याप्त विचार कर उसका मूल्यांकन किया है। स्वभाव से सांस्कृतिक अन्वेषक होने के कारण उन्होंने **'हिन्दी साहित्य'** में छायावाद की ऐतिहासिक पृष्ठभूमिका भी हमें दी। उनका विचार है कि आधुनिक कविता को छायावाद का नाम बिना विचारे ही दे दिया गया वरना इस श्रेणी की कविता को प्रकट करने में यह छोटा-सा शब्द सर्वथा असमर्थ है। **डॉ० देवराज उपाध्याय** की पुस्तक **'रोमांटिक साहित्य-शास्त्र'** की भूमिका में **डॉ० द्विवेदी** अपने इन्हीं विचारों का उल्लेख किया है। ''इस नवीन प्रकार की कविता को किसी ने छायावाद नाम दे दिया। यह शब्द बिल्कुल नया है, जो केवल चल पड़ने के जोर से स्वीकारणीय हो गया, नहीं तो इस श्रेणी की कविता की प्रकृति को प्रकट करने में यह शब्द असमर्थ था।''[38]

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने छायावादी काव्य के विवेचन सम्बन्धी विचारों की परिणति इस प्रकार की है—''छायावाद एक विशाल सांस्कृतिक चेतना का परिणाम था, जिसमें कवियों की भीतरी व्याकुलता ने ही नवीन भाषाशैली में अपने को अभिव्यक्त किया। इन सभी उल्लेखनीय कवियों में थोड़ी-बहुत आध्यात्मिक-अभिव्यक्ति की व्याकुलता भी थी। जिन कवियों ने शास्त्रीय और सामाजिक रूढ़ियों के विद्रोह का भाव दिखाया था उनके इस भाव का कारण तीव्र सांस्कृतिक चेतना ही थी।''[3]

---

1. आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी : *माधुरी (अगस्त, जनवरी* 1929-30) पृ० 237
2. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य-शास्त्र, (भूमिका),* पृ० 1
3. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : *हिन्दी साहित्य* पृ० 461-462

मौलिक और सूक्ष्म प्रस्तुत-विधान छायावादी काव्य की मूलभूत इकाई है जबकि इस काव्य की रचनाओं में प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करनेवाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन-सर्वज्ञ नहीं है। **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने छायावादी काव्य की मौलिकता के सम्बन्ध में कुछ इस प्रकार अपने विचार व्यक्त किये हैं—''छायावादी काव्य की मौलिकता के सबसे अधिक दर्शन, नवीन उपलक्षणा प्रतीक तथा साम्य-योजना में हुए हैं। अतएव छायावादी कवि या परम्परा प्राप्त उपमाओं से संतुष्ट न होकर नवीन उद्भावना में प्रवृत्त हुए।''[1]

डॉ० द्विवेदी ने छायावाद को स्वच्छन्दतावाद से अभिन्न एवं उसके पर्याय के रूप में स्वीकार किया है। उनका मत है कि – ''छायावादी काव्य की प्रेरणा का मूलस्रोत अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों की कविता ही हो सकती है।''[2] उनके यह विचार सर्वमान्य नहीं हो सके क्योंकि वेदान्तीय मानववाद की भूमिका पर पल्लवित एवं पुष्पित आध्यात्मिकता से मण्डित छायावाद भारतीय नवजागरण की सर्वाधिक निष्कलुष और तलस्पर्शी साहित्यिक अभिव्यक्ति है। वैसे **डॉ० द्विवेदी** के अनुसार – ''रोमाण्टिक साहित्य की वास्तविक उत्सभूमि वह मानसिक गठन है जिसमें कल्पना के अविरल प्रवाह से घन-संश्लिष्ट-निविड-आवेग की प्रधानता होती है।''[3]

''रहस्यतत्त्व की भाव-भूमिका पर कल्पना और अनुभूति के चित्ररंगों को प्रधानता देता है तथा रहस्यतत्व ज्ञान की भूमिका पर दर्शन के स्वरूप को अख्तयार कर लेता है।''[4]

छायावादी काव्य का व्यापार कल्पना का व्यापार है अनुभूति का उतना नहीं क्योंकि कल्पना ही चिंतन और अनुभूति का निर्माण एवं अभिव्यंजना कराती है।

''कवि अपने सीमित व्यक्तित्व में जिस सुख-दुःख का अनुभव प्राप्त किये होता है उसे जब वह कल्पना के सहयोग से, छन्द-अलंकार आदि के संयोग से और निखिल विश्व की गर्भव्यथा की चिंता करके सर्वसाधारण के ग्रहण योग्य बनाकर प्रकट करता है तो उसे हम अनुभूति की अवस्था कहते हैं। चिंतन की अवस्था में कवि संसार को देखता है, सोचता है, यह सब क्या हो रहा है? अनुभूति की अवस्था में वह अनुभव करता है कि क्या हो गया ?''[5]

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि **आचार्य द्विवेदी** ने छायावाद तथा स्वच्छन्दतावाद को अलग-अलग ध्यान में उतना नहीं रखा है, बल्कि उसके स्वरूप को संश्लिष्ट रूप में देखा है। उनके मत का सार इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्वच्छन्दतावाद यदि विश्व साहित्य के खुले पटल पर सांस्कृतिक काव्य दृष्टि है तो छायावाद भारतीय संस्कृति का उन्मेष है, जिसका अपना राष्ट्रीय महत्त्व है।''[6]

शान्तिप्रिय द्विवेदी भावात्मक दृष्टि से सम्पन्न आलोचक एवं समीक्षक हैं। भावुक समीक्षक होने

---

1. वही, पृ० 456
2. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, अवन्तिका, काव्योचनांक, जनवरी, 1954, पृ० 212
3. डॉ० देवराज उपाध्याय : *रोमांटिक साहित्य शास्त्र (भूमिका)* पृ० 2
4. राजेश्वर दयाल सक्सेना, *छायावादी काव्य : स्वरूप और व्याख्या,* पृ० 162
5. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : *हिन्दी साहित्य,* पृ० 457
6. राजेश्वरदयाल सक्सेना, *छायावादी काव्य : स्वरूप और व्याख्या,* पृ० 163-164

के कारण उनमें विवेचनात्मक विश्लेषण कम तथा रचनात्मक प्रक्रिया अधिक है किन्तु वह तथ्यों की गहराई को बड़ी ही कुशलता से पकड़ते हैं। उन्होंने कल्पना एवं अनुभूति के तत्त्वों का आश्रय लेकर छायावादी काव्य के स्थायी चिंतन को परखा है तथा छायावादी काव्य प्रवृत्तियों के स्वरूप का मूल्यांकन भी छायावादी काव्य-प्रवृत्तियों के स्रोतों को ध्यान में रखकर किया है। वह विषय को अनुभूति के माध्यम से ही परखने का प्रयास करते हैं भले ही उनकी समीक्षा-पद्धति का भावादर्श उतना मूल्यवादी न हो।

कवि और काव्य में **शांतिप्रिय द्विवेदी** ने 'छायावाद' काव्य के विषय और उसके स्वरूप को लेकर एक पूरा भावात्मक परिच्छेद लिखा है जिसमें आपनें छायावाद के मूल पक्ष को प्रधानता दी है।

''द्विवेदी युग में जिस स्थूल सत्य या वस्तु-पाठ का निर्देश कर चुके हैं, ठीक उसी की दूसरी दिशा में छायावाद है, जो विषय की इतिवृत्तात्मकता को न लेकर केवल उसकी जीवनस्पर्शिता को ग्रहण करता है। इतिवृत्तात्मक कविता का सम्बन्ध यदि स्थूल शरीर से है तो छायावाद का सूक्ष्म प्राण है। इतिवृत्तात्मक दृष्टि से गद्यकार यदि एक पुष्प के सर्वांग का विवरणात्मक वर्णन करेगा तो छायावादी कवि उस पुष्प के भीतर से केवल उस प्राणमय जीवन को अपनाएगा जो उसके साथ आत्मीयता स्थापित किये हुए हैं। इस प्रकार की काव्यानुभूति विश्व की समग्र छवि के साथ हृदय को एकात्म कर देती है। अनेक में एक चेतन के आभास से ही परब्रह्म के 'एकोऽहं द्वितीयोनास्ति' का बोध होता है। छायावाद इस बोध-मार्ग का साहित्यिक सोपान है, जिसकी पूर्णता रहस्यवाद में है।''[1]

पंडित शांतिप्रिय द्विवेदी ने छायावाद की विवेचना ऐतिहासिक, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, दार्शनिक तथा भावना, विषय एवं सौन्दर्य की दृष्टि से भी की है।

छायावादी कविता न तो एकदम शृगारिक है न एकदम भक्तिमूलक। इसमें दोनों के बीच का व्यक्तित्व है। छायावाद असल में हिन्दी कवि के उस स्वस्थ काव्य का आविर्भाव है, जबकि साहित्य एक लम्बी प्रगति के बाद अपनी थकान मिटाकर अपनी समस्त अनुभूतियों एवं समस्त अभिव्यक्तियों का सार संचय करता है।''[2]

शांतिप्रिय द्विवेदी के अनुसार, ''छायावाद सूक्ष्मता का बोधक है। छायावाद भक्तिकालीन.......... सगुण काव्य का सम्प्रदायरहित नवविकास है। उसमें कंठ के वेदों, उपनिषदों से लेकर युग जागरण का स्वर समाविष्ट था।''[3] छायावाद के कलापक्ष के सौन्दर्य को स्वीकारते हुए शांतिप्रिय द्विवेदी ने लिखा है कि ''छायावाद केवल-एक काव्य नहीं, जहाँ तक साहित्यिक टेकनीक से इसका सम्बन्ध है, यह उत्कृष्ट कला है। काव्य केवल अभिव्यक्ति ही नहीं बल्कि उसके ऊपर एक श्रेष्ठ अभिव्यक्ति है।''[4]

इस प्रकार **शांतिप्रिय द्विवेदी** ने अपनी छायावादी काव्य विवेचना में निषेधात्मक, स्वीकारात्मक तथा निर्णयपरक प्रवृत्तियों एवं मूल्य प्रदायक प्रवृत्तियों का स्वरूप निखारा है। शांतिप्रिय द्विवेदी छायावाद को मूलतः अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद की भाँति वैज्ञानिक चेतना का काव्यपरक बौद्धिक आन्दोलन मानते हैं। यह बौद्धिक आन्दोलन आत्मपरक भावना तथा निर्माणपरक कल्याण के माध्यम से भावरूपों

1. शान्तिप्रिय द्विवेदी : *कवि और काव्य*, पृ० 150-151
2. वही, पृ० 181
3. वही, पृ० 222
4. वही, पृ० 222

में काव्य के सांस्कृतिक पक्षों की विवेचना करता है। वह छायावाद का वर्तमान के जीवन का मानवतावादी एवं आध्यात्मिक ऐसा दृष्टिकोण मानते हैं, जिसमें अव्यक्त की भावना का उद्‌गीत गाया गया है तथा साथ ही, व्यक्ति के महात्म्य की सामाजिक स्वीकृति का उदार रूप भी स्वीकृत है। उन्होंने छायावाद और रहस्यवाद के मौलिक वैषम्य को स्पष्ट करते हुए कहा है कि, ''कवि की भाषा में जो छायावाद है, संत की भाषा में वही रहस्यवाद है और कर्मयोगी की भाषा में गांधीवाद।[1]

डॉ० नगेन्द्र ने भी छायावादी काव्य की पर्याप्त विवेचना की है। उन्होंने मनोवैज्ञानिक परिपाटी में अपनी समीक्षा को सींचा है। **'विचार और अनुभूति'** में इस सम्बन्ध में अपने विचारों को अभिव्यक्त प्रदान करते हुए कहा है कि, ''आज के बीस या पच्चीस वर्ष पूर्व युग की उद्‌बुद्ध चेतना ने बाह्य अभिव्यक्ति से निराश होकर जो आत्मबद्ध अन्तर्मुखी साधना आरम्भ की वह काव्य में छायावाद के रूप में अभिव्यक्त हुई। जिन परिस्थितियों ने हमारी कर्मप्रवृत्ति को अहिंसा की ओर प्रेरित किया, उन्हीं ने भावप्रवृति की छायावाद की ओर। उसके मूल में स्थूल से विमुख होकर सत्ता के प्रति आग्रह था।''[2]

डॉ० नगेन्द्र सूक्ष्म के प्रति सूक्ष्म के आग्रह को छायावाद की मूल प्रेरणा मानते हैं, ''जिसके अन्तर्गत उपयोगितावाद के प्रति भावुकता का विद्रोह, नैतिक रूढ़ियों के प्रति मानसिक स्वतंत्रता का विद्रोह और काव्य के बन्धनों के प्रति स्वच्छन्द कल्पना और टेकनीक का विद्रोह''[3] आदि सभी प्रकार की स्थूलताओं के प्रति उनकी प्रतिक्रिया अन्तर्मुक्त है अतः आपने छायावाद को भाव-पद्धति और 'नवजीवन के स्वप्नों और कुंठाओं के सम्मिश्रण' से निर्मित जीवन के प्रति एक विशेष भावात्मक दृष्टिकोण कहा है, जिसकी अभिव्यक्ति प्रायः प्रकृति के प्रतीकों द्वारा हुई।''[4]

इस प्रकार **डॉ० नगेन्द्र** केवल एक अन्तर्मुखी प्रवृत्ति को काव्य का सम्पूर्ण परिवेश मानकर छायावादी काव्य को कुंठाग्रस्त काव्य घोषित करते हैं। उनके अनुसार, ''कवि मन ने बाह्य अभिव्यक्ति से निराश होकर जो आत्मबद्ध अन्तर्मुखी साधना आरम्भ की, वह काव्य में छायावाद के रूप में अभिव्यक्त हुई है।''[5]

कवि का मन बाह्य परिस्थितियों से अन्तर्मुखी नहीं हो सकता है। **डॉ० नगेन्द्र** ने छायावादी कवि मन को बाह्य परिस्थितियों से अन्तर्मुखी बताकर उसका अतिवादी रूप प्रकट किया है। वैसे यह एक मनोवैज्ञानिक प्रश्न है कि क्या व्यक्ति का व्यक्तित्व बाह्य प्रतिक्रियाओं से संवेदनाओं को संकुचित करता है? क्या व्यक्ति का व्यक्तित्व अपनी अन्तर्मन की रूढ़ियों के अनुसार बाह्य स्वरूप का संकोचशील चित्र ग्रहण करता है? छायावादी काव्य में व्यक्तित्व पक्ष यदि प्रधान रूप से सशक्त हुआ है तो कल्पना के माध्यम से न कि संवेदना से। सौन्दर्य की उपासना और नवसर्जना के बहुमुखी चिंतन में भी यह काव्य के ही माध्यम से सृजित होता है।

---

1. शान्तिप्रिय द्विवेदी : *सामयिकी,* पृ० 190-191
2. डॉ० नगेन्द्र : *विचार और अनुभूति,* पृ० 53
3. डॉ० नगेन्द्र, *सुमित्रानन्दन पंत,* पृ० 2
4. डॉ० नगेन्द्र, *आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ,* पृ० 21
5. वही, *विचार और अनुभूति,* पृ० 56-60

डॉ० नगेन्द्र ने छायावाद और स्वच्छन्दतावाद को अभिन्न माना है। "इसमें संदेह नहीं कि छायावाद मूलतः रोमानी कविता है और दोनों की परिस्थितियों में जागरण और कुंठा का मिश्रण है।"[1]

छायावाद में दार्शनिक पीठिका भी है, परिष्कृत संवेदनाओं का रहस्य भी है और एक तटस्थता भी है। यह मानना कि छायावाद में केवल इन्द्रियानुभूति की व्यंजना, जागरण और कुंठा का मिश्रण है, छायावाद पर सर्वथा मिथ्या आरोप है। इसका कारण यह है कि, "कुंठा, प्रतिक्रिया और विद्रोह से जनित अनुभूति शास्त्रीय अनुभूति का धरातल नहीं ले सकती, अतः छायावाद रसबोध की दृष्टि से साम्प्रदायिक या वैयक्तिक बन जाता है।"[2]

डॉ० विनय मोहन शर्मा ने छायावाद और स्वच्छन्दतावाद को अभिन्न माना है। उन्होंने 'छायावाद' को स्वच्छन्दतावाद से पृथक् कोई वाद नहीं माना है, वरन् उसी की शृंखला के रूप में स्वीकारा है।"[3] छायावाद पर अंग्रेजी कवियों के प्रभाव को स्वीकार करते हुए **डॉ०शर्मा** ने कहा कि, "हमारा निश्चित मत है कि छायावादी काव्य अंग्रेजी के **वर्ड्सवर्थ, शेली, कीट्स, बायरन, कॉलरिज** आदि रोमाण्टिसिज़्म से अधिक प्रभावित है।"[4]

डॉ० विनय मोहन शर्मा ने छायावादी काव्य में विषय की वैयक्तिकता तथा शैली वैचित्र्य की प्रधानता मानते हुए कहा है कि, "छायावादी रचनाओं में नूतन कल्पना, नूतन छवि-विधान, गुह्य संकेत, मानव आत्मा के दर्शन की लालसा, लौकिक प्रेम की उद्दामता सभी कुछ पाया जाता है। यदि गंभीरता से विचार किया जाये तो छायावाद कोई वाद नहीं बन सकता, छायावाद की रचनाओं में भावों की नवीनता की अपेक्षा भावों को व्यक्त करने की कला में नवीनता अवश्य थी।"[5]

डॉ० विनय मोहन शर्मा ने युग मन से परिचित कलाकार की अन्तःभूमियों को एकदम अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद की प्रतिकृति स्वीकार कर लिया और मनोवैज्ञानिक कारण कार्य के दोष को दूर करने में असमर्थ रहे। निष्कर्षतः यह मानना ही पड़ेगा कि विद्रोहजनित प्रभावों में भावनाओं का स्वरूप उसी विद्रोह की अनेक रूपाभिव्यक्ति करेगा।"[6]

रामधारी सिंह 'दिनकर' राष्ट्रीय विचारधारा के प्रतिनिधि कवि हैं। अतः उनका दृष्टिकोण दार्शनिक न होकर सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक है। अन्य छायावादी कवियों की अपेक्षा वह अधिक मंगलवादी और वस्तुवादी हैं। इसी कारण वह अधिक प्रगतिशील भी हो गये हैं। मूलतः राष्ट्रकवि होने के कारण **दिनकर** छायावादी काव्यान्दोलन प्रक्रिया में राष्ट्रीय आन्दोलन की भूमि को ही उसकी मूल प्रवृत्ति मानते हैं। दिनकर इस राष्ट्रीय आन्दोलन को उस भारतीय सांस्कृतिक नवोत्थान का परिणाम मानते हैं जिसमें पाश्चात्य जीवन की स्वीकृति के साथ-साथ नयी मानवतः की अभिव्यक्ति का प्रयास भी था।

छायावादी काव्यान्दोलन को वह **रवीन्द्रनाथ** की प्रेरणा से आया आन्दोलन नहीं मानते। इसका

---

1. डॉ० नगेन्द्र : *आधुनिक हिन्दी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ,* पृ० 20
2. डॉ० राजेश्वरदयाल सक्सेना : *छायावादी काव्य : स्वरूप और व्याख्या,* पृ० 174
3. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ,* पृ० 95
4. डॉ० विनयमोहन शर्मा, *साहित्यान्वेषण,* पृ० 14
5. डॉ० राजेश्वरदयाल सक्सेना : *छायावादी काव्य : स्वरूप और व्याख्या,* पृ० 175-176
6. डॉ० राजेश्वरदयाल सक्सेना : *छायावादी काव्य : स्वरूप और व्याख्या,* पृ० 176

कारण वह मानते हैं कि **प्रसाद** की **प्रेम पथिक** तथा **पं० माखनलाल चतुर्वेदी** की आरम्भिक कविताओं पर **रवीन्द्रनाथ** का कोई प्रभाव नहीं दिखायी देता। **निराला** एवं **पंत** के आगमन के साथ हिन्दी कविता पर **रवीन्द्रनाथ** का प्रमाद सम्मिलित हुआ था।

दिनकर ने छायावाद को अंग्रेजी के रोमांटिक आन्दोलन के समान माना है। द्विवेदी-युग के बाद की हिन्दी कविता के इस नवीन आन्दोलन का नामकरण भी वह उचित नहीं मानते। **'चक्रवाल'** की भूमिका में स्वयं उन्होंने इस आशय का उल्लेख किया है। द्विवेदी युग के बाद हिन्दी कविता में जो नया आन्दोलन आया उसका परिचय देने के लिए छायावाद और रहस्यवाद इन दो नामों का उल्लेख किया जाता है, किन्तु दो नामों की आवश्यकता कदाचित् नहीं होनी चाहिए। यह आन्दोलन, रूप और स्वभाव में, अंग्रेजी के रोमांटिक आन्दोलन के समान था और रोमांटिक कविता में रहस्यवादी तत्त्व रहते ही आये हैं। कठिनाई यह है कि भारतीय भाषाओं में अब तक कोई भी ऐसा शब्द प्रचलित ही नहीं हो सका जो रोमांटिसिज्म के पूरे अर्थ का द्योतन कर सके।''[1]

छायावाद की विशेषता को **'दिनकर'** ने भावुकता एवं कल्पना की अतिशयता के रूप में परिचित कराया है, ध्वनि और वेदना नहीं वह तो सभी श्रेष्ठ कविताओं का गुण है।

''छायावाद की विशेषता ध्वनि और वेदनाप्रियता नहीं, प्रत्युत् भावुकता और कल्पना की अतिशयता तथा परिचित से दूर जाकर अपरिचित में विचरण का मोह था।''[2]

दिनकर ने छायावादी काव्यान्दोलन में दो प्रवृत्तियों का विशेष रूप से उल्लेख किया है, ''एक तो सृष्टि के रहस्यों को समझने की उत्सुकता या जिज्ञासा जो इस आन्दोलन का बौद्धिक पक्ष थी, दूसरी ऊँची से ऊँची सुन्दरता को देखने की कामना या चाह जिससे छायावादी काव्यान्दोलन का रागात्मक पक्ष विकसित हुआ।''[3] यही कारण था कि छायावादी आन्दोलन को **दिनकर** ने द्विवेदी-युगीन काव्य को कल्पनाहीनता के विरुद्ध विद्रोह[4] कहा है। उन्होंने छायावाद को मुख्यतः प्रगीतों का आन्दोलन[5] कहा है।

इस प्रकार 'दिनकर' की छायावादी काव्य-विवेचना में छायावादी प्रवृत्तियों का विवेचन कम वरन् उसका निराकरण ही अधिक हुआ है।

सुप्रसिद्ध प्रगतिवादी समीक्षक **डॉ० रामविलास शर्मा** ने छायावाद की परिभाषा इस प्रकार की है, ''छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह नहीं रहा। वह तो थोथी नैतिकता, रूढ़िवाद और सामन्ती, साम्राज्यवादी बन्धनों के प्रति विद्रोह था। यह विद्रोह मध्यम वर्ग के तत्त्वावधान में हुआ था। इसलिए उनके साथ मध्यमवर्गीय असंगति, पराजय और पलायन की भावना से जुड़ी हुई है।...... क्या जीवन से पराङ्मुख कोई व्यक्ति ऐसी सुन्दर पंक्तियाँ लिख सकता है? क्या स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह कहने से उस ठोस जीवन-आकांक्षा, मानवीय-प्रेम मानवीय-सौन्दर्य की व्याख्या हो सकती है?''[6]

---

1. रामधारी सिंह दिनकर : *चक्रवाल (भूमिका)*, पृ० 10
2. वही, पृ० 10
3. वही, पृ० 15
4. वही, पृ० 67
5. वही, पृ० 20
6. डॉ० राजेश्वर दयाल सक्सेना : *छायावादी काव्य : स्वरूप और व्याख्या*, पृ० 180

मनोविश्लेषणवादियों की आलोचना में व्यक्तिवादी प्रदेय के साथ छायावादी काव्यधारा के सामाजिक प्रदेय पक्ष पर भी **डॉ० रामविलास शर्मा** ने विचार किया है। छायावादी काव्य को वह एक नवीन परम्परा के रूप में देखते हैं। एक ऐसी परम्परा जिसने रीतिकालीन कविता के संस्कारों को हिन्दी से निकाल फेंका था और जिसके बिना हिन्दी साहित्य का विकास भी असम्भव था। वह छायावाद को पलायनवादी अथवा प्रतिक्रियावादी काव्य कहना छायावाद के प्रति घोर अन्याय मानते हैं। छायावाद को प्रतिक्रियावादी, पलायनवादी कहकर लांछित करना अन्याय है। उसमें पराजय और पलायन की भावनाएँ भी हैं तो 'विद्रोह एवं विजय' के मानवमात्र के प्रति सहानुभूति के स्वर भी।''[1]

डॉ० रामविलास शर्मा ने **निराला** के काव्य को आधार मानकर छायावादी काव्य की विवेचना की है और उसे प्रगतिवादी स्वरूप में देखने का प्रयत्न भी किया है। छायावादी काव्य की प्रगतिशीलता का वर्णन करते हुए **डॉ० शर्मा** ने कहा है कि **निराला जी** छायावादी काव्य में सबसे अधिक प्रगतिशील रहे हैं। छायावाद को उन्होंने ही भारतीय अद्वैतवाद का दार्शनिक आधार दिया। अतः उनका यह रोमांटिक विद्रोह न था। यह उनका जीवन-दर्शन था। वह कर्ममय जीवन की ओर ढकेलता है, संघर्ष से छिपकर किसी कोने में छिपे रहने का बहाना नहीं है।''[2] छायावाद उनकी दृष्टि में केवल एक काव्यान्दोलन ही नहीं था वरन् वह सांस्कृतिक भावना की आशामयी अभिव्यक्ति ही था। **डॉ० शर्मा** छायावादी काव्यान्दोलन की सांस्कृतिक काव्योपलब्धि को सत् साहित्य का पक्ष मानते हुए छायावाद की व्यापकता को स्वीकार करते हैं।

''इन समस्त प्रगतिवादी समीक्षकों में **डॉ० रामविलास शर्मा**, छायावाद की सांस्कृतिक विरासत को स्वीकार करते हैं किन्तु वे भी उसे दर्शन के चिन्ता जगत् से हटाकर कर्म के व्यावहारिक स्वरूप में ताने का प्रयत्न करते हैं। **डॉ० शर्मा शिवदान सिंह** तथा **जगदीश गुप्त** की भाँति छायावादी प्रवृत्तियों को स्तब्ध नहीं बना देते हैं, उसकी गतिशीलता को **डॉ० नामवर सिंह** की भाँति स्वीकार करते हैं। **डॉ० शर्मा** का विवेचन प्रगतिवादी दृष्टि से अधिक मौलिक एवं सारगर्भ जान पड़ता है।''[3]

डॉ० रामविलास शर्मा ने कल्पना को ही छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति मानते हुए उसे स्वप्रविष्ट काव्य-दृष्टि का चमत्कार कहा है—''छायावादी कवियों की कल्पना एक ओर अपार्थिव छाया-लोक में घूमती है, दूसरी ओर वह यथार्थ का घनीभूत अनुभव प्रस्तुत करती है, काव्य में वह स्वप्रविष्ट कवि-दृष्टि का चमत्कार दिखाती है।''[4]

डॉ० नामवर सिंह ने छायावादी काव्य विवेचना में छायावादी काव्य-प्रवृत्तियों को ही अपनी परिभाषा का आधार बनाया है। **डॉ० सिंह** ने छायावाद को चित्रण की सूक्ष्मता[5] कहकर परिभाषित किया है तो वहीं दूसरी ओर वह छायावाद को राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की अभिव्यक्ति है जो एक ओर पुरानी रूढ़ियों से मुक्ति चाहता था और दूसरी ओर विदेशी पराधीनता से। इस जागरण में क्रमशः इसकी काव्यात्मक

---

1. रामविलास शर्मा : *संस्कृति और साहित्य*, पृ० 35
2. डॉ० राजेश्वरदयाल सक्सेना : *छायावादी काव्य : स्वरूप और व्याख्या*, पृ० 181
3. वही, पृ० 83
4. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की छायावादी प्रवृत्तियाँ*, पृ० 91
5. वही, पृ० 91

अभिव्यक्ति भी विकसित होती गयी और इसके फलस्वरूप छायावाद की संज्ञा का भी अर्थ विस्तार होता गया।''[1]

इस प्रकार **डॉ० नामवर सिंह** ने छायावाद को राष्ट्रीय जागरण की काव्यात्मक अभिव्यक्ति कहकर उसे विद्रोह की कविता का रूप प्रदान किया है। अतः **डॉ० सिंह** की छायावादी विवेचना काव्यपरक उतनी नहीं है, जितनी उपयोगितापरक। उनकी छायावादी विवेचना उपयोगितावादी जीवन-दर्शन की एक ऐसी शाखा है जो युग के सत्य का प्रतिपादन उस समय की समस्याओं के समाधान के रूप में करती है। वह जड़ता के गुणात्मक रूप चैतन्य में जीवन-दर्शन तथा अध्यात्म को प्रतिपादित करते हैं। **डॉ० सिंह** ने यह भी स्वीकार किया है कि छायावादी कविता रूढ़नियमों के विरुद्ध विद्रोह करती हुई व्यक्तिगत अनुभूतियों के दर्शन के प्रति अत्यन्त सचेत भी है। उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है, ''समाज और साहित्य को उसने जिस तरह पुरानी रूढ़ियों से मुक्त किया, उसी तरह आधुनिक राष्ट्रीय और मानवतावादी भावनाओं की ओर भी प्रेरित किया। व्यक्तित्व की स्वाधीनता, विराट्-कल्पना, प्रकृति-साहचर्य, मानव-प्रेम, वैयक्तिक प्रणय, उच्च नैतिक आदर्श, देशभक्ति, राष्ट्रीय स्वाधीनता आदि के प्रसार द्वारा छायावाद ने हिन्दी जाति के जीवन में ऐतिहासिक कार्य किया। कविता के रूप में विन्यास को पुरानी संकीर्ण रूढ़ियों से मुक्त करके उसने नवीन अभिव्यंजना-प्रणाली का द्वार खोल दिया।[2]

डॉ० नामवर सिंह ने कल्पना को छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति माना है। उन्होंने कल्पना के दो रूपों की अपने छायावादी विवेचन में चर्चा की है और छायावादी काव्य की अभिव्यंजना के लिए उत्तरदायी भी माना है।

''अन्तर्दृष्टिदायिनी कल्पना और जीवन-शक्तिदायिनी— कल्पना इन दोनों की सुन्दर अभिव्यंजना छायावाद में हुई है।''[3]

डॉ० नामवर सिंह ने छायावाद पर अंग्रेजी रोमांटिक कविता के प्रभाव को अस्वीकारा है। उनका स्पष्ट मत है कि छायावाद का अभ्युदय हमारी विशेष सामाजिक, साहित्यिक और ऐतिहासिक आवश्यकता के कारण हुआ था—

निस्संदेह छायावाद के अभ्युदय में अनेक सहायक कारण थे और उनमें **रवीन्द्रनाथ** की बँगला कविताओं तथा **वर्ड्सवर्थ** और **शेली** की अंग्रेजी कविताओं का स्थान प्रमुख है। देश-विचार से ये विचार विदेशी ही कहे जायेंगे। लेकिन छायावादी कवियों ने जब उन्हें अपनाया और उनसे प्रेरणा ली तो उन्हें एकदम अपनी आकांक्षाओं का प्रतिबिम्ब समझकर। यह विदेशी प्रभाव ग्रहण करने का अर्थ ही है कि छायावादी कवियों की मानसिक पृष्ठभूमि उसके अनुकूल थी। अन्यथा, **वर्ड्सवर्थ** और **शेली** का प्रभाव द्विवेदी युग के या उससे भी पहले भारतेन्दु-युग के कवियों पर क्यों नहीं पड़ गया? अंग्रेजी तो उस समय के लोग भी जानते थे और **वर्ड्सवर्थ, शेली** वगैरह की रचनाओं के भारत पहुँचने के लिए साठ-सत्तर साल का समय कम नहीं कहा जा सकता .... छायावाद हमारी विशेष सामाजिक और साहित्यिक आवश्यकता से पैदा हुआ और उस आवश्यकता की पूर्ति के लिए उसने

1. डॉ० नामवर सिंह : *छायावाद,* पृ० 15
2. वही, पृ० 150
3. डॉ० नामवर सिंह : *आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ,* पृ० 31

ऐतिहासिक कार्य किया।''[1]

छायावादी काव्य विवेचना एवं साहित्यिक चेतना पर **अज्ञेय** के विचार अज्ञेय के काव्य संग्रह **पुष्करिणी** में दृष्टिगोचर होते हैं। **त्रिशंकु** और **रूपांबरा** में केवल संकेत में ही इस काव्यधारा पर विचार किया गया है। **पुष्करिणी** में **अज्ञेय** ने छायावाद को इस प्रकार परिभाषित किया है—

''विदेशी शिक्षा तो अभ्यासपूर्वक पुराने मूल्यों को उच्छिन्न कर ही रही थी, पाश्चात्य विचारधारा का प्रभाव भी इस दिशा में पड़ रहा था। ईश्वरपरक नैतिकता का स्थान मानवपरक नैतिकता ले रही थी, नयी नैतिकता की स्थापना धीरे-धीरे हो रही थी। अतः एक स्वच्छन्दतावादी या नास्तिकवादी अन्तराल बढ़ता जा रहा था। महायुद्धोत्तर अवस्था और पराजयवाद ने इस अन्तराल को और भी गहरा कर दिया। फलतः संवेदनशील कृतिकार को गहरा अन्तर्द्वन्द्व प्रकट हुआ। यह अन्तर्द्वन्द्व उसे साधारण जन से दूर ले गया, इस दूरी के बोझ ने अन्तर्मन को नयी तीव्रता दी। उसने नये कवि में एक अभूतपूर्व आध्यात्मिक व्याकुलता उत्पन्न की। छायावादी काव्य मुख्यतः इस व्याकुलता की अभिव्यक्ति करने के लिए प्रयत्नों का परिणाम था। छायावाद नाम सर्वथा अपर्याप्त है। यह पहले अवहेलना-सूचक था।''[2]

अज्ञेय ने अपने छायावादी काव्य-विवेचन में छायावादी काव्य-प्रक्रिया, उसके विषय एवं शैली का आश्रय लिया है। **अज्ञेय** छायावाद के नामकरण पर भी आपत्ति करते हैं क्योंकि यह नाम पूरे छायावादी काव्य की व्याख्या करने में असमर्थ लगता है। छायावादी काव्य पर पाश्चात्य विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव **अज्ञेय** ने अपने छायावादी काव्य विवेचना में स्वीकार किया है। **अज्ञेय** ने अपने विचार प्रस्तुत संदर्भ में व्यक्त करते हुए कहा है, ''छायावाद में पश्चिम का प्रभाव जिस रूप में प्रकट हुआ उसका उत्स पश्चिम से होकर भी पश्चिम को अधिकार नहीं है कि वह उस पर गर्व करे, वह हमारी उपलब्धि है।''[3]

छायावाद को पाश्चात्य-साहित्य एवं अन्य विषयों के अध्ययन से आर्थिक प्रतिक्रियावाद तथा उसकी प्रतिक्रिया के रूप में विद्रोह मिला जिसका प्रभाव नवीन भारतीय सांस्कृतिक परम्परा पर पड़ा। नैतिकता के प्रति आग्रह तथा आस्थाएँ बदलने के कारण स्वच्छन्दतावादी अन्तराल भी बढ़ता जा रहा था। इससे संवेदनशील व्यक्तित्व में अन्तर्द्वन्द्व की नयी तीव्रता ने जन्म ले लिया। जब परम्परा के बीच से स्वच्छन्दतावादी अन्तराल बढ़ा तो काव्य की मूल प्रवृत्ति व्यक्तिवादी हो गयी और इस व्यक्तिवादी प्रवृत्ति का स्वप्न हिन्दी साहित्य का विद्रोह रूप था। जब पाश्चात्य स्वच्छन्दतावादी काव्य की भावुकता, और नवमानववाद छायावादी काव्य में एक साथ द्रष्टव्य हुए तो छायावादी काव्य के दो रूप लक्षित हुए पहला रूप विद्रोह का था तथा अन्य रूप निर्माण का लक्ष्य लिए हुए था। इस व्यक्तिवादी दृष्टि और विद्रोह का परिणाम यह हुआ कि इसने छायावादी काव्य में भाव, भाषा, छन्द और शिल्पकार को नवीन रूप प्रदान कर नवीन प्रतीक-योजना की स्थापना की।

''**अज्ञेय** छायावादी काव्य को अन्तिम प्रकृति काव्य कहते हैं। ''छायावाद'' का प्रकृति काव्य अपनी सीमाओं के बावजूद अन्तिम प्रकृति-काव्य था। यदि छायावादी काव्य मर गया तो उसके साथ प्रकृति काव्य की अंत्येष्टि हो चुकी है।''[4]

1. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ,* पृ० 96
2. अज्ञेय : *पुष्करिणी,* (संक्षिप्त संस्करण), पृ० 16
3. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ,* पृ० 96
4. अज्ञेय. *रूपाम्बरा,* पृ० 13

अज्ञेय ने छायावादी काव्य को नवीन मूल्यों की भूमिका की कसौटी पर परखा, उसका ऐतिहासिक रूप भी प्रकट किया किन्तु उसकी प्रवृत्तियों का अध्ययन नहीं किया जबकि छायावाद की प्रवृत्ति सदैव विकास में होने के कारण, इसकी प्रवृत्तियों की व्याख्या के बिना, छायावाद को परिभाषित करना उसके प्रति अन्याय है। **डॉ० देवराज** ने अपनी पुस्तक **छायावाद का पतन** में छायावादी काव्य-समीक्षा पर सभी दृष्टिकोणों से विचार किया है। यद्यपि **डॉ० देवराज** दर्शनशास्त्र के सुप्रसिद्ध विद्वान् हैं किन्तु आपने हिन्दी साहित्य को आधुनिक समीक्षा, कुछ समस्याएँ साहित्य चिन्ता, साहित्य और संस्कृति, साहित्यालोचन सम्बन्धी तीन अमूल्य निधियाँ प्रदान कर, हिन्दी साहित्य-संसार में अपना एक विशेष स्थान बनाया है। छायावाद के पतन से आपने छायावाद के सम्बन्ध में कहा है कि छायावाद क्या है? इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है कि वह गीतिकाव्य है, प्रकृति काव्य है, प्रेम काव्य है, अथवा रहस्यवादी काव्य है। छायावाद की कुछ अपनी निजी विशेषताएँ भी हैं। धूमिलता या अस्पष्टता, बारीकी या गुम्फन की सूक्ष्मता, काल्पनिकता और कल्पना वैभव।"[1]

इस प्रकार **डॉ० देवराज** छायावाद की परिभाषा उसके रूपात्मक तथा गुणात्मक रूपों के रूप में रखकर देखते हैं। वह छायावादी काव्य को प्रकृति-काव्य घोषित कर, प्रकृतिवादी काव्य को प्रकृतिवादी घोषित कर प्रकृतिवादी काव्य के आदर्श के रूप में देखते हैं। वह छायावादी काव्य के मूल में प्रेम और सौन्दर्य को मुख्य मानते हैं न कि आध्यात्मिकता को। वह छायावादी काव्य को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह तो मानते हैं किन्तु सूक्ष्म शब्द की व्याख्या करते समय उसे आध्यात्मिक से परे कर देते है। उनके अनुसार छायावाद आधुनिक पौराणिक चेतना के विरुद्ध आधुनिक लौकिक चेतना का विद्रोह था। ऐतिहासिक दृष्टि से छायावाद का वातावरण आध्यात्मिकता के उपयुक्त न था।"[2] उन्होंने आध्यात्मिकता का अर्थ किसी साम्प्रदायिक, धार्मिक चेतना से नहीं वरन् एक सार्वजनिक अनुभूति से दिया है जो ऊपर आत्मा (Super Soul) में विश्वास रखती है।

डॉ० देवराज ने छायावाद को न तो आध्यात्मिक काव्य के रूप में स्वीकारा है और न ही रहस्यवादी काव्य के रूप में वरन् वह इसे रोमाण्टिक काव्य रूप में कहना अधिक समीचीन समझते हैं क्योंकि उनके विचार से छायावादी काव्य रोमाण्टिक काव्य से प्रभावित हुआ था और उससे समानता भी रखता है।"[3]

सुप्रसिद्ध स्वच्छन्दतावादी समीक्षक **प्रोफेसर अजब सिंह** ने अपनी **स्वच्छन्दतावाद : छायावाद** एवं **आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ**, पुस्तकों में छायावादी समीक्षा पर तर्कपूर्ण विवेचना की है। उन्होंने कहा है कि छायावाद आन्तरिक अनुभूतियों का काव्य है।..................... इसके द्वारा बाह्य एवं अन्तः प्रकृति एवं मानव, चेतन एवं अचेतन के नवीन रहस्यों का उद्घाटन होता है। यह निरन्तर और नवीन प्रयोगशीलता का काव्य है। नये-नये काव्य-रूप नूतन छन्द-विधान, नयी प्रबन्ध-पटुता, अनेक प्रकार की शैलियों का व्यवहार इस काव्य की मौलिकता है।"[4]

डॉ० अजब सिंह ने छायावाद को साम्राज्य विरोधी चेतना के निखार का काव्य घोषित किया

---

1. राजेश्वर दयाल सक्सेना : *छायावादी काव्य : स्वरूप और व्याख्या*, पृ० 189
2. डॉ० देवराज : *छायावाद का पतन*, पृ० 14-15
3. वही, पृ० 21
4. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ*, पृ० 95

है। यह काव्य स्वाधीनता आन्दोलन से प्रेरणा लेता ही है किन्तु तत्कालीन सामाजिक क्रान्ति से प्रेरित है। **डॉ० सिंह** ने छायावादी काव्य को जीवन की स्वीकृति का काव्य कहा है। **डॉ० सिंह** के शब्दों में —"छायावाद साम्राज्य-विरोधी चेतना के निखार की कविता है। इतिहास के प्रति छायावादी कवियों का दृष्टिकोण स्वाधीनता आन्दोलन की राजनीतिक प्रेरणा से ही निर्धारित नहीं होता, बल्कि वह सामाजिक क्रान्ति से भी प्रभावित होता है। इस काव्य-प्रवाह में भारतीय सामाजिक क्रान्ति की आकांक्षा की अभिव्यंजना है। यह वर्णगत उत्पीड़न का विरोधी, शूद्र और नारी की समानता का समर्थक, धार्मिक संघ-विश्वासों और रूढ़ियों का विध्वसंक काव्य है। स्वभावतः छायावाद जीवन की स्वीकृति का काव्य है। संसार में जन्म लेना पाप है, संसार दुःख का कारण है, संसार मिथ्या है- इस तरह की मान्यताओं का वह विरोधी है।"[1]

डॉ० अजब सिंह ने छायावाद को विस्तृत फलक पर विश्लेषित तो किया ही है, साथ ही, छायावाद और स्वच्छन्दतावाद के मध्य एक पार्थक्य विभाजन रेखा खींचकर, स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद की अनेक भ्रांतियों का निराकरण भी किया है। **डॉ० सिंह** के अनुसार, "छायावाद पूर्व और पश्चिम का एक मिश्रण है। छायावाद में कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो पश्चिमी स्वच्छन्दतावाद में भी मिलती हैं लेकिन कुछ प्रवृत्तियाँ छायावाद में बढ़ गयी हैं, क्योंकि छायावाद का अपना परिवेश भी है।"[2]

डॉ० अजब सिंह ने छायावादी कलाकार पर भारतीय संस्कृति तथा समसामयिक परिस्थितियों के प्रभाव को स्पष्टतः स्वीकार किया है। उन्होंने हिन्दी के छायावाद और अंग्रेजी के स्वच्छन्दतावाद में कई अर्थों में एक दूसरे से किंचित् वैभिन्य को रेखांकित कर छायावादी समीक्षा का मूल्यांकन किया है। काव्यगत एवं स्थानगत विभेद भी छायावाद : स्वच्छन्दतावाद में वैभिन्र्य दर्शाता है।

प्रो० अजब सिंह ने स्वच्छन्दतावाद : छायावाद की तुलना एक ऐसे बीज से की है, जिसे यदि अलग-अलग भूमियों में रोपा जाये तो जैसी भूमि होगी बीज का पल्लवन भी उसी प्रकार का होगा। इसी प्रकार छायावाद का पल्लवन भारतवर्ष तथा स्वच्छन्दतावाद का पल्लवन यूरोप में हुआ। अपने छायावादी : स्वच्छन्दतावादी विचारों के प्रस्तुतीकरण में **डॉ० सिंह** के निम्न शब्द द्रष्टव्य हैं:

"छायावाद का पल्लवन भारतवर्ष की धरती में हुआ है तथा स्वच्छन्दतावाद (रोमांटिसिज़्म) का यूरोप मे, दोनों भिन्नता होगी क्योंकि दोनों में ऐसे तत्त्व हैं, जो पार्थक्य पैदा करने में सहायक हैं, एक कालगत भेद तथा दूसरा स्थानगत।"[3]

प्रो० अजब सिंह का स्पष्ट मत है कि छायावाद का उद्भव युग की अनिवार्य आवश्यकता के रूप में हुआ था केवल शैली का परिवर्तन, बँगला का प्रभाव या अंग्रेजी की रोमानी का अनुसरण नहीं था। वह तो अपने देश, साहित्य तथा युग की आन्तरिक प्रेरणाओं से उदित हुआ था और किसी बाह्य प्रेरणा का कृत्रिम परिणाम नहीं था।..................... हिन्दू नवोत्थान और यहाँ के व्यापक सांस्कृतिक आन्दोलन का अनिवार्य फल है।"[4]

---

1. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ*, पृ० 92
2. वही, पृ० 97
3. वही, पृ० 97
4. वही, पृ० 97-98

छायावादी आध्यात्मिकता के संदर्भ में **डॉ० अजब सिंह** मतैक्य नहीं हैं यद्यपि अन्य समीक्षक बहुमत से आध्यात्मिकता के पक्ष में हैं। उनका मत है कि, '' छायावाद की प्रज्ञादृष्टि पर भारतीय चिन्तन-दर्शन का प्रभाव गहरे रूप में पड़ा है। पाश्चात्य दार्शनिक प्रभाव की प्रेरणा सीधे दर्शन के क्षेत्र से न आकर कृति-साहित्य के माध्यम से मिली है। छायावादी-रचना-काल में **डेकार्त, कांट, हीगेल, फिक्ते** आदि की चिन्तन-पद्धति का प्रचलन काव्य के माध्यम से हुआ। इसलिए इन विचारकों के चिन्तन का संस्कार प्रभाव छायावादी कविताओं में भारतीय दर्शन की तुलना में कम प्रौढ़ रूप में पड़ा है।[1]

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि, ''अथ से इति तक छायावादी काव्यधारा का विकास तथा परिसमाप्ति प्रेम-सौन्दर्य की नितान्त वैयक्तिक एवं आन्तरिक ग्रन्थि की चेतना की अनुप्रमाणित रही है, जिसके परिप्रेक्ष्य में सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों का आधार निरन्तर प्रतिक्रियाशील रहा है।[2]

छायावादी काव्य समीक्षा मूल्यांकन एवं विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि छायावादी काव्य द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध प्रतिक्रिया, स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह तथा अभिव्यंजना की एक शैली है। जीवन के स्वप्न एवं कुण्ठा इसके उपजीव्य हैं। अभिव्यक्ति के लिए छायावादी काव्य में प्रतीकों का आश्रय लिया गया है। बाह्य से स्थान पर आभ्यन्तरिक के प्रतिपादन का आग्रह है तथा साथ-साथ व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक सत्ता का आभास होता है जो दार्शनिक सर्वात्मवाद से ओतप्रोत है तथा अन्त में यह भी कह सकते हैं कि छायावादी काव्य पर ईसाई संतों के रहस्यवाद, बँगला, संस्कृत तथा अंग्रेजी की पदावली तथा रोमांटिक काव्य शैली का पर्याप्त प्रभाव है तथा छायावादी काव्य में इनका प्रयोग भी मिलता है।

'छायावाद एवं स्वच्छन्दतावाद' सम्बन्धी तर्क-वितर्क एवं **तुलनात्मक समीक्षा** इत्यादि के साथ-साथ छायावाद एवं स्वच्छन्दतावाद के मध्य एक व्यवस्थित विभाजक रेखा खींचने का प्रयास अभी भी जारी है। यद्यपि **आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी** ने इस दिशा में अथक प्रयास कर स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद के पार्थक्य की ओर दृष्टि केंद्रित कर स्वच्छन्दतावादी चिंतन को छायावाद से इतर (भिन्न) दशा की ओर उन्मुख करने में विशेष योगदान किया है, किन्तु वहीं दूसरी ओर कुछ समीक्षक छायावाद को स्वच्छन्दतावाद का प्रतिरूप मानते हैं। यदि हम स्वच्छन्दतावाद तथा छायावाद की मूल प्रवृत्तियों की ओर दृष्टि केंद्रित करें तो दोनों की मूल प्रवृत्तियों में पर्याप्त साम्य दृष्टिगोचर होता है। शायद इसी कारण कुछ समीक्षक स्वच्छन्दतावाद तथा छायावाद को एक-दूसरे का प्रतिरूप समझ बैठे। स्वच्छन्दतावाद तथा छायावाद दोनों के ही मूल में सौंदर्य-भावना, प्रकृति-प्रेम, मानवीय चेतना, आत्माभिव्यंजन, विद्रोह-भावना, रहस्य-भावना, वैयक्तिकता, वैयक्तिक-प्रेमानुभूति, मिथक, प्राचीन-संस्कृति के प्रति मोह, प्रतीक-योजना, निराशा, पलायन, अहं के उदात्तीकरण और सृजन की अस्पष्टता के दर्शन होते हैं। छायावाद एवं स्वच्छन्दतावाद की उपर्युक्त मूल प्रवृत्तियों के आधार पर यदि मूल्यांकन किया जाये तो दोनों में पर्याप्त साम्य दिखायी देता है किन्तु केवल प्रवृत्तियों के आधार पर किसी भी साहित्यिक विधा को एक-दूसरे के समान घोषित नहीं किया जा सकता क्योंकि समस्त साहित्यिक प्रवृत्तियों के क्रियान्वयन

---

1. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ,* पृ० 111
2. वही, पृ० 109

के लिए तत्कालीन विशेष सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि का योगदान होता है और अपनी इसी पृष्ठभूमि में कोई भी प्रवृत्ति क्रियाशील होती और इसी प्रकार एक-एक करके समस्त प्रवृत्तियाँ उस देश एवं काल का साहित्यिक रूप लेती हैं। उस देश की साहित्यिक परम्परा के अनुसार प्रवृत्तियाँ परिवर्तित होती हैं।

यदि इन काव्य-प्रवृत्तियों की समस्त परिस्थितियाँ एवं मान्यताएँ समान होती हैं तो साहित्य में समानता स्वभावतः आ जाती है और दोनों साहित्य समान होंगे किन्तु यदि परिस्थितियाँ विपरीत हैं और वैषम्य लिये हुए हैं तो प्रवृत्तियाँ समान होते हुए भी साहित्य पर्याप्त वैषम्य लिये हुए होगा। स्वच्छन्दतावादी एवं छायावादी साहित्यिक विधाओं के आविर्भाव में यही सत्य निहित है। साहित्य समाज की ही उपज है। यह सत्य है कि साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है और सदैव क्रियाशील तथा सतत प्रयत्नशील रहता है। इसके विकास में सदैव एक-सी गति नहीं रहती है और साहित्य के उत्थान एवं पतन का क्रम भी सदैव चलता रहता है। किसी भी देश की प्रगति अथवा पतन की बदलती परिस्थितियों का प्रभाव परोक्ष रूप से उस देश के समाज तत्पश्चात् स्वाभाविक रूप से साहित्य पर पड़ता है तथा उस देश के समाज की इच्छा एवं आकांक्षाएँ भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहती हैं और यही बदलती परिस्थितियाँ साहित्यिक प्रवृत्तियों को प्रभावित कर देती हैं। स्वच्छन्दतावादी आन्दोलन यूरोप की बदलती परिस्थितियों की देन है तो छायावादी आन्दोलन भारत की बदलती परिस्थितियों की देन है। दोनों की परिस्थितियों मे साम्य होने के कारण दोनों साहित्यिक विधाओं के साम्य को **'स्थिति साम्य'** की संज्ञा दी जा सकती है।

स्वच्छन्दतावादी एवं छायावादी कवि उद्‌बुद्ध चेतना के भावुक विचारक थे जिनका उद्देश्य सृजन था। अपने इस सृजनात्मक कार्य में उन्होंने सभी परम्पराओं का त्यागकर सामान्य बात में निहित ज्ञान का दर्शन किया। विद्रोह के स्वर इनकी कविता में मुख्य रूप से प्रतिध्वनित हुए अतः अपने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए दोनों ही साहित्यिक विधाओं के कवियों में शैलीगत एवं विचारगत साम्य दृष्टिगत होता है। इन कवियों ने मानवता के शाश्वत सत्यों को वाणी प्रदान कर उसे अभिव्यक्ति दी। यही कारण है कि शाश्वत सत्यों के बाह्य आकार-प्रकार तथा सांस्कृतिक एवं सामाजिक वैषम्य के बावजूद इन विधाओं में **विचार-साम्य** स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। साहित्य कभी एक सीमा में बँधकर नहीं रहा अतः वह असीम है। साहित्य में जो भी प्रभाव इधर-उधर से आये वे सब एकमत होकर साहित्य के ही अंश हो गये और इस प्रकार यह मान लेना कि छायावादी साहित्य में सभी कुछ विदेशी है, अपना कुछ नहीं, भ्रान्त धारणा के अतिरिक्त कुछ नहीं कहा जा सकता। यह सत्य है कि छायावाद में स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं किन्तु फिर भी छायावाद को स्वच्छन्दतावाद का प्रतिरूप नहीं कहा जा सकता है। दोनों में बहिरंग परीक्षा के आधार पर **पर्याप्त अन्तर** दृष्टिगोचर होता है।

स्वच्छन्दतावादी साहित्य का आविर्भाव पुरातनवादी साहित्य की कृत्रिमता एवं बाह्याडम्बर के प्रति विद्रोह के फलस्वरूप हुआ था। वहीं दूसरी ओर छायावादी काव्य द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध प्रतिक्रिया है। दोनों ही पुरानी मान्यताओं, रूढ़ियों व नियमबद्धता को तोड़ना चाहते थे। अतः 'परम्परावाद एवं द्विवेदी-युग में हृदय की अपेक्षा, बौद्धिकता के प्रसार, कठोर नियमबद्धता, प्रकृति के प्रकृत स्वरूपों के त्याग तथा कल्पना एवं शृंगार के बहिष्कारस्वरूप स्वच्छन्दतावाद एवं

छायावाद का जन्म हुआ।''[1] किन्तु यदि देखा जाये तो स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद के आविर्भाव के लिए यह कारण पर्याप्त नहीं हैं वरन् इनके जन्म के पीछे कुछ प्रेरक शक्तियाँ विद्यमान थीं जो तत्कालीन युग की आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं के रूप में उपस्थित थीं।

स्वच्छन्दतावाद की प्रेरक शक्तियों में फ्रांस की राज्य-क्रान्ति प्रमुख है। फ्रांस की राज्य-क्रान्ति के अतिरिक्त जर्मनी की स्वच्छन्दतावादी विचारधारा, औद्योगिक क्रान्ति, तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ तथा मध्यकालीन देवकथाओं आदि की भी चर्चा स्वच्छन्दतावाद की प्रेरक शक्तियों के अन्तर्गत की जाती है। वहीं दूसरी ओर छायावाद की प्रेरक शक्तियों में बँगला साहित्य, मध्यकालीन साहित्य, भारतीय एवं बौद्धदर्शन, विवेकानन्द के विचार तथा तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिवेश के साथ-साथ अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का भी प्रमुख हाथ रहा है। छायावाद केवल स्वच्छन्दतावाद का प्रतिरूप या नकल अथवा मुखापेक्षी ही नहीं था वरन् उसकी अपनी अलग एक पृष्ठभूमि है, अपना अलग परिवेश भी है। फ्रांस की औद्योगिक क्रान्ति तथा भारतीय पूँजीवाद के मध्य भी पर्याप्त साम्य था। फ्रांस की औद्योगिक क्रान्ति स्वयं उद्भूत हुई थी वह भी तत्कालीन समाज की आवश्यकताओं के कारण किन्तु भारतीय पूँजीवाद के विरुद्ध किये गये सुधार केवल औपचारिक थे। फ्रांस की राज्यक्रान्ति की सफलता तथा असफलता के प्रत्यक्षदर्शी होने के कारण स्वच्छन्दतावादी कवियों के मानववादी विचार अत्यन्त स्पष्ट एवं क्रान्तिकारी थे। यही कारण था कि वे अपनी वैचारिक क्रान्ति में अधिक उत्तेजना पैदा कर सके थे। फ्रांस की राज्यक्रान्ति शास्त्रीय प्रतिक्रिया थी जबकि इसके विपरीत भारतीय सत्याग्रह, जो कि स्वतंत्रता-प्राप्ति का एकमात्र साधन था, अहिंसात्मक एवं निःशस्त्रीय था तथा सामान्य जनता इस सत्याग्रह की सफलता पर शंकित भी थी। भारतीय कवियों ने अपने क्रांति के गीतों के द्वारा राष्ट्र का उद्बोधन तो अवश्य किया है किन्तु वे अपने गीतों में अपनी वैचारिक क्रांति की आग न उगल सके जिसके फलस्वरूप वह उत्तेजना न पैदा हो सकी जो क्रांति पैदा करती।

छायावाद एवं स्वच्छन्दतावाद के मध्य वैषम्य स्थापित करने के अनेक कारणों में एक कारण है कालगत एवं स्थानगत विभेद। स्वच्छन्दतावाद यूरोप की उपज है जबकि छायावाद का पल्लवन भारतवर्ष में हुआ है अतः दोनों में भेद होना स्वाभाविक है। इसके अतिरिक्त छायावाद एवं स्वच्छन्दतावाद अलग-अलग काल की उपज हैं। यद्यपि दोनों में व्याप्त मानववादी साहित्यिक चेतना वास्तव में दोनों में व्याप्त मानववादी साहित्यिक चेतना व यथार्थ जीवन की जड़ता तथा परम्परा के विरोध में नवीन मूल्यों की प्राण-प्रतिष्ठा करती है। दोनों ही वाद कल्पना-प्रौढ़ता एवं अनुभूति व सौष्ठव का आश्रय लेकर सृजनात्मक अभिव्यक्ति में जुटे रहे और आत्मानुभूति के अनन्त-सागर में गोता लगाकर विचारों का अमूल्य रत्नाकर ढूँढ़ने के लिए आज भी विचारों का मनन एवं मंथन करने में लगे हुए हैं।

कोई भी काव्य किसी भी काव्य की केवल प्रेरणा से ही अपना भरण-पोषण नहीं कर सकता है। उस काव्य का स्वयं का भी परिवेश होता है, उसकी अपनी व्याख्या होती है। कहीं दूसरी जगह से प्रेरणा लेकर वह काव्य में एक मोड़ दे सकता है, बदलाव नहीं और उस परायी प्रेरणा को भी उसी काव्य की व्याख्या के अनुसार एवं तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल ही क्रियाशील होना पड़ता है। अतः इस कारण किसी काव्यधारा को विदेशी अनुकृति अथवा किसी अन्य काव्य का प्रतिरूप नहीं कहा जा सकता है। स्वच्छन्दतावादी एवं छायावादी काव्यों की मान्यताओं में साम्य अवश्य

1. डॉ० शिवमंगल सिंह : *स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद का तुलनात्मक अध्ययन*, पृ० 16

है फिर भी न तो स्वच्छन्दतावादी कवि 'कामायनी' की रचना कर सके और न ही छायावादी कवि एडिमिअन[1] की। यही कारण है कि स्वच्छन्दतावादी एवं छायावादी काव्य के प्रेरणा-स्रोत एवं कल्पना की मान्यताएँ भले ही साम्यरूप हों किन्तु कवि के वैचारिक दृष्टिकोण की निर्णायक तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियाँ एवं सांस्कृतिक आधार ही होते हैं। वैसे भी कल्पना सभी कवियों में व्यक्तिगत होती है और प्रत्येक कवि की कल्पना एक-दूसरे की कल्पना से नितान्त भिन्न होती है। यह देखा गया है कि एक ही विषय पर कवियों की भिन्न कल्पना के कारण भिन्न काव्य का सृजन हुआ। वैसे स्वच्छन्दतावादी कवियों के काव्य सृजन में तो स्वयं ही भिन्नता है तो फिर छायावादी कवियों ने उनसे परोक्ष प्रभाव किस प्रकार ग्रहण किया होगा? विवेचनीय है कि यदि छायावादी कवियों के काव्य पर स्वच्छन्दतावादी कल्पना का प्रभाव भी पड़ा होगा तो वह छायावादी कवियों की वैयक्तिकता एवं प्रतिभा के अनुकूल परिवर्तन को बाध्य होकर ही अभिव्यक्त हुई है। छायावादी कवि कल्पना को केवल महत्त्व ही प्रदान नहीं करते वरन् वे कल्पना के अनुकरण की प्रेरणा ग्रहण करते हुए भी देखे गये हैं, जबकि कल्पना स्वच्छन्दतावादी साहित्य का प्राण है, एक साहित्यिक आवश्यकता है। छायावादी कवियों एवं स्वच्छन्दतावादी कवियों के मध्य एक सबसे बड़ी भिन्नता यह है कि स्वच्छन्दतावादी कवि, कवि होने के साथ विवेचक एवं समीक्षक भी थे किन्तु छायावादी कवि, कवि पहले और अधिक थे विवेचक अथवा समीक्षक कम।

जहाँ तक इन दोनों वाद के कवियों के शैलीगत व्यापार का सम्बन्ध है तो इनमें समानता दिखायी पड़ती है किन्तु दोनों देशों के विचारगत व्यापार भिन्न होने के कारण दोनों की सत्ता अलग-अलग दिखायी पड़ती है और इसी सीमा-रेखा पर दोनों साहित्यिक विधाओं के कवि एक-दूसरे के अत्यधिक दूर दिखायी पड़ते हैं।

छायावादी एवं स्वच्छन्दतावादी काव्यों में प्रकृति-चित्रण करते समय कवियों ने मिथक का प्रयोग किया है जो मानव में अदृश्य भावों का साकार रूप प्रदान कर सका है। असल में प्रकृति-चित्रण में मिथक का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं।

स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद दोनों में ही प्रकृति का चित्रण, आलम्बन एवं उद्दीपन रूप में, पूर्वपीठिका के रूप में हुआ है। साथ ही, प्रकृति का मानव-भावनाओं से अनुरंजित चित्रण तथा प्रकृति का मानवीकरण, अलंकृत चित्रण तथा इसके रहस्यवादी रूप का भी चित्रण हुआ है। दोनों ही वाद का काव्य प्रकृतिमय है किन्तु वैषम्य भी पर्याप्त दृष्टिगोचर होता है। जब कभी कवियों के भाव प्रकृतिमय होते हैं तो प्रकृति भावमय दिखायी देती है, प्रकृति स्त्रीमय तो स्त्री प्रकृतिमय दिखती है। यही नहीं जब अभिव्यक्ति प्रकृतिमय होती है तो प्रकृति अभिव्यक्तिमय हो जाती है।

स्वच्छन्दतावादी कवियों के प्रकृति-चित्रण में आध्यात्मिकता के दर्शन होते हैं। स्वच्छन्दतावादी कवि का प्रकृति-प्रेम ऐन्द्रिय संवेगों के स्थान पर ऐन्द्रिय संवेगों के अन्तराल में छिपी हुई आध्यात्मिक भावनाओं से ही सम्बद्ध था। स्वच्छन्दतावादी कवि के लिए कविता मानव एवं प्रकृति की प्रतिमयी थी। उसने प्रकृति के साथ ऐसा सामीप्य स्थापित किया था कि उसकी कविता ही प्रकृतिमय हो गयी।

छायावादी काव्य के प्रकृति चित्रण में भारतीय दर्शन की उत्कृष्ट छाप स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती

---

1. डॉ० शिवमंगल सिंह : *स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद का तुलनात्मक अध्ययन,* पृ० 77

है। दर्शन-प्रधान भारत देश में प्रकृति एवं पुरुष को लेकर कई दृष्टियों से विचार भी हुआ था किन्तु इस प्रकार की दार्शनिकता का स्वच्छन्दतावादी काव्य में सर्वथा अभाव है। **वर्ड्सवर्थ** के विचार इस ओर उन्मुख भी हुए किन्तु वे भारतीय दार्शनिकता की ऊँचाई को प्राप्त न कर सके। इस प्रकार यहँ स्पष्ट है कि छायावादी एवं स्वच्छन्दतावादी दोनों ही युगों को प्रकृति ने भरपूर सामग्री प्रदान की है और प्रकृति के विविध रूपों में उनके विचारों के पूरक उपस्थित रहे हैं।

छायावादी काव्य की भाषा अलंकृत, क्लिष्ट तथा जनजीवन से दूर थी, जबकि स्वच्छन्दतावादी कवियों ने सरल, सहज तथा साधारण जन-जीवन की भाषा को अपनी अभिव्यक्ति की भाषा बनायी थी। इस प्रकार यदि छायावाद जन-जीवन से दूर का काव्य है तो स्वच्छन्दतावाद साधारण जन-जीवन का पर्याय है।

छायावादी काव्य में सत्यं, शिवं एवं सुन्दरम् के दर्शन दृष्टिगोचर होते हैं; जबकि स्वच्छन्दतावादी काव्य में सौन्दर्य को सत्य और सत्य को ही सुन्दर मानकर दोनों का अभेद सिद्ध कर सत्यं एवं शिवम् के संगम के ही दर्शन होते हैं। स्वच्छन्दतावादी कवि जगत् में केवल सत्य एवं सुन्दर को ही जानना चाहता है, जबकि छायावादी कवि सुन्दर और सत्य को शिव से निकालकर जीवन की पूर्णता प्राप्त करना चाहता है।

छायावादी काव्य में नारी की दयनीय दशा नारी-जागरण एवं नारी-समस्याओं के आकलन का चित्रण प्रचुर मात्रा में हुआ है जबकि स्वच्छन्दतावादी काव्य में इसका सर्वथा अभाव है।

छायावादी काव्य में राष्ट्रीय अभिव्यंजना विपुल मात्रा में हुई है। राष्ट्रीय जागरण, भारतीय अखण्डता तथा सांस्कृतिक उद्‌बोधन की अभिव्यक्ति छायावादी राष्ट्रीयता के प्रिय स्वर हैं, किन्तु अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद में यह वर्णन दुर्लभ है। राष्ट्रीयता की इस अभिव्यक्ति की अभिव्यंजना छायावादी काव्य में तत्कालीन परिस्थितियों से प्रसूत थी।

स्वच्छन्दतावादी काव्य सर्वात्मवाद तथा रहस्यवाद से मंडित है जबकि छायावादी काव्य न केवल रहस्यवाद वरन् उपनिषदों के ब्रह्मवाद, सांख्य और वेदान्त-दर्शन, अद्वैतवाद, बौद्ध-दर्शन के दुःखवाद, शैवागम के आनन्दवाद, सूफियों का प्रतिबिम्बवाद आदि दार्शनिक विचारों से प्रभावित है। इन सभी दार्शनिक विचारों का व्यापक प्रभाव छायावादी कविताओं के मूल में है।

अंग्रेजी का स्वच्छन्दतावाद मूलतः सामन्त विरोधी था लेकिन छायावाद सामन्त विरोधी के साथ-साथ साम्राज्य के विरुद्ध भी था।[1] **डॉ० शम्भुनाथ सिंह** ने अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद तथा हिन्दी छायावाद में वैषम्य को स्पष्ट किया है किन्तु एक बात भूल गये हैं। वस्तुतः यह कहा जा सकता है कि छायावादी काव्य में साम्राज्यवाद, सामन्तवाद एवं रीतिवाद इन तीनों का विरोध हुआ है। यूरोप में रीतिवाद इतना पुष्ट नहीं था, इसलिए यह लड़ाई यहाँ तीव्र थी। यूरोप में स्वच्छन्दतावादी कविता के पीछे प्रेरक रूप में राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियाँ प्रधान थीं।"[2]

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि, "छायावाद की लहर भारतवर्ष में भी अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद के करीब एक सौ वर्ष बाद आयी इसलिए इसमें कुछ और सुगन्ध मिलती है जो यूरोप

1. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ*, पृ० 101-102
2. वही, पृ० 101-102

के परिवेश में रोमांटिक दौर के पश्चात् फैल चुकी थी। छायावाद में यह दोष था कि इसने जन-जीवन की भूमि का त्याग प्रारम्भ में कर दिया था, लेकिन अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद में ऐसी बात नहीं है। स्वच्छन्दतावाद की सारी प्रवृत्तियाँ रोमांटिक थीं, लेकिन छायावाद के साथ में प्रभाववाद, प्रतीकवाद, और अभिव्यक्तिवाद भी था क्योंकि ये सारे प्रभाव यूरोप से चल चुके थे।''[1]

अतः यह स्पष्ट है कि स्वच्छन्दतावादी काव्य में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों को ही स्थान मिला है जबकि छायावादी काव्य में रोमाण्टिक प्रवृत्तियों के साथ पुरातनवादी काव्य-प्रवृत्तियाँ भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। इस प्रकार एक बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रत्येक छायावादी काव्य स्वच्छन्दतावादी हो सकता है किन्तु प्रत्येक स्वच्छन्दतावादी काव्य छायावादी नहीं हो सकता। **डॉ० शिवमंगल सिंह** ने ठीक ही कहा है कि छायावाद में स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्तियाँ हैं, फिर भी छायावाद स्वच्छन्दतावाद नहीं है।''[2] अतः छायावाद एवं स्वच्छन्दतावाद कभी भी एक दूसरे का प्रतिरूप नहीं हैं। छायावाद में अनेक ऐसी प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं जो स्वच्छन्दतावाद में नहीं हैं क्योंकि छायावाद अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद के करीब एक सौ वर्ष बाद आया है। इसमें यूरोप के स्वच्छन्दतावादी दौर के पश्चात् के सभी साहित्यिक आन्दोलनों के अतिरिक्त भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं परिवेश से प्रसूत प्रवृत्तियों का भी समावेश है और यही इसकी अपनी सत्ता है, विशेषता है तथा अपना स्वयं का परिवेश भी है। छायावाद हिन्दी काव्य के एक काव्य-विशेष की प्रवृत्ति का बोधक है, जबकि स्वच्छन्दतावाद अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अत्यधिक स्थायी, मानवीय तथा साहित्यिक प्रवृत्ति का बोधक है जो विभिन्न देशों के काव्यों में अपना स्थान बना बैठा है।

इस प्रकार 19वीं शताब्दी से लेकर आज तक स्वच्छन्दतावाद निरन्तर अपने विकास की ओर अग्रसर है। स्वच्छन्दतावाद ने अपने विकास मार्ग में अनेक पड़ाव डाले जो हिन्दी साहित्य के समीक्षा संसार में मील के पत्थर साबित हुए तथा स्वच्छन्दतावादी समीक्षा संसार के लिए विभिन्न नवीन आयाम। हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी कविता के जन्म के लिए तत्कालीन भारतीय परिवेश एवं परिस्थितियाँ तो उत्तरदायी थीं ही साथ ही, फ्रांस की क्रान्ति से प्रेरणा तथा अंग्रेजी अत्याचार के प्रति विद्रोह की भावना एवं भारतीय भावुक मन भी कम उत्तरदायी नहीं है। यद्यपि **बोधा, ठाकुर** एवं **घनानन्द** के काव्यों में ही स्वच्छन्दतावाद के अंकुर फूट पड़े थे किन्तु भारतेन्दु-काल तक स्वच्छन्दतावादी चेतना का कोई स्पष्ट रूप नहीं मिलता। स्वच्छन्दतावादी भावना की अस्पष्टता के मध्य भारतेन्दु-काल में कविता की जो एक अन्य धारा उद्भूत हुई आगे चलकर उसका विकास छायावाद के रूप में हुआ। स्वच्छन्दतावादी काव्य, छायावादी काव्य के समानान्तर चलता रहा और आगे जाकर इतना घुल-मिल गया कि इन्हें एक ही समझा जाने लगा जबकि छायावादी काव्य में स्वच्छन्दतावादी काव्य की समस्त प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं किन्तु, वह फिर भी स्वच्छन्दतावादी काव्य नहीं है। इसका कारण दोनों वाद का अलग-अलग देश एवं काल की उपजता के साथ वैचारिक वैषम्य भी है।[3]

स्वच्छन्दतावाद अपने विकास मार्ग पर निरन्तर प्रगति की ओर बढ़कर विकसित होता रहा और केवल विकसित ही नहीं वरन् अपने को और अधिक समृद्धिशाली बनाता हुआ प्रौढ़ रूप को प्राप्त करता हुआ अत्याधुनिक संश्लिष्ट नवोन्मेष को प्राप्त हुआ। स्वच्छन्दतावाद का यह नवीन सूत्र

1. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ*, पृ० 98
2. डॉ० शिवमंगल सिंह : *स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद का तुलनात्मक अध्ययन*, पृ० 7
3. वही, पृ० 7

हिन्दी समीक्षा-संसार में 'नवस्वच्छन्दतावाद' के नाम से अभिहित हुआ। स्वच्छन्दतावादी चिंतन के इस नवीन विकास को एक नवीन क्षितिज की ओर अग्रसर कर हिन्दी समीक्षा के महत्त्व को उच्चता प्रदान करने तथा इसे 'नवस्वच्छन्दतावाद' नाम देने का श्रेय अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के प्रोफेसर अजब सिंह को जाता है। सम्प्रति हिन्दी समीक्षा के स्वच्छन्दतावादी चिंतन के इस नये सूत्र को अन्तर्राष्ट्रीय गौरव भी प्रदान हुआ। **प्रोफेसर दीनानाथ सिंह** ने **डॉ० अजब सिंह** की पुस्तक **'नवस्वच्छन्दतावाद'** की समीक्षा करते हुए कहा है कि सुधी समीक्षक **डॉ० अजब सिंह** ने अत्याधुनिक समीक्षा-प्रणाली को एक नये क्षितिज की ओर अग्रसर कर आज हिन्दी-समीक्षा को अन्तर्राष्ट्रीय पाश्चात्य समीक्षा के स्तर पर पहुँचा दिया है, यह गर्व और गौरव की बात है। वस्तुतः नवस्वच्छन्दतावादी में लेखक **डॉ० अजब सिंह** की दृष्टि बहुत गहरी है। भारतीय एवं पाश्चात्य स्वच्छन्दतावाद मान्यताओं के प्रज्ञा-मंथन से यह नवस्वच्छन्दतावाद का अमृत प्रकट किया है। विद्वान् आलोचक 'नवस्वच्छन्दतावाद' के द्वारा अपनी परिवर्तित समीक्षा-दृष्टि का परिचय देते हैं। इस परिवर्तित समीक्षा-दृष्टि को समृद्ध दृष्टि ही कहना अधिक सम्यक् और सार्थक है।[1]

स्वच्छन्दतावाद के नवीन विकसित रूप 'नवस्वच्छन्दतावाद' को परिभाषित करते हुए **प्रोफेसर अजब सिंह** ने कहा कि, "स्वच्छन्दतावाद अपने उत्कर्ष पर पहुँचकर जब दूसरी दिशा की ओर उन्मुख होता है और वह यथार्थवाद के सहज मैत्री भाव से नया रूप लेता है, यही नवीनता स्वच्छन्दतावाद को 'नवस्वच्छन्दतावाद' में परिवर्तित कर देती है।........... इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी तथा यथार्थवादी बोध के समन्वय से स्वच्छन्दतावाद नये रूप में उभरता है।"[2]

स्वच्छन्दतावाद का विकसित रूप ही नवस्वच्छन्दतावाद है। जब स्वच्छन्दतावाद ने यथार्थ की नवीन भूमियों में प्रवेश किया तो उसके मूल रूप में परिवर्तन हो गया। स्वच्छन्दतावादी काव्य आधुनिकता की सारी प्रक्रियाओं का समावेश अपने में ही नहीं कर सका, जिसके फलस्वरूप आधुनिक कविता का सामाजिक परिवेश में टकराव हो गया और यही यथार्थ की स्थिति है, क्योंकि आधुनिक हिन्दी कविता वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप सामाजिक परिवेश से प्रभाव ग्रहण कर यथार्थवादी चेतना से जा मिलती है। इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद के कलात्मक समन्वित रूपायन से नवस्वच्छन्दतावाद उभरता है। स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद जब कल्पना के सम्पर्क में आता है तो यथार्थ भावात्मक रूप लेता है, भावना से जुड़ जाता है तो यही वास्तव में 'नवस्वच्छन्दतावाद' की स्थिति होती है अर्थात् यथार्थ और कल्पना का समन्वय अथवा कल्पना के मिलन के साथ स्वच्छन्दतावादी कल्पना का मिलन जब स्वच्छन्दतावादी चेतना या सक्रिय कल्पना व सामूहिक अचेतन ..... के साथ जुड़ जाता है तो वह स्वच्छन्दतावादी चेतना के रूप को परिवर्तित कर देता है और स्वच्छन्दतावादी चेतना का यह परिवर्तित एवं विकसित रूप 'नवस्वच्छन्दतावाद' कहलाता है। 'नवस्वच्छन्दतावाद' जीवन से पलायन एवं कल्पना लोक में परिभ्रमण को अस्वीकार कर देता है क्योंकि नवस्वच्छन्दतावाद अपने में एक विशेष प्रकार के यथार्थवाद को समाहित कर लेता है। इस प्रकार नवस्वच्छन्दतावादी आन्दोलन में कल्पनाशीलता, यथार्थता एवं बौद्धिकता से एकीकृत जीवनानुभूति की तीनों धाराएँ एक साथ एक बिन्दु पर सहजता से मिलकर एक नाम से सम्बोधित की जाती हैं। उसी प्रकार स्वच्छन्दतावाद

---

1. प्रो० दीनानाथ सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद : आलोचकीय संदृष्टि*, *अभिनव भारती* (पत्रिका-अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय) संयुक्तांक, 1994-96
2. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद*, पृ० 8

यथार्थवाद के सहज समन्वित एवं एकत्रित रूप का नाम 'नवस्वच्छन्दतावाद' है।

प्रख्यात स्वच्छंदतावादी समीक्षक **प्रो० अजब सिंह** का विचार है कि — "नवस्वच्छन्दतावादी काव्यान्दोलन में कवि की चेतना फैंटेसी एवं सक्रिय कल्पना के पंख लिये होती है जो इसकी अपनी खास पहचान होती है।[1]

अपने गंभीर चिन्तन के क्रम में **प्रो० सिंह** का मानना है कि 'नवस्वच्छन्दतावाद सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक धरातलों की सीमा-रेखा में अपने को समेटता है तथा यथार्थवादी धरातल पर मानवीय अनुभूतियों को चित्रित करता है।"[2]

"नवस्वच्छन्दतावाद का सामाजिक धरातल मूलतः स्वच्छन्दतावाद का मार्क्सवादी संदर्भ है।"[3]

डॉ० नामवर सिंह ने **मुक्तिबोध** की कविता अँधेरे के सन्दर्भ में जिस क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद का आह्वान किया है, **प्रो० अजब सिंह** ने उसे नवस्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्ति के रूप में सम्बोधित किया है। स्वच्छन्दतावादी समीक्षक **प्रो० सिंह** ने नवस्वच्छन्दतावाद को स्वच्छन्दतावाद के ही आधुनिक यथार्थवादी बोध से समन्वित नये रूप में ग्रहण किया है। इस संदर्भ में **प्रो० सिंह** ने **युंग, लुकाच, अर्न्स्टफिशर** तथा **माइकेल** की नयी समाजवादी दृष्टि तथा भारतीय ऐतिहासिकता के माध्यम से, हिन्दी कविता के प्रतिमानों को ध्यान में रखकर, **युंग** के सामूहिक अचेतन का सहारा लेते हुए स्वच्छन्दतावाद का सामाजिक व मनोवैज्ञानिक रूप निर्धारित किया है।

प्रो० अजब सिंह की मान्यता है कि नवस्वच्छन्दतावाद, स्वच्छन्दतावाद के प्रति प्रतिक्रिया है, आधुनिकता की चुनौती का परिणाम है, कविता का नया विस्तार है। स्वच्छन्दतावाद को नवीन धरातल पर रखना, जो युगसापेक्षता के साथ अभिव्यंजित होता है, उसे नवस्वच्छन्दतावाद कहेंगे।"[4] 'नवस्वच्छन्दतावाद' के नामकरण के विषय में कुछ विद्वानों मतैक्य नहीं है। स्वच्छन्दतावाद के नवीन विकसित रूप को वे नवस्वच्छन्दतावाद के नाम से सम्बोधित करने से हिचकिचाते हैं किन्तु 'नवस्वच्छन्दतावाद' का कोई नवीन सारगर्भित विवेचन व अनुशीलन नहीं कर सका और न ही नवस्वच्छन्दतावाद के लिए कोई अन्य शब्द ही सुझा सका है। छायावादोत्तर सम्पूर्ण प्रवृत्तियों को ही **डॉ० सिंह** ने नवस्वच्छन्दतावाद का नाम दिया है क्योंकि व्यक्तिपरक काव्य, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, साठोत्तरी कविता, अकविता और अत्याधुनिक कविता सभी स्वच्छन्दतावादी काव्य के विकसित आयाम हैं और इन समस्त प्रवृत्तियों को **डॉ० सिंह** ने केवल एक **नवस्वच्छन्दतावाद** के नाम से सम्बोधित किया है। इस संदर्भ में **डॉ० सिह** ने स्वयं विस्थापित किया है कि, "हिन्दी छायावादोत्तर काव्य की सारी प्रवृत्तियों को 'नवस्वच्छन्दतावाद' के नाम से सम्बोधित करना चाहिए[5] क्योंकि आधुनिक कविता में स्वच्छन्दतावादी चेतना का स्पष्ट स्पन्दन दृष्टिगोचर होता है इसका कारण शायद स्वच्छन्दतावादी कविता में रूढ़ियों के प्रति विद्रोह के स्वर हैं।

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद*, प्राक्कथन, पृ० 9
2. वही, पृ० 9
3. वही,
4. प्रो० दीनानाथ सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद : आलोचकीय संदृष्टि, अभिनव-भारती-पत्रिका*, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़ 1994-96, पृ० 232-233
5. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद*, पृ०

नवस्वच्छन्दतावाद का यह दावा नहीं है कि वह यथार्थवाद की सम्पूर्ण परिधि पर हावी है और न ही वह यथार्थवाद का समग्र रूप में विरोध करता है, वह तो केवल यथार्थवाद को अपने में समाहित कर लेता है, जिससे यथार्थवाद का एक नवीन विशेष रूप निखरता है।

प्रो० अजब सिंह ने नवस्वच्छन्दतावाद पर अपनी पुस्तक **'नवस्वच्छन्दतावाद'** में आधुनिक काव्य व साहित्य में नवस्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का विस्तृत विवेचन किया है। **प्रो० सिंह** ने नवस्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों को विस्तृत फलक पर विश्लेषित करते हुए उसे मुख्य तीन रूपों में मूल्यांकित किया है। सर्वप्रथम नवस्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों को सामाजिक धरातल पर विस्तृत रूप दिया गया है, जिसके अन्तर्गत उन्होंने हिन्दी नवस्वच्छन्दतावादी कविता के सामाजिक एवं राजनीतिक सद्भाव का विस्तार से उल्लेख किया है। मार्क्सवादी संदर्भ में कविता आधुनिकता की ओर अग्रसर होती है और वैयक्तिकता को सामाजिक में, यथार्थवाद को सामाजिक यथार्थ में, विद्रोह को क्रान्ति में और मानववाद को नवमानववाद में परिवर्तित कर देती है। परिवर्तन की यह आँधी ही नवस्वच्छन्दतावाद है। मनोवैज्ञानिक धरातल में **प्रो० सिंह** ने इदं, अहं, अतिअहं, चेतन, अचेतन और अर्द्धचेतन जैसी मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म क्रियाओं के प्रभावों का विश्लेषण, **फ्रायड, एडलर** तथा **युंग** की मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में नवस्वच्छन्दतावादी कविता की प्रवृत्तियों के रूप में मूल्यांकन किया है।

'संरचना' के माध्यम से **प्रो० अजब सिंह** ने भाषा, बिम्ब, प्रतीक, मिथक एवं प्रगीत काव्य प्रवृत्तियों के रूप में नवस्वच्छन्दतावादी कविता की शिल्पगत प्रवृत्तियों की विस्तृत विवेचना की है। ये शिल्प तत्त्व कवि की आत्मिक अनुभूति एवं व्यक्तित्व से सिक्त होकर काव्य में प्रकट होते हैं। अतः यह सभी शिल्पगत विशिष्टताएँ नवस्वच्छन्दतावादी कवियों की आंतरिकता नितान्त आत्मीय प्रतिक्रियाओं को मूर्तिमान करती है। अतः कवि अपनी चेतना के अनुसार मिथक, फैंटेसी, बिम्ब, प्रतीक एवं प्रगीतात्मकता के द्वारा, समकालीन जीवन-बोध की यथार्थता से सम्पृक्त होकर सक्रिय कल्पना अथवा सामूहिक अचेतन के सहयोग से जब अपने विचारों की अभिव्यंजना करता है तो वह नवस्वच्छन्दतावादी काव्य का सृजन करता है।

आधुनिकता के फलस्वरूप स्वच्छन्दतावाद का नवीन विस्तार : नवस्वच्छन्दतावाद

आधुनिकता को न तो सीमित शब्दावली में समझा जा सकता है और न ही आधुनिकता की कोई सर्वमान्य परिभाषा ही दी जा सकती है क्योंकि आधुनिकता न तो काव्यवाची है और न मूल्यवाची। आधुनिकता को हम एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में व्याख्यायित कर सकते हैं जिसने कई दौर देखे हैं और जो सबसे नूतन है तथा जिसके पास अनुभव है।

'आधुनिकता' आधुनिक शब्द में 'ता' प्रत्यय के संयोग से निर्मित हुआ है। आधुनिक शब्द की व्युत्पत्ति, संस्कृत शब्द 'अधुना' शब्द से स्वार्थ में 'ठक्' प्रत्यय करके, निर्मित हुई है।[1] 'अधुना शब्द का अर्थ 'तुरन्त' त्वरित तथा 'इसी क्षण' से है तथा आधुनिक शब्द का अर्थ 'अत्यन्त नूतन' है, जो कई अर्थों में विभक्त हुआ है। आधुनिक, भाव प्रत्यय 'ता' के संयुक्त होने पर एक अत्यन्त विस्तृत अर्थग्रहण करता है, जो गुण, अवस्था एवं परिणाम तीनों का बोध कराता है।[2] स्वाभाविक रूप से आधुनिक शब्द आगे की उन्नत दशा का ही द्योतक है। जब युगीन परिस्थितियाँ स्वस्थ एवं अनुकूल होंगी तो अगली दशा भी निश्चित रूप से अपेक्षाकृत उन्नत और अनुकूल होगी। यही दशा 'आधुनिकता' की सारगर्भित व्याख्या है। आज के संदर्भ में आधुनिकता विशेष दृष्टि, प्रवृत्ति, मूल्य और चेतना-सरणियों की संगति की द्योतक है। आधुनिकता अग्रगामी दृष्टि है तो ऊर्ध्वमुखी चेतना भी है, जो निरन्तर प्रगतिशील है। अतः आधुनिकता इतिहासपरक, वैज्ञानिक, प्रगतिशील अग्रगामी दृष्टि है। आधुनिकता प्रगतिशीलता का क्रम है। यह त्रिकालदर्शी होते हुए इतिहास की पूर्व कल्पना करने के कारण भविष्योन्मुखी है। यह तीनों कालों से सम्यक् स्थापित करती है तथा साथ ही, नवीन प्रवृत्तियों के समुच्चय की द्योतक भी है। आधुनिकता ने जीवन को समग्रता और यथार्थ की ओर ले जाने का प्रयत्न किया है। आधुनिकता ने सम्पूर्ण रूढ़ियों एवं मान्यताओं को झकझोरकर उनकी नियति पर प्रश्न अंकित कर दिया है। धर्म निरपेक्षता, रूढ़िभञ्जन, शहरीकरण, वैज्ञानिक अभिरुचि का विकास, विलम्बित विवाह, नयी नैतिकता को प्रतिष्ठा तथा पाश्चात्यीकरण जैसी प्रवृत्तियाँ आधुनिकता को शक्तिशाली बनाती हैं।[3]

आधुनिकता आज के समय की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माँग है, यह एक विकसित दृष्टि है, जिसमें समता, सांसारिकता एवं स्वतंत्रता के नवीन मूल्यों की समस्त प्रतिष्ठा विद्यमान है। समाज और व्यक्ति पूर्वाग्रही शिल्प को तोड़कर अपने अनुकूल गत्यात्मक लक्षणता को जन्म दे सके, यही आधुनिकता है। मनोवैज्ञानिकता इसकी सहायक है।

कला के क्षेत्र में आधुनिकता स्वयं को अभिव्यक्ति भंगिमा और विषयगत नवीनता दोनों से जोड़ती है। विषयगत नवीनता ने व्यक्ति की संकीर्ण चेतना को प्रसार देकर व्यक्तित्व को ऊर्जा की ओर पहुँचाया जहाँ मनुष्य की कुंठित अभिव्यक्तियों को स्वच्छन्दता प्राप्त हुई तथा अभिव्यक्ति में परिवर्तन

---

1. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ*, पृ० 6
2. वही, पृ० 7
3. डॉ० कमलाप्रसाद पाण्डेय, *छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि*, पृ० 268

हुए। अतः आज का साहित्यकार प्रायः छोटी रचनाएँ अधिक करता है और उन रचनाओं में बिम्बों के प्रति आग्रह कम तथा अमूर्त विधानों की सूक्ष्म अभिव्यंजनात्मक अभिव्यक्ति अधिक हुई है। **डॉ० कुमार विमल** ने अपनी पुस्तक **'अत्याधुनिक हिन्दी साहित्य में आधुनिकता'** पर विचार करते हुए कहा है कि "आधुनिकता अपने आप में कोई मनगढ़न्त मूल्य या एक स्थिर बिन्दु पर टिका हुआ मानदण्ड नहीं है। यह तो एक विकासशील दृष्टिकोण है, एक गतिशील सांस्कृतिक सातत्य (काण्टीन्यूयम्) है, एक लोचदार जीवन-दृष्टि है या युगबोध से उन्नमित एक सशक्त प्रवृत्ति है। इसके मूल में धर्मनिरपेक्षता और अन्तर्राष्ट्रीयता, अतः 'एक विश्व' की चेतना है। एक प्रकार आधुनिकता की माँग है कि आज किसी कवि या कलाकार की भाष्य-विशेष को, देश विशेष में सीमित न कर सम्पूर्ण विश्व के परिवेश में देखा और परखा जाय साथ ही प्रत्येक कलाकार अपने जातीय या राष्ट्रीय बोध को विश्वबोध से संयुक्त करना सीखें।[1]

आधुनिकता एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। इसको कई नामों से अभिहित किया जाता है जैसे-नये बोध, संचेतनता, नयी संवेदना, नये संदर्भ, नयी अभिरुचि, नयी कहानी, नये मूल्य आदि।

डॉ० इन्द्रनाथ मदान ने **'निबन्ध और निबन्ध'** में "आधुनिकता को एक प्रक्रिया कहा है।"[2] वह सारे बदलाव को इस प्रक्रिया के अन्दर समेटते हैं। **आधुनिकता और हिन्दी साहित्य** पुस्तक में **डॉ० मदान** ने आधुनिकता पर विस्तृत विचार किया है। **डॉ० मदान 'आधुनिकता'** की पहचान एक प्रक्रिया के रूप में देते हैं। वह कहते हैं कि "आधुनिकता एक प्रक्रिया है जो एक से अधिक दौरों से गुजरने की गवाही देती है।........... यह मध्यकालीन और रोमांटिक दोनों बोधों का विरोध करती है।[3]

इसी संदर्भ में **मदान** के यह विचार द्रष्टव्य हैं - आधुनिकता एक प्रक्रिया होने के कारण एक से अधिक दौरों से गुजरी है और यह आज भी जारी है। इसलिए किसी एक दौर पर अँगुली रखकर यह कहना कठिन है कि आधुनिकता यह है। इसकी पहचान अनेक पहलुओं से की गयी है। इसे कभी अपरम्परागत परम्परा कहा गया है, कभी ऐतिहासिक निरन्तरता तो कभी इसे अन्त के बोध की दृष्टि से पहचानने की कोशिश की गयी है।"[4]

डॉ० मदान का मत है कि यदि आधुनिकता को मूल्य के रूप में न आँककर प्रक्रिया के रूप में आँका गया होता तो आधुनिकता को इतने नामों की आवश्यकता नहीं होती।

डॉ० बच्चन सिंह ने आधुनिकता को एक बिन्दु पर स्थित और गति दोनों मानते हुए कहा है कि, "आधुनिकता न तो सपाटबयानी में होती है और न बिम्ब योजना में। वह एक दृष्टिकोण में होती है। .... आधुनिकता तो आधुनिकता है ही, उसका अस्वीकार भी आधुनिकता है। आधुनिकता के स्वीकार-अस्वीकार के परे जाना भी आधुनिकता है।"[5]

डॉ० रामेश्वर लाल खण्डेलवाल ने 'आधुनिकता' को परिभाषित करते हुए, "आधुनिक जीवन

---

1. डॉ० कुमार विमल : *आधुनिक हिन्दी साहित्य (आधुनिकता),* पृ० 256
2. डॉ० इन्द्रनाथ मदान : *निबन्ध और निबन्ध,* पृ० 96
3. डॉ० इन्द्रनाथ मदान : *आधुनिकता और हिन्दी साहित्य,* पृ० 73
4. वही, पृ० 19
5. डॉ० बच्चन सिंह : *आलोचना (त्रैमासिक) अप्रैल-जून* 73, पृ० 113-114

और जगत् का काल-बिन्दु देखने-समझने की एक भिन्न स्थिति या दृष्टि भंगिमा है, जो मुख्यतः बौद्धिक धरातल से सम्बन्धित रहकर हमारे जीवन मूल्यों का निर्धारण व जीवन-प्रणाली का नियमन तथा रूपांकन करती है।''[1] **डॉ० नगेन्द्र** द्वारा सम्पादित **हिन्दी साहित्य के इतिहास** में उद्धृत **डॉ० बच्चन सिंह** द्वारा अपने निबन्ध में आधुनिकता को इस प्रकार परिभाषित किया गया है- आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और टेक्नालॉजी के फलस्वरूप उत्पन्न मानवीय स्थितियों का नया, गैर-रोमांटिक अमिथकीय साक्षात्कार आधुनिकता है।''[2]

डॉ० अजब सिंह ने 'आधुनिकता' का संदर्भ दो भिन्नार्थों में दिया है। प्रथम अर्थ में आधुनिकता प्राचीन एवं मध्ययुगीन भावबोध से भिन्न तथा नूतन इहलौकिक दृष्टिकोण है।[3] **डॉ ० सिंह**ने आधु निकता को परिभाषित करते हुए कहा है कि आधुनिकता मध्ययुगीन भावबोध के विरुद्ध एक दृष्टिकोण है, प्रक्रिया है, अद्यतनता भी है, मानव-जीवन-मूल्यों को नवीन भावबोध के साथ उपस्थित करना भी है, साथ ही, वैज्ञानिक बौद्धिकता इसमें सर्वोपरि है।[4]

स्वयं मेरे विचार से जो सबसे नूतन वर्तमान और भविष्योन्मुखी है, वही आधुनिकता का द्योतक है। पुरातन और भूत आधुनिकता से परे केवल परम्परा है। आधुनिकता का आशय देशमान्य के बोध से है और समसामयिकता इस बोध को सक्रिय रूप देती है। आधुनिकता को हम युग-विशेष का गुण कह सकते हैं और जिसकी स्थिति विशेष का आयाम है- समसामयिकता। अतः आधुनिकता तो केवल आज अभी, इसी समय है।

स्वच्छन्दतावादी दौर के पश्चात् आधुनिक कविता ने अपना रूप विस्तार किया है। आधुनिक कविता अपना रूप निर्मित कर रही है। इस निर्माण में वह अपने अन्दर कुछ अन्तर पैदा करती है। वास्तव में यह छायावादोत्तर कविता का नवीन पड़ाव है और स्वच्छन्दतावादी कविता का एक नवीन आयाम है, यह एक नवीन चेतना की उद्घोषणा भी है। यहाँ आकर कलाकार समसामयिक चेतना और वर्तमान आत्मिक अनुभूतियों से जुड़ जाता है।

आधुनिक हिन्दी कविता ने सन् 1938 के आसपास नूतनता एवं व्यापकता की दृष्टि से महत्ता प्राप्त की थी। इसी समय कविता सामाजिक यथार्थ की प्रशस्त भूमि पर पदार्पण करती है। यह वह समय था जब अनेक पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ था, अनेक श्रमिक संस्थाएँ स्थापित हुई, सभाएँ व अनेक ऐतिहासिक हड़तालें हुई। इन सबसे सम्बन्धित अभिव्यक्तियाँ भी हिन्दी कविता में विलक्षण रूप लिये विद्यमान हैं। यह सभी अभिव्यक्तियाँ क्रान्तिकारी अभिव्यक्तियाँ थीं क्योंकि तत्कालीन कवियों ने अपनी कविताओं में सामाजिक चेतना को वाणी दी थी। भारत के राजनातिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय आन्दोलनों ने नवस्वच्छन्दतावादी कवियों को प्रेरणा दी। हिन्दी में नवस्वच्छन्दतावादी चेतना की यह अभिव्यंजना परिवेशगत आवश्यकता थी। ऐतिहासिक अनिवार्यता के कारण आधुनिकता के नूतन संदर्भों का आरम्भ हो चुका था। आधुनिकता के दो संदर्भ पाश्चात्य एवं साम्यवादी (पूर्वी) हमने अपनाये हैं जो परम्परा के विरोधी हैं। साम्यवादी आधुनिकता में निचले

1. डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल '*तरुण* सम्भावना, वर्ष 1 अंक 2, पृ० 86
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास : *सं० डॉ० नगेन्द्र, डॉ० बच्चन सिंह का निबन्ध,* पृ० 450
3. डॉ० अजब सिंह : *आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ,* पृ० 6
4. वही, पृ० 7

गरीब, मध्यवर्ग से सम्बन्धित मिथक, क्रांति की दृष्टि, परम्परा एवं रूढ़ियों से विद्रोह था। यहीं से साम्यवादी आधुनिकता में एक नवीन प्रवृत्ति उभरती है, जिसे हम नवस्वच्छन्दतावादी मोड़ कह सकते हैं। इस प्रकार नवस्वच्छन्दतावाद आधुनिकता की चुनौती के परिणामस्वरूप आया। यह कविता का नया विस्तार है और स्वच्छन्दतावादी कविता के प्रति प्रतिक्रिया का परिणाम है। नवीन धरातल पर युगसापेक्ष अभिव्यंजना ही नवस्वच्छन्दतावाद है। नवस्वच्छन्दतावाद वैज्ञानिक आविष्कारों के और उपलब्धियों के सामने इस कारण नहीं टिक सका था क्योंकि जिन नवीन क्षितियों को मापा जा रहा था उनके लिए तर्क, बुद्धि एवं भौतिक दृष्टि अधिक अपेक्षित थी और इसके आगे स्वच्छन्दतावादी कल्पना, भावुकता एवं आध्यात्मिकता कहाँ टिक पाती? अतः नवस्वच्छन्दतावादी चेतना ने स्वच्छन्दतावाद का विरोध किया और नवीनरूप में अपनी अभिव्यक्ति की। वैज्ञानिक उपलब्धियों और तत्कालीन परिवेश से प्रसूत हिन्दी कविता यथार्थवादी चेतना से आकर मिल जाती है। इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद एवं यथार्थवाद के समन्वित रूप में स्वच्छन्दतावाद एक नवीन रूप में उभरता है, जिसे नवस्वच्छन्दतावाद का नाम दिया गया।

नवस्वच्छन्दतावाद, स्वच्छन्दतावाद का क्षय नहीं वरन् उसका व्यापक विस्तार है, इसी कारण स्वच्छन्दतावाद में 'नव' जोड़ा गया क्योंकि इससे स्वच्छन्दतावाद को विस्तार मिलता है और साथ ही स्वच्छन्दतावाद का सम्बन्ध व्यापक फलक से जुड़ जाता है क्योंकि नवस्वच्छन्दतावाद अपने में पूर्ण युगसापेक्षता की चेतना की अभिव्यक्ति भी है।

स्वच्छन्दतावादी कविता में एक समय ऐसा भी आया था जब स्वच्छन्दतावाद में भी रूढ़ियाँ निर्मित होने लगी थीं और स्वच्छन्दतावादी काव्य भी परम्परागत होता जा रहा था। इसका कारण यह था कि भावबोध की स्वतंत्रता के नाम पर भावुकता की परम्परा चल पड़ी थी और कलात्मक निबन्ध भी अधिक रूढ़ हो चले थे जिससे स्वच्छन्दतावादी चेतना का ह्रास हो चला था, वह क्षीण हो चली थी किन्तु स्वच्छन्दतावादी चेतना समाप्त नहीं हुई थी। क्षीण पड़ गयी स्वच्छन्दतावादी चेतना-युग-सापेक्षता के संस्पर्श में आयी और उसने अपना रूप संवारा। वैज्ञानिक उपलब्धियाँ तथा सामाजिक वातावरण से प्रसूत स्वच्छन्दतावादी चेतना यथार्थ से मिलती है और नये रूप में स्वयं को अभिव्यक्त करती है; जो इसके अपने रूप का व्यापक विस्तार है।

हिन्दी की छायावादोत्तर कविता के इतिहास को अभिधाओं के द्वारा विभाजित किया जाता रहा है। छायावादोत्तर काव्य की धारा वैयक्तिक, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, अनुभूतिपरक, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता, नवगीत, अकविता आदि दिशाओं की ओर अग्रसर हुई। इसे विभिन्न नामों से अभिहित किया गया। छायावादोत्तर हिन्दी कविता ने कई उतार-चढ़ाव देखे हैं। वैयक्तिक कविता, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, नवगीत, अकविता इन सभी को हम निश्चित रूप से स्वच्छन्दतावादी कविता का विस्तार एवं स्वच्छन्दतावादी काव्य चेतना के विकास-सोपान कह सकते हैं। इन्हें केवल एक नाम नवस्वच्छन्दतावाद के नाम से सम्बोधित करना चाहिए क्योंकि यह समस्त विकास सोपान स्वच्छन्दतावाद का व्यापक विस्तार है। इनमें स्वच्छन्दतावादी चेतना का स्पन्दन स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। रूढ़ियों के प्रति विद्रोह भी इसमें स्पष्ट झलकता है।

'नयी कविता' भी वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी संस्कार का विस्तार है। इन कविताओं में स्वच्छन्दतावादी संस्कार अभी भी स्पष्ट दिखायी देते हैं, ऐसी स्थिति में कविता को स्वच्छन्दतावाद का

नवीन विस्तार अर्थात् 'नवस्वच्छन्दतावाद' कहना अधिक समीचीन लगता है।"[1] नयी कविता स्वच्छन्दतावाद का विस्तार है और नवस्वच्छन्दतावाद नयी कविता का भी अत्यन्त विस्तृत रूप है। प्रयोगवादी काव्य का विकास नवस्वच्छन्दतावाद में हुआ, जिसे नयी कविता की संज्ञा से अभिहित किया जाने लगा है। प्रयोगवादी काव्य प्रवृत्ति अवरुद्ध होकर प्रपद्यवाद में सीमित हो जाती है और यही प्रवृत्ति गतिशील होकर नयीं कविता में विकास पा रही है।"[2] नवस्वच्छन्दतावाद पाश्चात्य काव्य की नवीनतम् काव्य प्रवृत्ति है। **डॉ० प्रेमशंकर** ने नवस्वच्छन्दतावाद को नव-यथार्थवाद के नाम से अभिहित किया।[15] इस प्रकार नयी कविता को नवस्वच्छन्दतावाद तथा नवयथार्थवाद नवरोमनवाद इत्यादि नामों से अभिहित किया जाता है। इसके यह सब नाम पाश्चात्य हैं किन्तु रूप भारतीय है। **लक्ष्मीकान्त वर्मा** ने नयी कविता को आधुनिकता एवं समसामयिकता की संज्ञाओं से अभिहित किया है।

इस प्रकार नयी कविता स्वच्छन्दतावादी चेतना का विस्तृत संस्कार है। नयी कविता जब अधिक व्यापक फलक पर अपने पाँव पसारती है तो आधुनिकता के धरातल पर यथार्थ की सीढ़ी लगा वह अपने को और अधिक प्रौढ़ तथा समृद्धिशाली बनाती हुई नवस्वच्छन्दतावादी कविता के रूप में उभरती है, परिणत होती है। इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी एवं यथार्थवादी आधुनिकता के फलस्वरूप स्वच्छन्दतावाद का नवीन विस्तार होता है; नवस्वच्छन्दतावाद के रूप में।

स्वच्छन्दतावाद आधुनिकता के विश्वसनीय सामाजिक और वैज्ञानिक यथार्थवादी संदर्भ में नवस्वच्छन्दतावाद बन तो जाता है किन्तु इसे स्वच्छन्दतावाद का नूतन विकासमात्र नहीं मानना चाहिए। सच तो यह है कि नवस्वच्छन्दतावाद अत्याधुनिक संश्लिष्ट दृष्टि है, जिसमें प्रकृति-प्रेम, रहस्य रोमांस, आन्तरिकता, वैयक्तिकता, भावों की मसृणता, कल्पनाशीलता, सूक्ष्म आदि स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ अधिक मांसल, वैज्ञानिक, समष्टिमूलक, यथार्थवादी, मनोवैज्ञानिक, तथा जीवन बन जाती हैं और तब स्वच्छन्दतावाद का नया रूप नवस्वच्छन्दतावाद कहलाता है।[4]

प्रो० दीनानाथ की उपर्युक्त टिप्पणी से यह अत्यन्त स्पष्ट हो जाता है कि स्वच्छन्दतावाद व यथार्थवाद आधुनिकता के संदर्भ में 'नवस्वच्छन्दतावाद' बन जाता है। स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद का समन्वित रूप जब आधुनिकता के सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक संदर्भों की युग-सापेक्षता के संस्पर्श में आता है तो केवल स्वच्छन्दतावाद का नूतन विकासमात्र नही रहता वरन् वह एक अत्याधुनिक संश्लिष्ट दृष्टि बन जाता है और जिसमें समस्त स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ अधिक मांसल, वैज्ञानिक, समष्टिमूलक, यथार्थवादी, मनोवैज्ञानिक यहाँ तक कि जीवन बन जाती हैं और स्वच्छन्दतावाद का यह नवीन आधुनिक रूप 'नवस्वच्छन्दतावाद' के रूप में संवारता है। इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद का नवोन्मेष ही नवस्वच्छन्दतावाद बन जाता है।[5] हिन्दी की छायावादोत्तर कविताओं में सामाजिक, मार्क्सवादी,

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 83
2. डॉ० इन्द्रनाथ मदान : *आधुनिक कविता का मूल्यांकन,* पृ० 83
3. वही, पृ० 83
4. प्रो० दीनानाथ : *नवस्वच्छन्दतावाद : आलोचकीय संदृष्टि, अभिनव-भारती पत्रिका, हिन्दी विभाग, ए० एम० यू० वर्ष,* 1994-96, पृ० 232
5. प्रो० दीनानाथ : *नवस्वच्छन्दतावाद : आलोचकीय संदृष्टि, अभिनव-भारती पत्रिका, हिन्दी विभाग, ए० एम० यू० वर्ष,* 1994-96, पृ० 232

मनोवैज्ञानिक और यथार्थवादी आधुनिकता अनिवार्यतः युग-धर्म बनकर परोक्ष और अपरोक्ष रूप में गतिमान रही है। नवस्वच्छन्दतावाद के व्यापक परिसर में बँधकर नवीन कलात्मक चेतना से सम्पृक्त हुई है। इसी कारण नवस्वच्छन्दतावाद के सम्बन्ध में **डॉ० अजब सिंह** ने स्पष्ट किया है कि ''स्वच्छन्दतावाद को नवीन धरातल पर रखना जो युगसापेक्षता के साथ अभिव्यंजित होता है, उसे नवस्वच्छन्दतावाद कहेंगे। नवस्वच्छन्दतावाद, स्वच्छन्दतावाद के प्रति प्रतिक्रिया है, आधुनिकता की चुनौती है, कविता का नया विस्तार है।''[1]

हिन्दी की नवस्वच्छन्दतावादी समीक्षा को विशेष फलक पर विश्लेषित करने का श्रेय **प्रो० अजब सिंह** को है। **डॉ० अजब सिंह** ने ही सर्वप्रथम समस्त छायावादोत्तर काव्य-प्रवृत्तियों को एक नाम 'नवस्वच्छंदतावाद' दिया है। **प्रो० सिंह** के अतिरिक्त **आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, डॉ० इन्द्रनाथ मदान, डॉ० नामवर सिंह, डॉ० बच्चन सिंह** एवं **अशोक वाजपेयी** ने भी उत्तर छायावादी प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया है।

डॉ० बच्चन सिंह ने छायावादोत्तर काव्य-प्रवृत्तियों को 'उत्तर स्वच्छन्दतावाद' के रूप में स्वीकार किया है,[2] जबकि **डॉ० इन्द्रनाथ मदान** इसके लिए 'उत्तर छायावाद' नाम सुझाते हैं [3] किन्तु उत्तर छायावाद का अर्थ क्षयी स्वच्छन्दतावाद का है। **डॉ० अजब सिंह** ने स्वच्छन्दतावाद को और अधिक विकसित रूप प्रदान किया और छायावादोत्तर सभी विधाओं को 'नवस्वच्छन्दतावाद' नाम दिया और विस्तृत फलक पर विश्लेषित कर एक विशिष्ट आयाम प्रदान किया। नवस्वच्छन्दतावाद के माध्यम से **प्रो० सिंह** ने स्वच्छन्दतावाद के साथ यथार्थवाद का समन्वय कर मार्क्सवादी दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में स्वच्छन्दतावादी अवधारणा को व्यापक फलक पर विश्लेषित कर स्वच्छन्दतावादी समीक्षा को विकसित किया तथा स्वच्छन्दतावादी चिन्तन के विकास को एक नई दिशा प्रदान कर उसे एक नवीन क्षितिज की ओर अग्रसर कर हिन्दी समीक्षा के महत्त्व को उच्चता की ओर ले गये।

डॉ० नामवर सिंह ने नवस्वच्छन्दतावाद को नयी कविता के स्वच्छन्दतावादी विकास के रूप में स्वीकार किया है। उनके अनुसार, ''नयी कविता वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी संस्कार का विस्तार है। इन कविताओं में स्वच्छन्दतावादी संस्कार अभी भी विद्यमान हैं। ऐसी स्थिति में इसे स्वच्छन्दतावाद का नया विस्तार नवस्वच्छन्दतावाद कहना उपयुक्त है।''[4]

मुक्तिबोध ने भी नवस्वच्छन्दतावाद का विस्तार प्रस्तुत करते हुए कहा है, ''दूसरे सप्तक वाले ये अपनी नवीन भावनाएँ लेकर प्रयोगवाद में आए। दूसरा सप्तक रोमांटिक परिधान की दृष्टि से अधिक मनोरम है। रोमांटिक भावनाएँ जीवन की यथार्थता है।''[5] इस प्रकार जब रोमांटिक भावनाओं के साथ यथार्थ का मिलन होता है तो निश्चित ही कवि मन में नवीन भाव उत्पन्न होंगे और यही 'नवस्वच्छन्दतावादी' काव्य-प्रवृत्ति की रूप सृष्टि है। यहाँ स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रवृत्ति अपना विस्तार करती है जब वह यथार्थवाद सं संस्पर्श करती है तो एक नवीन रूप प्राप्त करती है, जिसे नवस्वच्छन्दतावाद के रूप में स्वीकारा गया है।

1. डॉ०अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 53
2. डॉ० बच्चन सिंह : *आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास,* पृ० 273
3. डॉ० इन्द्रनाथ मदान : *आधुनिकता और हिन्दी साहित्य,* पृ० 176
4. डॉ० नामवर सिंह : *कविता के नये प्रतिमान,* पृ० 26
5. वही, पृ० 26

ार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने व्यक्तिवादी और समष्टिवादी चिंतन धाराओं के समन्वय की प्रक्रिया को नवस्वच्छन्दतावादी चिंतन की सृष्टि के मूल में माना है। **आचार्य वाजपेयी** ने कहा है कि ''व्यक्तिवादी और समष्टिवादी चिंतन धाराओं के समन्वय की यह प्रक्रिया नवस्वच्छन्दतावादी चेतना को जन्म देती है।''[1] **आचार्य वाजपेयी** के अनुसार नवस्वच्छन्दतावाद में वैयक्तिकता एवं सामाजिकता का समन्वय दिखायी पड़ता है।

वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी और यथार्थवादी चेतना के समन्वय और सीमा विस्तार से नवस्वच्छन्दतावादी चेतना का जन्म होता है। यह चेतना साहित्य में भावजगत् और बाह्य संसार में कोई अन्तर्विरोध नहीं रखती। भावजगत् और बाह्य जगत् के समन्वय से यथार्थवाद का विकास होता है और जहाँ से यथार्थवाद का विकास होता है वहीं से नवस्वच्छन्दतावादी चेतना का जन्म होता है। यहाँ यथार्थवाद का विकास एक शैली के रूप में होता है, जिसकी प्रवृत्ति स्वच्छन्द है, जिसकी अभिव्यक्ति व्यंग्य के द्वारा होती है, और जिसकी पहचान आधुनिकता है।

नवस्वच्छन्दतावादी चेतना साहित्य में वैयक्तिकता एवं सामाजिकता की स्वीकृति है। जब कवि किसी काव्य की रचना करता है तो वह अपनी चेतना का उपयोग करता है तथा रचना करते समय कवि की पूरी मानसिकता भी उभरती है। काल्पनिक पुनर्सृजन के समय कवि की वैयक्तिक अनुभूतियाँ और सामाजिक परिवेश से प्रसूत प्रवृत्तियों को अपने रूप निर्माण का समय मिलता है। यहाँ कवि अपनी कल्पना में यथार्थ को सम्मिलित करता है। अतः कवि के अन्तः एवं बाह्य का बड़ा सुन्दर विलयन होता है क्योंकि कवि अपनी प्रतिभा से अपनी वैयक्तिक एवं सामाजिक चेतना को अभिव्यंजित करता है। काव्य सर्जना करते समय कवि अपना पराया के भेद को भुला देता है। कवि की इस वैयक्तिकता एवं सामाजिकता को युंग ने वैयक्तिक अचेतन एवं सामूहिक अचेतन का नाम दिया है। कवि की आन्तरिकता एवं वैयक्तिक अनुभूतियों के अभाव में कविता संभव नहीं होती तथा सामाजिकता एवं ऐतिहासिकता से पृथक् कविता लिखी नहीं जा सकती। सामूहिक अचेतन ही कवि मन को मानवीय समस्याओं से अवगत कराता है। मेरे विचार से सामूहिक अचेतन ही कवि के वैयक्तिक अचेतन को जागृत कर क्रियाशील बनाता है, उसमें चेतना भरता है। यही कारण है कि किसी भी कलाकार की रचना में वैयक्तिकता और सामाजिकता की भी स्वाभाविक अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार कवि अपनी अनुभूति को समसामयिक जीवन तथा परिवेश के साथ मिलाकर, सर्जना करता है और कवि की यह अनुभूति वास्तविक भावना से प्रसूत होते हुए कलात्मक अभिव्यक्ति का रूप लेती है। साहित्य में काव्य का यह रूप 'नवस्वच्छन्दतावाद' के नाम से अपनी पताका फहराता है।

अतः स्पष्ट है कि कवि की सर्जना चाहे उसकी वैयक्तिक अनुभूति की या सामाजिक अनुभूति की अभिव्यंजना हो यथार्थ से अलग नहीं हो सकती। जो साहित्य अथवा काव्य यथार्थ से पृथक् और मात्र कल्पना से जुड़ा होगा वह नवस्वच्छन्दतावादी साहित्य नहीं हो सकता।

यथार्थवाद केवल एक ही रूप में नहीं वरन् अनेक रूपों में नवस्वच्छन्दतावादी साहित्य से स्वच्छन्दतावादी परिवेश में जुड़ता है। यह आलोचनात्मक यथार्थवाद तथा समाजवादी यथार्थवाद दोनों ही रूपों में नवस्वच्छन्दतावाद से जुड़ता है। आलोचनात्मक यथार्थवाद यद्यपि अपने में वैज्ञानिक दृष्टि का अभाव भी रखता है किन्तु समसामयिक युग के अन्तः एवं बाह्य परिवेश की सामाजिक व्यवस्था

1. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, *नया साहित्य : नये प्रश्न,* पृ० 105

को अच्छी तरह प्रस्तुत करना, जीवन की वास्तविकता को ईमानदारी, जीवन्तता एवं प्राणवत्ता के साथ चित्रित करना, मनुष्य की पीड़ा एवं उसके सामाजिक जीवन के पूरे परिवेश को चित्रित करना यह आलोचनात्मक यथार्थवाद की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

समाजवादी यथार्थवाद एक नये प्रकार का चिंतन है, जिसकी मूल चेतना समाज की वास्तविकता का अंकन है। यह यथार्थ जीवन का समाजवादी दृष्टि से मूल्यांकन करता है। यह यथार्थवाद वस्तुगत यथार्थ को सम्पूर्ण सजीवता, ईमानदारी से अभिव्यंजित करने का आग्रह करता है और साथ ही इस यथार्थ की यह भी अपेक्षा रहती है कि वस्तुगत यथार्थ का चित्र और उस यथार्थ के बीच संघर्षरत वर्ग, समूह या मनुष्य का चित्र भी उसकी सम्पूर्ण भूमिका में चित्रित हो। यहाँ कवि को स्वच्छन्द दृष्टि अपनानी पड़ती है। वस्तुतः भविष्य को रूपायित करनेवाली यह दृष्टि ही स्वच्छन्दतावादी दृष्टि है। इसी बिन्दु पर यथार्थवाद और स्वच्छन्दतावाद की विरोधी प्रवृत्तियाँ अपनी-अपनी क्रान्तिकारी तथा विकासमूलक भूमिकाओं के लिए मिलती हैं। समाजवादी यथार्थ को क्रान्तिकारी यथार्थ के रूप में जाना जाता है क्योंकि यह मानव कल्याण के लिए एक क्रान्तिकारी विकास है।

किसी भी साहित्य में रचना को उत्कृष्टता प्रदान करने के लिए आलोचनात्मक यथार्थ और सामाजिक यथार्थ का सहज मिलाप अपेक्षित है। आलोचनात्मक एवं सामाजिक अथवा क्रान्तिकारी यथार्थवाद के साथ कल्पना के समन्वय से स्वच्छन्दतावाद का नवीन विकास होता है और स्वच्छन्दतावाद नवस्वच्छन्दतावाद के साथ जुड़ जाता है।

प्रो० अजब सिंह के अनुसार, ''यथार्थवाद के दोनों रूपों आलोचनात्मक यथार्थवाद एवं समाजवादी यथार्थवाद में स्वच्छन्दतावाद की स्थिति रहती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्वच्छन्दतावादी कवि या लेखक यथार्थवादी होता है तथा यथार्थवादी कवि या लेखक स्वच्छन्दतावादी प्रकृति का होता है। इन दोनों की समन्वित कलात्मक साधना से ऊँची कला उभरती है और इसी बिन्दु पर आकर कलाकार व साहित्यकार नवस्वच्छन्दतावादी हो जाता है।''[1]

इस प्रकार स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि नवस्वच्छन्दतावाद न तो यथार्थवाद की सम्पूर्ण परिधि को अपने घेरे में लेता है और न ही पूर्णरूपेण यथार्थवाद का विरोध करता है। वास्तव में नवस्वच्छन्दतावाद यथार्थवाद को अपने में समन्वित कर, एक नवीन यथार्थवाद को विकसित कर, स्वच्छन्दतावाद को एक नवीन आयाम देता है—नवस्वच्छन्दतावाद ।

प्रो० अजब सिंह ने अपनी पुस्तक 'नवस्वच्छन्दतावाद' में आधुनिक काव्य या साहित्य में नवस्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। नवस्वच्छन्दतावाद के भावगत वैशिष्ट्य के अन्तर्गत नवस्वच्छन्दतावाद का सामाजिक धरातल, मनोवैज्ञानिक धरातल तथा शिल्पगत वैशिष्ट्य के अन्तर्गत नवस्वच्छन्दतावाद की संरचना अर्थात् भाषा, बिम्ब, प्रतीक, मिथक तथा प्रगीतात्मकता को स्थान मिला है।

नवस्वच्छन्दतावाद को मार्क्सवादी संदर्भ के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित कर **डॉ० सिंह** ने नवस्वच्छन्दतावाद को एक विस्तृत आयाम दिया है।

नवस्वच्छन्दतावाद का सामाजिक धरातल वास्तव में उसका मार्क्सवादी संदर्भ है। **कार्ल मार्क्स**

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद*, पृ० 83

ने मनुष्य के पूर्णत्व का स्वप्न देखा था और यही भावना स्वच्छन्दतावादी चेतना का भी केंद्र है। मार्क्सवाद का मूल स्वर क्रान्ति है और नवस्वच्छन्दतावाद का भी।

सर्वप्रथम **जार्ज लुकाच** ने पूँजीवाद विरोधी नवस्वच्छन्दतावाद को आविर्भूत किया है और प्रस्तावित किया कि पूँजीवाद विरोधी नवस्वच्छन्दतावाद ही वास्तविक नवस्वच्छन्दतावाद है। इस प्रकार **जार्ज लुकाच** ने स्वच्छन्दतावादी मार्क्सवाद को जन्म दिया जिसके मूल में पूँजीवादी का विरोध था। **लुकाच** का यह मानना था कि मार्क्सवाद में केवल आर्थिक व्यवस्था को प्राथमिकता नहीं दी गयी थी वरन् आर्थिक व्यवस्था की सम्पूर्णता की धारणा प्रमुख थी। **लुकाच** का नवस्वच्छन्दतावादी मार्क्सवाद सम्पूर्ण क्रान्ति का पक्षधर है एक ऐसी क्रान्ति जो इस जीवन और संसार की व्यवस्था को बिल्कुल समाप्त कर उसके स्थान पर एक नयी व्यवस्था को जन्म दे सके। मानव और मानव का विकास केवल सम्पूर्ण क्रान्ति से सम्भव है और यही **लुकाच** के नवस्वच्छन्दतावादी मार्क्सवाद की मूल चेतना भी है।

स्वच्छन्दतावादी चेतना भी मानव और मानवीय अनुभूतियों से सम्बद्ध है। अतः मानवीय जीवन ही स्वच्छन्दतावाद का केंद्र है। स्वच्छन्दतावादी चेतना से मार्क्सवाद मानवीय अनुभूतियों के परिप्रेक्ष्य में जुड़ जाता है क्योंकि समाजवादी यथार्थवादी कला में संवेगात्मक अनुभूति का यथातथ्य अंकन इसे स्वच्छन्दतावादी चेतना से मिला देता है।''[1] अतः स्पष्ट है कि यथार्थ के साथ जब कल्पना का विलय होता है तो समाजवादी कला नवस्वच्छन्दतावादी कला में परिणत हो जाती है। ''सामाजिक अनुभूतियों को यथार्थ और कल्पना के माध्यम से अभिव्यंजित करनेवाली कला स्वच्छन्दतावादी कला है जो निश्चित रूप से स्वच्छन्दतावाद के नूतन विकास नवस्वच्छन्दतावाद से अपने को जोड़ लेती है।''[2]

प्रत्येक मनुष्य दोहरे व्यक्तित्व का स्वामी होता है एक उसका स्वयं का व्यक्तित्व और दूसरा उसका सामाजिक व्यक्तित्व। दोनों व्यक्तित्व एक दूसरे से नितान्त भिन्न होते हुए भी एक ही इकाई के सदस्य हैं और एक-दूसरे से प्रभावित हैं। इस प्रकार मनुष्य का मनोवैज्ञानिक पहलू उसके सामाजिक धरातल को आलोकित करता है।

यही मार्क्सवाद का कलात्मक चिंतन है जो परोक्ष रूप से स्वच्छन्दतावाद से जुड़ा हुआ है। स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद के मिश्रित रूप से नवस्वच्छन्दतावादी कला का उत्स बनता है और मार्क्सवाद में स्वच्छन्दतावाद के प्रगतिशील रूप से समर्थन मिलता है जो समाजवादी यथार्थवाद का ही प्रतिरूप है। संस्कृति को एक नवीन आयाम देने के लिए ही स्वच्छन्दतावाद एवं यथार्थवाद का मिलन होता है तथा इनके मिलन से ही मार्क्सवादी संदर्भ में नवस्वच्छन्दतावादी चेतना का विकास होता है।

यह तो स्पष्ट है कि नवस्वच्छन्दतावादी चेतना स्वच्छन्दतावाद का नवीन विकसित रूप है, जिसमें स्वच्छन्दतावाद की मूल चेतना के साथ-साथ ऐतिहासिक परिवर्तन तथा आधुनिकता का समायोजन होता है जिससे स्वच्छन्दतावाद का एक नवीन स्वरूप विकसित होता है।

स्वच्छन्दतावादी चेतना कलाकार की आन्तरिक चेतना होती है। कलाकार आन्तरिक चेतना को सामाजिक परिवेश और परिस्थितियों से प्रसूत कर समस्याओं की कलात्मक अभिव्यक्ति करता है किन्तु इसमें कलाकार की आन्तरिक चेतना सर्वोपरि होती है अतः कलाकार की कृति के मूल में

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद*, पृ० 75
2. वही, पृ० 75

स्वच्छन्दतावादी चेतना होने के कारण भावबोध प्रधान होता है। इस प्रकार "आधुनिक भावबोध ऐतिहासिक बदलाव एवं मनोवैज्ञानिक उपलब्धियों के फलस्वरूप उत्पन्न नवस्वच्छन्दतावादी चेतना वैयक्तिकता के साथ सामाजिकता की भी अभिव्यक्ति करती है।"[1]

आधुनिक कलाकार अपने परिवेश एवं परिस्थितियों की उपेक्षा कर कलात्मक सर्जना नहीं कर सकता है अतः उसे अपनी चेतना में स्वच्छन्दतावादी चेतना को साथ लेकर चलना पड़ता है। बदलती सामाजिक परिस्थितियों एवं परिवेश के कारण स्वच्छन्दतावादी चेतना एक नवीन रूप में विकसित होती है, अपने इस विकास में कुछ नूतन भावबोध को भी साथ लेकर चलती है। नूतन भावबोध के साथ-साथ सामाजिक धरातल को भी स्वच्छन्दतावादी चेतना अपनी चेतना की परिधि में समेटती चलती है, जिससे सामयिक परिस्थितियाँ भी स्वच्छन्द रूप में अभिव्यंजित होती हैं। यहीं पर स्वच्छन्दतावादी चेतना अपनी वैचारिक सजगता से नवस्वच्छन्दतावादी हो जाती है। विषय के साथ वैचारिक तारतम्य से साहित्यकार भौतिकवादी हो उठता है। फलतः साहित्यकार भौतिकवादी होने के साथ-साथ यथार्थवादी हो जाता है अर्थात् क्रान्तिकारी भी हो जाता है। इसी बिन्दु पर नवस्वच्छन्दतावाद स्वच्छन्दतावाद का विरोधी बन जाता है और यही बिन्दु स्वच्छन्दतावाद और नवस्वच्छन्दतावाद के मध्य विभाजक रेखा भी है। वैज्ञानिक उपलब्धियों के फलस्वरूप तथा सामाजिक वातावरण से प्रसूत हिन्दी कविता इस बिन्दु पर आकर यथार्थवादी चेतना से मिलती है। फलतः स्वच्छन्दतावादी और यथार्थ बोध के समन्वय से स्वच्छन्दतावाद नये रूप में उभरता है। इस बदलाव की व्याख्या के लिए 'नवस्वच्छन्दतावाद' नाम देना पड़ा।"[2]

आधुनिकता का एक पक्ष सांस्कृतिक विरोध का केंद्र-बिन्दु नवस्वच्छन्दतावाद है। इस पक्ष के अन्तर्गत आते हैं- शहरीकरण, बौद्धिक, आर्थिक, सामाजिक जीवन का यंत्रीकरण, प्रत्यक्षवाद, यांत्रिक भौतिकवाद के रूप में इन शक्तियों का बौद्धिक जीवन में अनुप्रवेश तथा मानवीय समागत आत्मपरकता, इच्छा-शक्ति और कल्पना-शक्ति के महत्व के तिरस्कार के प्रति सामान्य प्रवृत्ति के रूप में जो आधुनिकता है उसके विपरीत सांस्कृतिक विद्रोह केंद्र है नवस्वच्छन्दतावाद। "[3]

इस प्रकार नवस्वच्छन्दतावाद में कल्पना तथा यथार्थ, अनुभूतियाँ तथा परिवेश, वैयक्तिकता तथा सामाजिकता, विद्रोह तथा क्रान्ति, आधुनिकता तथा रोमांटिक आयरनी, यथार्थवाद तथा समाजवादी यथार्थवाद, मानववाद तथा नवमानववाद आदि प्रवृतियों की कलात्मक चेतना की अभिव्यंजना है। "समकालीनता तथा यथार्थता के संयोग से स्वच्छन्दतावाद एक नवीन संदर्भ में बदल जाता है यही इसका सामाजिक धरातल है।"[4]

नवस्वच्छन्दतावाद का सामाजिक धरातल मूलतः स्वच्छन्दतावाद का मार्क्सवादी संदर्भ है।"[5] नवस्वच्छन्दतावादी मार्क्सवाद का मूल सम्पूर्ण क्रान्ति है जो एक नवीन व्यवस्था की अपेक्षा रखती है तथा सम्पूर्ण परिवर्तन की कामना करती है। सम्पूर्ण क्रान्ति नवस्वच्छन्दतावाद में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है और कल्पना को यथार्थ में, अनुभूति को परिवेश में, वैयक्तिकता को सामाजिकता में,

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 87
2. वही, पृ० 87
3. वही, पृ० 89
4. वही, पृ० 89
5. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद, प्राक्कथन,* पृ० 9

विद्रोह को क्रान्ति में, आधुनिकता को रोमांटिक आयरनी में, यथार्थवाद को समाजवादी यथार्थवाद में तथा मानववाद को नवमानववाद में परिवर्तित कर देती है। यही इसका सामाजिक धरातल है।

कल्पना एवं यथार्थ

स्वच्छन्दतावादी काव्य में सर्जनात्मक कल्पना से ही कविता का रूप बनता है किन्तु नवस्वच्छन्दतावादी कविता केवल सर्जनात्मक कल्पना से नहीं वरन् सक्रिय कल्पना से ही अपना रूप निर्मित करती है। ''नवस्वच्छन्दतावादी कवि अपनी अनुभूतियों को काव्यात्मक रूप देते समय मात्र सर्जनात्मक कल्पना से ही अपनी चेतना को विस्तारित नहीं करते, बल्कि वह सक्रिय कल्पना को भी अपनी अभिव्यंजना का माध्यम बनाते हैं। सक्रिय कल्पना की प्रक्रिया यथार्थ पर टिकी हुई है।''[1] सक्रिय कल्पना यथार्थ पर टिकी है अतः सक्रिय कल्पना के लिए निरीक्षण एवं अनुभव अनिवार्य है जबकि सर्जनात्मक कल्पना में ऐसा नहीं है। जब कवि किसी भी दृश्य या वस्तु को देखता है तो वह स्यमेव उसका निरीक्षण करता है और तदनन्तर अनुभूति करता हुआ अपने भाव-बोध को नवीन सर्जनात्मक रूप देता है। जब कवि का किसी यथार्थ से साक्षात्कार होता है तो वह उसके अचेतन मस्तिष्क में कहीं छप जाता है और जब कवि फुरसत के क्षण में होता है तो अचानक वह यथार्थ, दृश्य अथवा घटना उसके अचेतन मस्तिष्क से चेतन में प्रवेश कर जाती है। इस प्रकार कविता की अनुभूतियों की, चेतन मस्तिष्क से अचेतन की तथा अचेतन मस्तिष्क से पुनःचेतन मस्तिष्क की यात्रा कल्पना को जन्म देती है। वैयक्तिक अचेतन से सामूहिक अचेतन में पहुँचने की प्रक्रिया ही सक्रिय कल्पना की उद्भावना है। अतः सक्रिय कल्पना की उद्भावना के लिए चेतन मन को सामूहिक अचेतन में प्रवेश करना पड़ता है। चेतन मन को सामूहिक अचेतन में प्रवेश करने के लिए वैयक्तिक अचेतन के मार्ग से कठिन यात्रा करनी पड़ती है। अतः सक्रिय कल्पना से निर्मित कविता की अभिव्यंजना आकस्मिक भी हो सकती है तथा व्यवस्थित भी। कवि या साहित्यकार सतत साधना से इस प्रक्रिया में दक्षता प्राप्त करता है। इसलिए सक्रिय कल्पना की प्रक्रिया साहित्यकार की उच्चतम साधना का द्योतक है।''[2]

कला में सौन्दर्यात्मक एवं गैरसौन्दर्य तात्त्विक अभिप्रेरणाओं एवं मतों का समावेश होता है। सौन्दर्य तात्विक एवं गैरसौन्दर्य तात्त्विक दोनों ही प्रकार की अभिप्रेरणाओं, आवेगों एवं अनुभूतियों के माध्यम से ही कलात्मक जीवन प्राप्त करता है। अतएव सर्जनात्मक एवं सक्रिय कल्पना एवं यथार्थ का प्रस्तुतीकरण एक अत्यन्त उत्कृष्ट कला को जन्म देते हैं जो कल्पना एवं यथार्थ के समन्वित रूप से ही अपना रूप निर्मित करती है और जिसकी पहचान ही कल्पना एवं यथार्थ का समन्वित रूप है। कवि का काम सत्य का प्रस्तुतीकरण ही नहीं होता बल्कि वह अपनी सर्जनात्मक व सक्रिय कल्पना से यथार्थ को नवीन रूप देता है।''[3] कवि की कलात्मक अभिव्यंजना का यह रूप नवस्वच्छन्दतावादी काव्य के रूप में जाना जाता है।

यथार्थवाद के काव्य में 'वास्तविकता' का चित्रण होता है। सक्रिय एवं सर्जनात्मक कल्पना भी यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करती है। कल्पना व स्वप्न की रंगीन झीनी चादर के अभाव में यथार्थपरक साहित्यकार भी सर्जन करने में असमर्थ होता है। कल्पना और यथार्थ के समन्वित रूप का रूपायन उत्कृष्ट कविता की आत्मा है। कल्पना के अभाव में कविता का सर्जन सम्भव नहीं है। कल्पना-प्रसूत

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद*, पृ० 89
2. वही, पृ० 89
3. वही, पृ० 91

सर्जन वास्तविक जीवन जगत् द्वारा प्रस्तुत घटना-क्रम की अनुकृति मात्र होता है।''[1] मेरे विचार से उसे काव्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। प्रत्येक कवि अपनी समसामयिक पारिवेशिक परम्परा व चेतना को नवीन स्पर्श अपनी कल्पना शक्ति के द्वारा ही देता है। यह भी सत्य है कि कवि अपनी सांस्कृतिक परम्परा व सांस्कृतिक चेतना को छोड़ नहीं सकता। अपने परिवेश एवं समसामयिक यथार्थ से प्रभावित होकर कवि, कल्पना के द्वारा अपनी सर्जना में अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा से नवीन बिन्दुओं को उभारता है। कल्पना व यथार्थ के समन्वय से कविता महान, उत्कृष्ट एवं युग-संदेशवाहक बन जाती है। महान् कवि प्रकृति से कल्पना और यथार्थ के रंगीन भावबोध को अपने में लपेटे हुए रहते हैं। उनकी चेतना इनमें घुली-मिली सी रहती है। महान कवि की कलात्मक साधना कल्पना और यथार्थ की आँख-मिचौनी है। वैज्ञानिक उपलब्धियों एवं सामयिक परिस्थितियों के फलस्वरूप कवि या साहित्यकार अपनी रचना में यथार्थ चित्रण करने के लिए विवश होता है।''[2] बदलते परिवेश एवं परिस्थितियों की अर्थ-व्यवस्था, सामाजिक सम्बन्ध तथा सांस्कृतिक चेतना पर भी प्रभाव पड़ता है, जिसके फलस्वरूप इनमें आमूल परिवर्तन होता है, जिसका सीधा प्रभाव साहित्यकार की सर्जना पर पड़ता है। फलतः साहित्यिक अभिव्यंजना में सामाजिक चेतना सर्वोपरि हो जाती है और हिन्दी कविता भी वैचारिकता से सिक्त सामाजिक चेतना के रूप में अपना रूप सँवारती है। यह सामाजिक चेतना अथवा समाजवादी कला यथार्थवादी चेतना अथवा यथार्थवादी कला होती है। सच्ची कल्पना यथार्थवादी चेतना से विलग नहीं होती। कल्पना नितांत वैयक्तिक एवं अन्तर्दृष्टि है। मानव कल्याण की दृष्टि तथा क्षितिज के उस पार देखने की दृष्टि साहित्य में कल्पना होती है।[3]

कल्पना एवं जगत् की अभिव्यक्ति में यथार्थ अंकन को दृष्टि में रखते हुए कवि जीवन की अनुभूतियों की अभिव्यंजना करता है। कवि ज्ञानेन्द्रियों के माध्यम से बाह्य जगत् में अपना सम्बन्ध जोड़ते हुए अनुभूतियाँ प्राप्त कर सर्जनात्मक एवं सक्रिय कल्पना के माध्यम से अनुभूतियों को अभिव्यंजित करता है। कविता कलात्मक अभिव्यंजना है अतः कवि अपनी कविता में सर्जनात्मक एवं सक्रिय कल्पना अर्थात् विशुद्ध एवं यथार्थपरक कल्पना दोनों का सूक्ष्म विलयन करता है। इसी बिन्दु पर कला अथवा कविता उत्कृष्टता को प्राप्त होती है तथा समकालीन स्थितियों के अंकन के फलस्वरूप नवस्वच्छन्दतावादी हो जाती है।

अनुभूति एवं परिवेश

मानवीय चेतना के संचालन में परिवेश की महत्वपूर्ण भूमिका है। कवि अथवा साहित्यकार जाने-अनजाने परिवेश से प्रभावित होता है क्योंकि परिवेश के अन्तर्गत अतीत एवं वर्तमान दोनों का समावेश है अतः कवि परिवेश से नितान्त जुड़ा होता है। कवि की अनुभूति भी परिवेश की उपज है। ''कवि या लेखक के परिवेश को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है- एक उसकी वैयक्तिकता या आन्तरिकता तथा दूसरी प्रवृत्ति उसका मौलिक परिवेश है। कवि या लेखक के आन्तरिक परिवेश का निर्माण, संवेदना भाव एवं विचार से होता है। कवि या लेखक का मौलिक परिवेश प्राकृतिक शक्तियों एवं बाह्य परिस्थितियों से संचालित होता है। इन दोनों के परस्पर संघात से मानवीय अनुभूतियों का इतिहास चक्र गतिशील होता है।''[4]

---

1. वही, पृ० 91
2. वही, पृ० 92
3. वही, पृ० 94
4. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 96

काव्य की मूलभूत सत्ता अनुभूति या भावना है और यही काव्य का प्रेरक तत्व भी है। कल्पना तो अनुभूति अथवा भावना का क्रियान्वयन है और मूल स्रोत है, जिसकी परिणति काव्यात्मक अभिव्यंजना के रूप में होती है। अनुभूति से काव्यात्मक अभिव्यंजना तक केवल अनुभूति ही गतिमान रहती है। कल्पना यहाँ विस्मृत हो जाती है। अतः यदि अनुभूति को काव्य का निर्णायक तत्व अथवा केंद्र बिन्दु कहा जाय तो गलत नहीं। अनुभूति ही कल्पना के विविध अंगों और मानव छवियों एकान्वयन एवं नियमन करती है। अतएव अनुभूति काव्य का निर्णायक एवं केंद्रीय तत्व है, जिसका सृजन और विन्यास काव्य-कल्पना तथा काव्यात्मक अभिव्यक्ति के रूपों में होता है। इस भावात्मक अनुभूति में मानव-व्यक्तित्व एवं मानवता के ऐसे श्रेष्ठ उपादान होते हैं, जिनसे काव्य में मूल्य और महत्त्व की प्रतिष्ठा होती है।[1] अनुभूति केवल कार्य एवं परिवेश की ही नहीं होती इसका सम्बन्ध अन्य से भी होता है। अनुभूति साहित्यकार या कवि की आन्तरिक चेतना है यह उसकी वैयक्तिक अनुभूति कहलाती है, किन्तु जब अनुभूति अपना क्षेत्र-विस्तार कर परिवेश की सीमा-रेखा से जुड़ती है तो यह सामाजिक चेतना से अनुप्राणित हो साहित्यकार की चेतना को सामाजिकता से जोड़ देती है। कवि अथवा साहित्यकार अत्यन्त कुशलता से अपनी निजी अनुभूतियों एवं सामाजिक चेतना को समन्वित कर एक नवीन कलात्मक रूप प्रदान करता है और इसी प्रकार की उत्कृष्ट रचना ही समाज की चेतना बनती है। डॉ० नामवर सिंह अनुभूति को एक रचनात्मक प्रक्रिया कहते हैं जो निरन्तर बदलती चलती है और उनमें नवीनता आती है। ''अनुभूति एक रचनात्मक प्रक्रिया है। अपने जीवन और परिस्थितियों को बदलने के क्रम में हमारी अनुभूतियाँ भी बदलती चलती हैं- उनमें नवीनता आती है। वैज्ञानिक आविष्कारों के द्वारा प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के कारण मनुष्य के रागबोध के अनेक पहलू प्रकट हुए।''[2]

कवि अथवा साहित्यकार अपनी अनुभूति को अपने समसामयिक जीवन एवं परिवेश के साथ मिलाकर अभिव्यंजित करता है। वह अपनी आत्मिक अनुभूति के साथ परिवेश को मिलाकर वास्तविक अनुभव प्राप्त कर अपनी रचना को कलात्मक रूप प्रदान करता है। अपनी इस रचना में कवि को आन्तरिक चेतना एवं बाह्य जगत् की ध्वनि प्रतिध्वनित होती है। ''वैसे अनुभूति वास्तविकता तो नहीं किन्तु वास्तविकता सम्बन्धी भावना है इसीलिए वह वास्तविकता का एक अंश अथवा पहलू है। अनुभूति वास्तविकता का स्थान नहीं ले सकती है, उसकी सार्थकता इसी बात में है कि वह वास्तविकता को रचनात्मक रूप दे सके।''[3] कवि अथवा लेखक अपनी सृजनात्मक अभिव्यंजना में अनुभूति एवं परिवेश को मिला देता है। यही कारण है कि सभ्यता के विकास के साथ मानवीय अनुभूतियों का क्षेत्र विकसित होता जा रहा है और अनुभूतियों के विस्तार में परिवेश, यथार्थ जीवन एवं वास्तविकता पर काफी बल दिया जा रहा है। अनुभूति एवं परिवेश के मिलन-बिन्दु पर ही सच्ची कविता उभरती है।''[4]

वैयक्तिकता एवं सामाजिकता

किसी भी कलाकार की रचना में उसकी आन्तरिक चेतना का उपयोग होता है। यही आन्तरिक चेतना कवि की व्यक्तिगत अनुभूति होती है जो काव्य में उसकी पूरी मानसिकता भी दर्शाती है।

1. आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : *नया साहित्य : नये प्रश्न,* पृ० 169-70
2. डॉ० नामवर सिंह : *इतिहास और आलोचना,* पृ० 65
3. डॉ० नामवर सिंह : *इतिहास और आलोचना,* पृ० 6
4. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 98

वैयक्तिक अनुभूतियों के अभाव में काव्य सर्जना नहीं हो सकती। जब तक किसी भी भाव, घटना अथवा दृश्य के प्रति कवि की व्यक्तिगत अनुभूति नहीं होगी तो वह कविता का सृजन नहीं कर सकेगा क्योंकि वैयक्तिक अनुभूति ही कवि के हृदय में वेदना का संचार करती है। जब तक स्वयं कवि के हृदय में वेदना की अनुभूति नहीं होगी तो फिर भावों का संचार भी नहीं हो पायेगा। कवि के सृजन कार्य में उसकी वैयक्तिक अनुभूति के साथ-साथ उस युग की आत्मा भी बोलती है क्योंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और वैयक्तिक अनुभूतियों के माध्यम से सामाजिक अनुभूतियों का सामूहिक प्रतिनिधित्व करता है। आन्तरिक चेतना एवं सामाजिक चेतना दोनों को ही कवि अपनी सर्जना के माध्यम से अभिव्यंजित करता है। जिस प्रकार आन्तरिक चेतना एवं आत्मजागृति के अभाव में कविता निर्जीव होती है उसी प्रकार सामाजिक चेतना अथवा सामाजिक आवेष्टन के अभाव में कविता अपना रूप निर्माण नहीं कर सकती है। वैयक्तिकता कवि की आन्तरिक चेतना होती है जबकि सामाजिकता युग की आत्मा है। कवि मन अत्यन्त भावुक होता है और सामाजिक आवश्यकताओं का अपनी हृदय की अनुभूतियों के मध्य बड़ी ही सुन्दरता से विलयन करता है। अतः उसके इस सृजन कार्य में वैयक्तिक अनुभूति के साथ उस युग की आत्मा भी बोलती है। फलतः काव्य में कवि के आत्मदर्शन, आत्माभिव्यक्ति की ही झलक नहीं मिलती वरन् उस युग के समवेत कंठस्वर की ध्वनि भी सम्मिलित रहती है। कवि की वैयक्तिक अनुभूतियाँ और सामाजिक परिवेश से प्रसूत प्रवृत्तियाँ कल्पना के साथ मिलकर अपना रूप निर्माण करती है। इस प्रकार कवि कल्पना के साथ ऐतिहासिक यथार्थता की लपेट में अपनी प्रतिभा की सर्जना करता है। **युंग** ने मनोवैज्ञानिक विश्लेषण के द्वारा काव्य-प्रक्रिया का एक विशिष्ट सिद्धान्त प्रस्तुत किया है। **युंग** ने अचेतन को दो भागों में वैयक्तिक अचेतन तथा सामूहिक अचेतन में विभाजित किया है। इसी को वह व्यक्ति की पूर्ण चेतना कहता है जिसका निर्माण-कार्य ग्रंथियों से हुआ है, जिनमें से एक ग्रन्थि का कार्य काव्य-प्रक्रिया है। यह ग्रंथि व्यक्ति के सामाजिक और ऐतिहासिक परिवेश में काफी स्वतंत्र है।"[1] युंग ने वैयक्तिक एवं सामूहिक अचेतन की अभिव्यंजना को स्वीकार करते हुए कहा है कि कवि सर्जन के सात्विक क्षण में इन दोनों तत्त्वों को काव्य-सर्जना का माध्यम बनाता है। फलतः कवि या कलाकार की रचना में वैयक्तिकता एवं सामाजिकता की सहज स्वाभाविक अभिव्यंजना होती है। सामूहिक अचेतन अच्छी तरह मानवी समस्याओं का संकेत देता है जो हमेशा समस्त विश्व में व्याप्त है।"[2]

नवस्वच्छन्दतावादी कवि के काव्य में अचेतन के दोनों राज्यों का सहज और स्वाभाविक अंकन एवं समन्वय देखने को मिलता है क्योंकि स्वच्छन्दतावाद में तो केवल वैयक्तिक अनुभूतियों का ही अंकन होता था किन्तु भारतीय औद्योगिक क्रान्ति तथा वैज्ञानिक उपलब्धियों के कारण आर्थिक, सामाजिक एवं नैतिक मानदण्ड टूटने लगे थे। बदलती सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के कारण कवि चिंतन की दिशा भी परिवर्तित हो गयी। कवि मन अपनी अनुभूतियों के साथ बाह्य परिस्थितियों, समस्याओं तथा रोजी-रोटी के विषय में भी सोचने को विवश हो गया था। अतः वह वैयक्तिक अनुभूतियों के साथ-साथ सामाजिक अनुभूतियों को भी अपने काव्य में स्थान देने लगा था। कवि यहाँ सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक रूढ़ियों को समाप्त कर नवीन चिन्तन का सृजन कार्य करता है। कवि साहित्यिक रूढ़िवादिता, व्यक्तिवादिता, परम्परागत सौन्दर्य चेतना पर

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 98
2. Ruth L. Munro : *School of Psychoanalytic thought,* P. 558

प्रहार कर क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद एवं समाजवादी यथार्थवाद की ओर उन्मुख होता है। फलतः स्वच्छन्दतावाद एक नवीन मार्ग की ओर अग्रसर होता है जहाँ काव्य में वैयक्तिकता एवं सामाजिकता दोनों का सुन्दर समन्वय होता है। कविता यहाँ यथार्थवादी चेतना को अपनी मुख्य चेतना स्वीकारती है। समाजवादी यथार्थवाद भी इस नवीन चिंतन को एक विकसित आयाम देने में सहायक होता है। काव्य-रचना के इस नवीन विकसित संसार के मानव की समस्याओं का आकलन होने के कारण कविता सामाजिक धरातल को स्पर्श करती है।

नवस्वच्छन्दतावादी वैयक्तिकता एवं स्वच्छन्दतावादी वैयक्तिकता में अन्तर होता है। नवस्वच्छन्दतावादी वैयक्तिक चेतना लोकतांत्रिक स्वतंत्रता के रूप में दिखायी पड़ती है।''[1] कवि या लेखक नवस्वच्छन्दतावादी चेतना का अंकन करते समय समसामयिक जीव्यी-बोध का भी चित्रण करता है। समसामयिक समस्याओं को कवि अपनी कविता में प्रमुख स्थान देता है। फलतः उसकी वैयक्तिक चेतना क्रांतिकारी वैयक्तिक भावना का प्रतिरूप हो जाती है। वहीं दूसरी ओर स्वच्छन्दतावादी वैयक्तिक चेतना में कवि अपने स्वयं के लिए संघर्ष करता है। अपनी इच्छा तथा न्याय को ही वैयक्तिक चेतना के रूप में कवि अथवा लेखक मानव जीवन का सबसे उच्च एवं महत्त्वपूर्ण उद्देश्य 'समानता' को स्वीकार करता है। इस प्रकार यह समाजवादी आदर्श, नवयथार्थवादी विचारधारा के साथ जुड़ने के कारण मानव-कल्याण के लिए एक कलात्मक अभिव्यक्ति है।

नवस्वच्छन्दतावादी कवि सामाजिक अनुभूतियों का अंकन सहज एवं स्वाभाविक रूप में करता है। वह सामाजिक संवेदना को अत्यन्त संवेदनीय तथा प्रेषणीय बनाता है। वह अपनी सामाजिक अनुभूतियों की अभिव्यंजना करता है। तभी उसकी कला उत्कृष्टता को प्राप्त होती है। वैयक्तिकता के नष्ट होने से कला भी नष्ट हो जाती है क्योंकि वह संतुलित रूप में उभर नहीं पाती अतः कलात्मक निखार के लिए वैयक्तिक से परिवेशगत अनुभूतियों की अभिव्यंजना आवश्यक हो जाती है क्योंकि समाज के प्रत्येक सदस्य की छोभ-से-छोटी चेतन क्रिया किसी-न-किसी अंश में सामाजिक होती है और फिर कविता तो समाज के सर्वाधिक संवेदनशील व्यक्ति की चेतना क्रिया है। उसकी सामाजिकता असंदिग्ध है।''[2]

विद्रोह एवं क्रान्ति

परिवर्तन जब मन्द गति से प्रवाहित होता है तब वह 'विद्रोह' कहलाता है किन्तु जब उसकी गति तीव्र हो जाती है, तो वह 'क्रान्ति' कहलाता है।

नवस्वच्छन्दतावादी कवियों ने परिवर्तन की दोनों ही गतियों को आवश्यक समझा है। नवस्वच्छन्दतावादी कविता के माध्यम से व्यक्ति, सत्ता, नियति और अलौकिकता के प्रति व्यक्ति का विद्रोहात्मक स्वर मुखरित हुआ है। परम्परा एवं रूढ़ियों से घृणा करना, उन्हें तोड़ना तथा परम्परा एवं रूढ़ियों के प्रति विद्रोह स्वच्छन्दतावादी कवि को प्रिय होता है क्योंकि सदैव नवीनता एवं मौलिकता की अभिव्यंजना तथा साथ ही सत्ता व्यवस्था एवं साहित्यिक तथा काव्यात्मक रूपों की अभिव्यक्ति व शिल्पों के प्रति विद्रोह स्वच्छन्दतावादी कलाकार के लिए अत्यन्त सहज है। स्वच्छन्दतावादी कवियों की यही विद्रोहात्मक भावना तथा कल्पना की उड़ान सामाजिक चेतना की दिशा की ओर बढ़ती है।

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 101
2. सं० अज्ञेय : *तीसरा सप्तक,* पृ० 117 (डॉ० केदारनाथ का अभिमत)

अतः नवस्वच्छन्दतावादी कवि परिवेशगत वैशिष्ट्य परिपूर्ण अपने कलात्मक वैभव की अभिव्यक्ति में विद्रोह एवं क्रांति के स्वर मुखरित करने लगे। नवस्वच्छन्दतावादी साहित्य में क्रांति लोकतांत्रिक स्वतंत्रता का रूप लिये हुए होती है। जब नवस्वच्छन्दतावादी साहित्यकार समसामयिक जीवनानुभूतियों, जीवन एवं समस्याओं को अपने साहित्य में रूपायित करता है तो यही साहित्यकार की चेतना 'क्रांति' के क्षेत्र में पदार्पण करती है। विद्रोही साहित्यकार केवल वैयक्तिक स्वतंत्रता चाहता है किन्तु क्रांतिकारी साहित्यकार सम्पूर्ण व्यवस्था को परिवर्तित कर एक नवीन व्यवस्था को लाना चाहता है। वह नये ज्ञान, नूतन परिवेश में नयी आशाएँ जगाना चाहता है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक व्यवस्था में परिवर्तन लाना नवस्वच्छन्दतावादी साहित्यकार का प्रमुख प्रतिपाद्य है।

आधुनिक युग की सभी क्रांतियाँ समाजवादी क्रांतियाँ हैं जिनकी मूल चेतना मार्क्सवाद तथा लेनिनवाद है और जो आज विश्व के व्यापक फलक पर सशक्त एवं प्रभावशाली बनती जा रही हैं क्योंकि समाजवादी क्रांति की निर्णायक शक्ति मजदूर वर्ग है। रूस की क्रांति के पश्चात् साहित्य का सर्जनात्मक एवं आलोचनात्मक रूप भी बदला है। दोनों अवधारणाओं के विरोधी द्वन्द्वात्मक रूप के मध्य ही नवस्वच्छन्दतावादी साहित्यकार अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा को निखारता है। समसामयिक परिस्थितियों एवं परिवेशगत वैशिष्ट्य नवस्वच्छन्दतावादी चिंतन में यथार्थवादी चिंतन के साथ अपना रूप निर्माण करता है, जिसमें बौद्धिकता एवं चिन्तनशीलता की भी अधिकता है। यहाँ यथार्थ, कल्पना एवं भावुकता किसी एक का पूर्णतः राज्य न होकर तीनों का सहज संगम है। रोमांस के साथ यथार्थ के मिलन से काव्यात्मक एवं साहित्यिक जगत् में एक नवीन चेतना उभरती है, जिसकी समसामयिकता जीवनानुभूतियाँ तथा परिवेशगत वैशिष्ट्य की अभिव्यक्ति साहित्य एवं काव्य को उत्कृष्टता प्रदान करती है तथा साहित्यकार तथा कवि अपनी चेतना की अभिव्यंजना में साहित्य व काव्य को महान बना देता है।"[1]

इस प्रकार क्रान्ति स्वच्छन्दतावादी साहित्य की एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में उभरती है।

आधुनिकता एवं रोमांटिक आयरनी

आधुनिकता में साहित्य का यथार्थवादी चित्रण होता है जिसमें मानवीय तथा इहलोक की अनुभूतियों की प्रधानता होती है तथा जिसकी एक प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में 'मानववाद' परिलक्षित होता है। मध्ययुग के प्रति विद्रोहात्मक प्रतिक्रिया के कारण आधुनिकता का विकास होता है, जिसमें भगवान् का स्थान मानव ने ले लिया है। दूसरे शब्दों में मानवीय अनुभूतियों के आकलन की महत्ता आधुनिकता की पहचान है। मानववाद मानव जीवन के अध्ययन को अग्रसारित करता है और इसमें मानवीय चेतना की महिमा वर्णित है। .... नूतन व्यवस्था की प्रक्रिया में ही आधुनिकता दिखायी देती है। वस्तुतः आधुनिकता लोकतांत्रिक चेतना का प्रतिनिधित्व करती है। "आधुनिकता नित्य नये संदर्भ ग्रहण करती है क्योंकि यह केवल काल सूचक नहीं है वरन् समय-विशेष की भेदक दृष्टि-परिवर्तन की दिशा के सार्थक आयाम हैं।"[2]

आधुनिक हिन्दी कविता में आधुनिकता एक नवीन रूप लेकर उभरती है। आधुनिकता का यह रूप प्रगतिशील देशों की आधुनिकता तथा पाश्चात्य देशों की आधुनिकता के मध्य द्वन्द्व के कारण

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 113
2. वही, पृ० 115-116

त्रिकोणात्मक रूप लेता है। प्रगतिशील देशों की आधुनिकता के फलस्वरूप हमारे काव्य में मार्क्सवादी विचारधारा एक नवीन चेतना के रूप में उभर रही है जिसमें यथार्थवाद अपने समग्र रूपों में अभिव्यक्त होता है वहीं दूसरी ओर पाश्चात्य देशों की आधुनिकता के फलस्वरूप मनोविश्लेषणवादी अवधारणाएँ काव्य में उभर रही हैं। भारतीय चिंतन में इन दोनों पाश्चात्य एवं प्रगतिशील आधुनिकता का समन्वित रूप एक नवीन चेतना को जन्म देता है फलस्वरूप भारतीय चिंतन एक विशिष्ट आयाम पर प्रतिष्ठित हो रहा है। आधुनिक हिन्दी कविता में आधुनिकता का यह त्रिकोणात्मक रूप देखने को मिलता है जो हमारी संस्कृति व परिवेश का प्रतिफलन है, जिसके कारण आधुनिकता संग्रथित प्रक्रिया है।''[1] डॉ० अजब सिंह के अनुसार आधुनिकता साहित्य व कविता में क्रांतिकारी अवधारणा के रूप में अभिव्यंजित होती है साथ ही इसमें भूत और वर्तमान के तनाव का चित्रण है, जिसकी प्रस्तुति आमूल परिवर्तन करना होता है। इसमें साहित्यकार व कलाकार भविष्य की रेखाएँ भी खींचता है।[2]

यथार्थवादी चिंतन से आधुनिकता को विस्तार मिलता है। आधुनिक कविता जैसे प्रगतिवाद, नयी कविता एवं नवगीत में आलोचनात्मक तथा समाजवादी यथार्थ के कारण आधुनिकता के कई चरण दृष्टिगोचर होते हैं। आलोचनात्मक यथार्थवाद की दृश्यावली जब मनोवैज्ञानिक एवं प्राकृतिक परिवेश में अभिव्यंजित की जाती है तब इसकी मूल चेतना रोमांटिक हो जाती है और जब सर्जन के स्तर पर आलोचनात्मक यथार्थ की मूल चेतना रोमांटिकता जब समाजवादी यथार्थवाद अथवा क्रांतिकारी यथार्थवाद के साथ मिलकर एक हो जाती है तो कवि अपनी सक्रिय कल्पना के द्वारा समन्वय कर अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा का प्रयोग कर युगीन परिवेश को वाणी देता है।

आधुनिक काव्य में आधुनिकता के दर्शन व्यंग्यों के द्वारा या आयरनी के द्वारा होते हैं। आयरनी वैसे व्यंग्य का ही विकसित रूप है। आयरनी को हम परिष्कृत व्यंग्य भी कह सकते हैं। आयरनी का मूल-बोध छिपाने का है या कहने और होने के अन्तर का है। शाब्दिक आयरनी का अर्थ एक ऐसा कथन है, जिसका अर्थ कथन से एकदम विपरीत अथवा भिन्न हो और जिसे कहा जाता हो। इस प्रकार रोमांटिक आयरनी स्वीय अनुभूति की अभिव्यंजना की एक प्रक्रिया है। इसके द्वारा कवि-दार्शनिक एवं सौन्दर्यशास्त्री दृष्टि से हटकर ऐतिहासिक एवं सामाजिक दृष्टि से सामाजिक अनुभूतियों को चित्रित करता है। सामाजिक व्यवस्था पर व्यंग्य करता है।''[3] **रोमांटिक आयरनी** प्रकृति से स्वयं निर्मित कथा है, उसमें प्रयुक्त अलंकार स्वयं में क्रांतिकारी भाव लिये होते हैं। इसका समय क्षणिक तथा आत्मपरक होता है। इसमें मनुष्य एक क्षण में अपने को बदल सकता है। ''रोमांटिक आयरनी में सर्जनात्मक-स्व न तो एकीभूत है और न स्थिर है बल्कि वह स्वयं को सर्जन करने की एक प्रक्रिया है।''[4] रोमांटिक आयरनी में सामंतवाद और लोकतंत्र के परस्पर गतिशील विरोधी शक्तियों के फैलाव और संकुचन की अभिव्यक्ति होती है। बदलते विचार और आत्मसजगता ही रोमांटिक आयरनी के प्रमुख कार्य हैं। आत्मसजगता के मूल में ही आधुनिकता होती है। स्वच्छन्दतावाद से विद्रोह करके ही आधुनिकता अपना रूप सँवारती है। इसमें परस्पर विरोधी दृष्टि का बोध होता है। कभी निरन्तरता तो कभी अनिरन्तरता, कभी अपरम्परा तो कभी इसके विपरीत परम्परा के नवीन स्तर से जुड़ने की बात होती है। इस प्रकार आधुनिकता एवं रोमांटिक आयरनी के फलस्वरूप हिन्दी कविता में

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* वही, पृ० 117
2. वही, पृ० 118
3. वही, पृ० 122
4. वही, पृ० 125

स्वच्छन्दतावादी/ नवस्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों को लिये चलती है। युग संदर्भ के कारण स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति एक नवीन रूप में परिवर्तित हुई है। यथार्थता के कारण इसकी पहचान नवस्वच्छन्दतावादी हो गई।"[1]

यथार्थवाद एवं समाजवादी यथार्थवाद

वस्तुतः स्वच्छन्दतावाद तथा यथार्थवाद के समन्वित और सीमा-विस्तार के साथ ही नवस्वच्छन्दतावादी चेतना जन्म लेती है। स्वच्छन्दतावाद जब यथार्थवाद की भूमि में प्रवेश करता है तो उसका रूप परिवर्तित हो जाता है। आधुनिकता के यथार्थवादी परिप्रेक्ष्य में स्वच्छन्दतावाद नवस्वच्छन्दतावाद का रूप धारण करता है। आधुनिक हिन्दी कविता यथार्थात्मक सामाजिक परिवेश के संदर्भ में नवीन चेतना ग्रहण करती है। वैज्ञानिक आविष्कारों तथा समसामयिक परिवेश की अनुभूतियों से प्रसूत हो हिन्दी कविता जब यथार्थवादी चेतना से मिलती है तब यथार्थवादी बोध तथा स्वच्छन्दतावादी बोध के समन्वित रूप से ही काव्य एक परिवर्तित नवीन दृष्टि ग्रहण करता है और इसी बिन्दु पर नवस्वच्छन्दतावादी चेतना जागृत होती है। अतः स्वच्छन्दतावाद के नवीन विकसित रूप नवस्वच्छन्दतावादी चेतना के जन्म के लिए यथार्थवादी बोध ही पूर्णरूप से उत्तरदायी है। यथार्थवादी चिंतन ही आधुनिक स्वच्छन्दतावाद को एक नवीन रूप प्रदान करता है। इस प्रकार से स्वच्छन्दतावाद यथार्थवाद को अपने में समाहित कर लेता है। यथार्थवादी साहित्यकार की मूल चेतना सामाजिक होती है, जिसमें मानववाद सर्वोपरि होता है क्योंकि यथार्थवादी साहित्यकार की कलात्मक यात्रा का प्रारम्भ ही मानवीय चेतना के अंकन से होता है। वस्तुतः यथार्थवादी साहित्य में मानव को ही सम्पूर्ण प्रतिष्ठा मिलती है अतः यथार्थवाद ही मानववाद है।

साहित्यकार की सर्जना चाहे वह वैयक्तिक अनुभूति की हो अथवा सामाजिक अनुभूति की यथार्थ से परे नहीं हो सकती अतः यथार्थ से कटा हुआ केवल कल्पना से जुड़े काव्य को नवस्वच्छन्दतावादी काव्य की संज्ञा दी जा सकती है। अतः यथार्थवादी बोध नवस्वच्छन्दतावादी कला का प्राण है। जब तक लेखक जीवन की सम्पूर्ण प्रतिक्रियाओं को नहीं समझता, तब तक यथार्थवादी लेखक कहलाने का अधिकार नहीं।"[2]

नवस्वच्छन्दतावादी साहित्य में यथार्थवाद अनेक रूप लेकर स्वच्छन्दतावादी साहित्य परिवेश से जुड़ता है। आलोचनात्मक यथार्थवाद के रूप में समसामयिक युग के अन्तः एवं बाह्य परिवेश की सामाजिक व्यवस्था का प्रस्तुतीकरण करता है। जीवन की वास्तविकता को सम्पूर्ण ईमानदारी से, जीवन्तता से एवं पूर्ण प्राणवत्ता के साथ चित्रित करना ही आलोचनात्मक यथार्थवाद का मुख्य धर्म है। मनुष्य की पीड़ा को एवं उसके पूरे सामाजिक परिवेश को चित्रित करना यह सभी आलोचनात्मक यथार्थवाद की प्रमुख विशेषताओं के अन्तर्गत आता है। आलोचनात्मक यथार्थवाद जीवन, समाज एवं परिवेश बुराइयों, रूढ़ियों तथा विरूपताओं आदि के प्रति एक सहज आलोचनात्मक दृष्टिकोण रखता है। **गोर्की** ने आलोचनात्मक यथार्थवाद को क्रांतिकारी यथार्थवाद का स्रष्टा कहा है।"[3] आलोचनात्मक यथार्थवाद में वैज्ञानिक तथा सामाजिक दृष्टि का अभाव है और यही प्रवृत्ति उसे समाजवादी यथार्थवाद

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 125
2. डॉ० कुँवर पाल सिंह : *मार्क्सवादी सौन्दर्य-शास्त्र और हिन्दी कथा-साहित्य,* पृ० 39
3. Gorky : *On Literature*, p. 242

से भिन्न कर देती है। "आलोचनात्मक यथार्थवाद का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत एवं व्यापक है। सत्य के प्रति निष्ठा, सूक्ष्म पर्यवेक्षण, सम्पूर्ण आकलन, वस्तुगत यथार्थ का मार्मिक अंकन, व्यवस्था की विकृतियों का सही प्रस्तुतीकरण, गहरी सामाजिक निष्ठा तथा अकृत्रिम मानवीय संवेदना, सजीव और जीवन्त मानव चरित्र-चित्रण के अन्तर्गत 'टाइप' की सृष्टि और उसे दोहरी भूमिका पर उसके वैयक्तिक तथा सामाजिक इतिहास के साथ मूर्त करना, महाकाव्यात्मक औदात्य-दृष्टिकोण तथा चित्रण दोनों धरातलों पर निष्क्रिय तटस्थता से हटकर युग जीवन की गतिविधियों का सजग और सचेष्ट 'इन्वाल्वमेंट'[1] यह सभी आलोचनात्मक यथार्थवाद के क्षेत्र विस्तार के आयाम हैं। "वैचारिकता के अभाव के कारण ही आलोचनात्मक यथार्थवादी साहित्यकार में आगत भविष्य को देखने की शक्ति नहीं होती, वह वर्तमान की चहारदीवारी में ही घूमते रहते हैं।"[2]

यथार्थवाद एक चिंतन का रूप लेता है जिसकी मूल चेतना समाज की वास्तविकता का अंकन है। वस्तुतः यथार्थवादी यह नवीन चिंतन यथार्थ जीवन का समाजवादी दृष्टि से मूल्यांकन करता है अतः इसे समाजवादी यथार्थ का नाम दिया गया। समाजवादी यथार्थवाद में मानव-कल्याण के संघर्ष का यथार्थ अंकन होता है अतः यह मानव-कल्याण के लिए एक क्रांतिकारी विकास है इसे क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद भीं कहा जाता है। समाजवादी यथार्थवाद में संघर्षरत मानव के जीवन, जीविका, उसके संघर्ष, उसके चरित्र, उसकी प्रकृति एवं नैतिक सिद्धान्तों के बदलाव के तरीके की झाँकियाँ मिलती हैं। यह नवसमाजवादी मानव का सृजन करता है जिसके कारण इसका सम्बन्ध नवस्वच्छन्दतावादी साहित्यिक दृष्टि से भी जुड़ जाता है। **गोर्की** ने समाजवादी यथार्थवाद के सीमा विस्तार की व्याख्या में कहा है कि "समाजवादी यथार्थवाद ऐसे सम्पूर्ण साहित्य के विकास में एक नयी दिशा थी जो साहित्य-संसार के क्रांतिकारी पुनर्निर्माण के विचार से प्रेरित थी। ये विचार समाजवादी मानववाद के विचार हैं। यह ऐसे साहित्य के विकास में नयी दिशा थी जो साहित्य मनुष्य का वर्णन उसके स्थिर रूप में नहीं करता बल्कि उसे सदैव गतिशील, क्रियाशील, पारस्परिक संघर्ष, वर्ग संघर्ष और समूह संघर्ष और व्यक्तिगत रूपों में करता है।"[3]

समाजवादी यथार्थवाद ही वास्तविक यथार्थ है और उसके अनेक रूप हैं। यह क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद के नाम से अभिहित किया जाता है। कल्पना यथार्थ और स्वच्छन्दता के समन्वय से क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद में जीवन्तता आती है। क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद को जीवन और आधुनिक जगत् एवं समसामयिक परिवेश से अलग नहीं किया जा सकता क्योंकि जीवन-दृष्टि के द्वारा देखी हुई यह जगत् की एक कलात्मक अभिव्यक्ति है। क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद क्रांति और उसके उद्देश्यों के प्रति मनुष्य की उत्सर्ग-भावना, उत्कण्ठा और भावजन्य वैभव को व्यक्त करता है।"[4]

समाजवादी यथार्थवाद वस्तुगत यथार्थ को पूर्ण सजीवता के साथ ईमानदारी से अभिव्यंजित करने की अपेक्षा रखता है तथा साथ ही वस्तुगत यथार्थ का चित्र और उस यथार्थ के मध्य संघर्षरत, वर्ग समूह या मनुष्य का चित्र उसकी सम्पूर्ण भूमिका से चित्रित करने का आग्रह करता है। यहाँ कवि

---

1. Marks : *New York Tribune, 1954 (Statement of Karl Marks).*
2. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 131
3. A. Ovcharenko : *Socialist Realism and Modern Literary Process.* P. 68
4. डॉ० कुँवर पाल सिंर : *मार्क्सवादी सौन्दर्य-शास्त्र और हिन्दी कथा साहित्य,* पृ० 22

को स्वच्छन्द दृष्टि अपनानी पड़ती है क्योंकि अपनी-अपनी क्रांतिकारी और विकासमूलक भूमिकाओं हेतु यथार्थ और स्वच्छन्दतावाद विरोधी प्रवृत्ति इसी बिन्दु पर आकर मिल जाती है। क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद जीवन और आधुनिक जगत से पृथक् नहीं है। इसके विपरीत जीवन-दृष्टि के द्वारा देखी हुई यह जगत् की एक कलात्मक अभिव्यक्ति है।"[1]

किसी भी साहित्यिक रचना को उत्कृष्टता प्रदान करने के लिए आलोचनात्मक और समाजवादी यथार्थवाद का सहज समन्वय अत्यन्त अपेक्षित है। समाजवादी यथार्थवादी कला जब यथार्थ और कल्पना के साथ समन्वित होती है तो समाजवादी यथार्थवादी कला भी नवस्वच्छन्दतावादी कलात्मक दृष्टि का रूप ले लेती है। आलोचनात्मक तथा समाजवादी अथवा क्रांतिकारी यथार्थवाद के साथ जब स्वच्छन्दतावाद का समन्वय सक्रिय कल्पना के साथ होता है तो स्वच्छन्दतावाद का एक नवीन विकास होता है और स्वच्छन्दतावाद यथार्थ के मिलन से 'नवस्वच्छन्दतावाद' बन जाता है। "यथार्थ और कल्पना के माध्यम से सामाजिक अनुभूतियों की अभिव्यंजना के क्रम में स्वच्छन्दतावादी कला निश्चित रूप से स्वच्छन्दतावाद के नये आयाम नवस्वच्छन्दतावाद के साथ जुड़ जाती है।[2]

समाजवादी यथार्थवाद स्वच्छन्दतावाद का ही अंग है। स्वच्छन्दतावादी तत्त्व समाजवादी यथार्थवाद में प्रमुख है इसके बिना समाजवादी यथार्थवाद की कल्पना नहीं की जा सकती। अतः स्वच्छन्दतावाद और तत्पश्चात् स्वच्छन्दतावाद के नवीन विकास 'नवस्वच्छन्दतावाद' दोनों में ही यथार्थ विशेषकर समाजवादी यथार्थ या क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद प्रमुख प्रवृत्तियों के रूप में उभरता है।

मानववाद तथा नवमानववाद

मध्यकाल में मानव को कोई प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं थी। उस समय धार्मिक बाहुल्यता अधिक थी और इसी कारण तत्कालीन मूल्यों और प्रतिमानों का स्रोत कोई-न-कोई देवी-देवता थे अथवा ईश्वर था या कोई दिव्य शक्ति। मनुष्य को उससे नीचे समझा जाता था। मध्यकाल की इस विचारधारा को समाप्त किया मानववादी नवीन चिंतनधारा ने। मानववादी चिंतन प्रवाह ने मध्ययुगीन अनेक मान्यताओं एवं विचारों के प्रति विद्रोह कर मनुष्य की महत्ता का आकलन किया तथा मनुष्य की प्रतिष्ठा एवं पूर्णता पर अधिक जोर दिया। मानववाद के अनुसार मानव ही पृथ्वी पर सब कुछ है और वही सर्वोपरि भी है, उससे बढ़कर कोई नहीं। मानववाद की केंद्रीय भावना यह है कि पृथ्वी का मानव ही सब कुछ है और वह वस्तुओं का अन्तिम माप है। इस पृथ्वी पर मानव से बढ़कर कोई नहीं है।"[3] मानववाद मानव के कल्याण और मानवीय भावनाओं को महत्ता प्रदान कर मानव को श्रेष्ठ आसन पर प्रतिष्ठापित करता है। वस्तुतः मानववाद, देवतावाद, परलोकवाद के बदले मनुष्य केंद्रित, बुद्धिवादी, भौतिकवादी, विज्ञानवादी जीवन-दर्शन है, जो मानव कल्याण का झंडा फहराता है।"[4] विज्ञान एवं वैज्ञानिक आविष्कारों की सहायता से मनुष्य ने देवी-देवता और दिव्यशक्ति की सत्ता को अस्वीकारना प्रारम्भ कर दिया था। विज्ञान की सहायता से मनुष्य ने प्रकृति के रहस्यों को समझना प्रारम्भ कर दिया था। अतः मनुष्य ने असंख्य देवी-देवताओं की अज्ञात सत्ता की प्रभुता को छोड़कर अपनी शक्ति तथा

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 132
2. A. Ovcharenko : *Socialist Realism and Modern Literary Process, p. 160-161.*
3. *The Readers Companion to World Literature,* p. 219
4. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 134

सामर्थ्य पर विश्वास करना प्रारम्भ कर दिया था। जब से मानव ने प्रकृति के रहस्यों को समझना प्रारम्भ कर दिया तब से ही वह अधिक आत्मनिर्भर, स्वावलम्बी, आत्मविश्वासी हुआ तथा आस्था और विवेकसम्मत तर्क की प्रवृत्तियाँ उसमें पनपने लगीं। मानव ने अब अपने विवेक सम्मत तर्क से धार्मिक रूढ़ियों का विच्छेदन कर परम्परागत अन्यविश्वासों को तोड़ दिया फलस्वरूप उसमें नवीन जागृति और नूतनबोध चिंतन पनपना शुरू कर दिया था। "मानववाद एक ऐसा दृष्टिकोण है जो जीवन को दैवी-विधान से युक्त मानते हुए मानव-आचरण की एक नैतिक अवधारणा को स्वीकारता है तथा जिसने नैतिक एवं सामाजिक आदर्शवाद की उन महत्त्वपूर्ण मान्यताओं को समाहित कर लिया है जो उदार चिंतन के फलस्वरूप विकसित हुई है। मानववाद मानवीय सम्बन्धों में कल्याण की महत्ता एवं सम्भावनाओं के प्रति आग्रह करता है। इतना ही नहीं, मानववाद सम्पूर्ण मानव के कल्याण का दर्शन प्रस्तुत करता है।[1]

आधुनिक युग वैज्ञानिक युग है। आज विज्ञान ने इतनी प्रगति कर ली है कि मानव चिन्तन-क्रम ही परिवर्तित हो गया है। वैज्ञानिक प्रगति के कारण मानव व्यवहार, मानव जीवन-प्रणाली, सामाजिक व्यवस्था, राष्ट्रीय व्यवस्था, सांस्कृतिक गतिविधियाँ भी परिवर्तित हो गयी हैं। एक ओर समानता, स्वतंत्रता, विश्वबन्धुत्व का नारा बुलंद हुआ तो दूसरी ओर आर्थिक शोषण का विद्रोह हुआ, साथ ही, राजनीतिक अधिकारों की मांग से मानववाद की महत्ता मुखरित हुई है। इन सभी परिस्थितियों का सीधा प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। साहित्य में भी नूतनबोध और जागृति ने जन्म लिया। नवीन साहित्य-चेतना ने मानव-कल्याण की व्यंजना की तो साहित्य में भी मानववाद की महत्ता का स्वर मुखर हुआ। नवीन चिंतन के कारण साहित्य में नवीन प्रतिमानों तथा नवीन धारणाओं ने अपना विस्तार किया। सामाजिक मान्यताओं में परिवर्तन के कारण कला जगत् में भी सर्जनात्मक क्षेत्र में सृजन का विस्तार हुआ।

बदलते ऐतिहासिक तथा सामाजिक परिवेश के कारण हिन्दी साहित्य में मानववाद भी किंचित् अपने नये रूप में परिवर्तित हो गया। मानव का स्थान नवमानव ने ले लिया और साहित्य में अपनी विशिष्ट पहचान भी बनायी। हिन्दी के नवस्वच्छन्दतावादी साहित्य के विकास के साथ ही मानव नवमानव में विकसित हुआ। नवस्वच्छन्दतावादी साहित्य में मानव विशिष्ट मानव अर्थात् क्रिसान, मजदूर, पीड़ित शोषित एवं संघर्षरत मानव के रूप में अपनी विशिष्ट पहचान बनाता है। फलस्वरूप वह नवमानव के रूप में चित्रित तथा व्यंजित होता है जो अपनी विचारधारा तथा अपने क्रिया-कलापों को एक विशिष्ट व्यवस्थित रूप देना चाहता है। उसकी अपनी समस्याएँ होती हैं और उनके समाधान की दिशाएँ भी वही सुझाता है। यहाँ केवल मानव की प्रतिष्ठा ही व्यंजित नहीं होती अपितु विकसित मानव की कल्पना की गयी है और उसका अपना विशिष्ट चरित्र है। इस नवमानव के माध्यम से साहित्यकार अपने वैचारिक चिंतन में विकास को सुनिश्चित करते हुए समाज को एक नवीन रूप देना चाहता है, एक नवीन भविष्य की कल्पना करता है जिसका मूल क्रांति है और अपनी इस क्रांति के माध्यम से वह समाज को ही बदलना चाहता है। एक सम्पूर्ण परिवर्तन की चाह साहित्यकार की लेखनी से व्यंजित होती है, जिसका माध्यम एक विशिष्ट चरित्र, एक विशिष्ट मानव है। नवमानव-बोध के साथ ही समाजवादी चेतना एक विशिष्ट रूप धारण करती है और यथार्थवादी चेतना में परिवर्तित हो जाती है।

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 134

इसी नवीन चेतना के फलस्वरूप ही नव-मानव का रूप स्पष्ट होता है। सर्वहारा वर्ग की समस्याएं, उनकी सांस्कृतिक चेतना के अंकन के फलस्वरूप कथ्य में समाजवादी चेतना लोक परिवेश, लोक संस्कृति एवं लोक-चेतना को लोक गीतात्मक शैली में कवि ने नव-मानव की अनुभूतियों को चित्रित किया है।''[1] इस प्रकार नव-मानव की समस्याओं का अंकन नवीन साहित्य व काव्य के द्वारा हो रहा है। नवमानव समाजवादी वैचारिकता में विश्वास रखता है। वह मानववादी भी है और मानव-प्रेम तथा लघु-मानव प्रेम भी है। ऐतिहासिकता के महत्व तथा मनुष्य की प्रतिष्ठा को वह भली प्रकार समझता है। नव-मानव की वैचारिकता में मार्क्स तथा लेनिन की विचारधारा की प्रस्तुति है। नवमानव समाजवादी क्रांति का प्रेमी है। समाजवादी क्रांति के द्वारा वह जनवादी आन्दोलन को गतिशील करता है।''[2]

नवमानववाद मानवीय अनुभूतियों को यथार्थ के धरातल पर रखता है और नवीन भविष्य की कल्पना करता है। टाइप चरित्र का होने के कारण नव-मानस अपनी वैचारिकता और मानवीय इच्छाओं और मानव अनुभूतियों को प्रस्तुत करता है तथा अपनी विचारधाराओं के माध्यम से नवीन भविष्य की दिशा भी निर्धारित करता है।

ऐसी स्थिति में मानववाद की तरह नवमानववाद भी स्वच्छन्दतावाद के नवीन विकास के साथ एक प्रवृत्ति के रूप में दिखायी पड़ता है। मार्क्स के विचारों से भी मानववादी चिंतन में एक नया क्षितिज दिखाई पड़ता है। समाजवादी कला नवमानववादी चेतना की अभिव्यक्ति में सहायक बनती है।''[3]

इस प्रकार नवस्वच्छन्दतावाद और समाजवादी यथार्थवाद एवं क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद सक्रिय कल्पना के साथ मिलकर मानव का रूप ही परिवर्तित कर देता है। मानव को नव-मानव के रूप में अंकित कर वह नवस्वच्छन्दतावादी चेतना की विशेष प्रवृत्तियों को अधिक शक्ति, चेतना व जागृति प्रदान करता है।

मनोवैज्ञानिक धरातल

मानव जीवन के प्रत्येक पहलू से मनोविज्ञान का सम्बन्ध होता है। इसी प्रकार रोमांटिक कविता से भी मनोविज्ञान का प्रगाढ़ सम्बन्ध है। आज का कवि अत्यधिक मनोवैज्ञानिक हो गया है, जिसके कारण उसमें मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियाँ अधिक दृष्टिगोचर होती हैं। प्रत्येक साहित्यकार का अपना एक व्यक्तित्व होता है और अपने इसी व्यक्तित्व के अभिव्यक्तिकरण के लिए वह सर्जना करता है। साहित्यकार अपने अन्तः एवं बाह्य अन्तर्विरोधों को अपने व्यक्तित्व के माध्यम से अभिव्यंजित करता है। साहित्यकार की इस अभिव्यंजना में उसकी पूरी मानसिकता उभरती है। काव्य-प्रक्रिया में कवि की वैयक्तिक भूमिका के साथ-साथ सामाजिक चेतना का भी समन्वय होता है। मनोविज्ञान के अनुसार किसी भी कला या साहित्यिक कृति की उत्पत्ति कलाकार अथवा कवि की दमित प्रवृत्ति के कारण होती है। दमित प्रवृत्तियों का ज्ञान स्रष्टा को होता नहीं है क्योंकि इनमें से कुछ वर्णनीय तो कुछ गोपनीय होती है। Climate, Country तथा Environment के साथ-साथ दमित प्रवत्तियाँ भी

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 136
2. वही, पृ० 136
3. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 136

काव्य-सृजन का स्रोत है। इस प्रकार कवि का व्यक्तित्व, वातावरण, देश तथा उसकी सामाजिक चेतना सभी मिलकर काव्य-सृजन का कार्य करते हैं। व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके रूपों, गुणों, प्रवृत्तियों, सामर्थ्यों आदि का एक समन्वित रूप है, एक गतिशील समग्रता है, जो परिवेश के प्रभाव से निरन्तर परिवर्तित होती रहती है, यह व्यक्ति और परिवेश की परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया का परिणाम है, व्यक्तित्व 'व्यक्ति के व्यवहार का समग्र गुण है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि व्यक्ति के व्यवहारों, रूपों, रुचियों, सामर्थ्यों आदि बाह्य एवं अन्तः लक्षणों के प्रतिमानों का संकलित समग्र रूप है, जो कि परिवेश में उसके विशिष्ट व्यवहार में प्रकट होता है।''[1]

व्यक्तित्व की व्याख्या के क्रम में **फ्रायड** का अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान है। **फ्रायड** व्यक्तित्व की व्याख्या करते हुए मानव व्यक्तित्व के तीन तत्वों का उल्लेख करता है- प्रथम इदं, द्वितीय इगो तथा तृतीय सुपर इगो।

इदम् (ID)

इदं में मानव की मूल प्रवृत्तियाँ, अतृप्त इच्छाएँ, दमित अनुभूतियाँ रहती हैं। यह मानव की प्रेरक शक्तियाँ हैं जो परिवेश के सम्पर्क में नहीं आती हैं। भूख, प्यास तथा मनुष्य की काम इच्छाएं भी इदं में निवास करती हैं। मानव की यह मूल प्रवृत्तियाँ सुषुप्तावस्था में सदैव ही विद्यमान रहती हैं किन्तु अनुकूल अवसर हाथ आते ही यह सक्रिय हो जाती हैं। यह मूल प्रवृत्तियाँ बड़ी ही शक्तिमान रूप में मानव व्यक्तित्व में 'इदम' के रूप में विद्यमान रहती हैं। यह मूल प्रवृत्तियाँ मनुष्य की इच्छा तथा सुख से डोमिनेट भी होती हैं। **फ्रायड** ने इदं को सुखोन्मुख केवल प्रारम्भ में ही माना था किन्तु बाद में वह मृत्यु सम्बद्ध प्रवृत्तियों का अस्तित्व भी इदं में स्वीकारता है। इस प्रकार **फ्रायड** ने इदम् को जीवन तथा मृत्यु सम्बद्ध प्रवृत्तियों का भण्डार कहा है। इदम् मानव में इच्छा उत्पन्न करता है तथा काम भावना को उत्तेजित करता है। इदं में अधिकतर बचपन की दमित इच्छाएँ सुसुप्तावस्था में रहती हैं जो इच्छाओं का रूप धारण कर परिवेश की ओर उन्मुख होकर मानव के चेतन-जीवन को प्रभावित करती हैं। इदम् सुख के नियम से संचालित होता है। इदम् सामाजिक गठन तथा सामाजिक मूल्यों की तनिक भी परवाह नहीं करता है। अपनी इच्छाओं की पूर्ति तथा सुख की प्राप्ति की कामना पर इदम् का शासन चलता है। इदम् में मानव की जन्मजात इच्छाएँ विद्यमान रहती हैं। यह इच्छाएँ नैसर्गिक तथा शारीरिक होती हैं, जो कभी समय से पूर्व भी सक्रिय हो जाती हैं। यह सभी इच्छाएँ स्वाभाविक रूप से अचेतन रूप में स्वमेव उत्तेजित हो जाती हैं। इदम् में बचपन की दमित इच्छाएँ रहती हैं किन्तु यह अचेतन में चली जाती हैं। इदम् में अधिकतर कामुक इच्छाएं निवास करती हैं। यह काम शक्ति मानव की प्रेरणा शक्ति भी है, जिसे **फ्रायड** ने लिबिडो के नाम से अभिहित किया है। **फ्रायड** ने **लिबिडो** को मानव-व्यक्तित्व की प्रेरक-शक्ति माना है। मानव की समस्त मूल प्रवृत्तियाँ, उसकी मूल भावना या चेतना से जुड़ी होती हैं। यह प्रत्येक प्राणी में होती हैं किसी में कम किसी में अधिक। मनुष्य की मूल प्रवृत्तियाँ नैसर्गिक होती हैं और मनुष्य स्वतः ही उनसे प्रेरित होता है। यह मनुष्य की शाश्वत प्रवृत्तियाँ मनुष्य के कला एवं साहित्यिक विकास में भी अपना योगदान रखती हैं।

अहं (EGO)

मानव व्यक्तित्व का वह तत्त्व जो मनुष्य के बाह्य जगत की वास्तविकताओं के सम्पर्क में रहता

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 136

है इगो कहलाता है। बाह्य परिवेश से 'अहं' का सम्पर्क इन्द्रिय मार्ग से होता है। यह वास्तविकता की माँग के नियम से संचालित होता है। इसी कारण इगो, समझ, ज्ञान, अनुभव, सीखना तथा सोचना-समझना आदि के कार्य करता है। मानव का अहं उसके परिवेश से प्रभावित रहता है। अहं में कुछ अंश चेतन तथा कुछ अंश अचेतन विद्यमान रहता है। जब अहं चेतन की स्थिति में रहता है तो वह परिवेश के सम्पर्क में रहता है और जब वह अचेतन स्थिति में रहता है तो 'इदं' के सम्पर्क में रहता है 'अहं वास्तविकता की माँग' तथा 'सुख के नियम' के मध्य मध्यस्थता करता है; वास्तविकता का पक्षपाती होने के कारण 'अहं' Id Impulses को हमेशा संतुष्ट नहीं करता है वरन् वह इदं की इच्छाओं को चकनाचूर भी कर देता है। इस प्रकार अहं को Id Impulses पर Watchdog या Censor कहा जाता है। **फ्रायड** के अनुसार अहं जगत में इदं की मध्यस्थता करने का, इदं द्वारा जगत् की मांगों को पूरा करने का, पाशविक क्रियाओं द्वारा जंगत् में इदं की इच्छाओं से अनुकूलन करने का प्रयास करता है।"[1]

अति अहं (Super Ego)

मानव व्यक्तित्व की चेतनावस्था का दूसरा नाम अति अहं है। अति अहं मानव की चेतना है। यह नैतिकता प्रिय है। अति अहं मानव को सही समय पर सचेत करता है तथा बुरे कार्यों पर तुरन्त रोक लगाता है। यह बचपन से ही मानव-व्यक्तित्व में विद्यमान रहता है। यह मानव व्यक्तित्व का नैतिक पक्ष है जिसका विकास इदं तथा इगो के बाद होता है। यह मानव के नैतिक स्तर पर नैतिक मूल्यों के प्रति अत्यन्त ही सचेत रहता है। यह मानव व्यक्तित्व के परिवेश नैतिक आदर्शों को व्यक्त करता है तथा मनुष्य के धर्म तथा संस्कृति सम्बन्धी नैतिक मूल्यों की रक्षा करता है। अति अहं मनुष्य की दमित मूल प्रवृत्तियों पर रोक लगाता है। सुपर इगो के प्रधान कार्य इस प्रकार हैं- (1) इदं के कामुक तथा आक्रामक आवेगों का अवरोध करना, (2) इगो को यथार्थ-लक्ष्यों के स्थान पर नैतिक लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर ले जाना तथा (3) पूर्णता की प्राप्ति हेतु प्रयास करना।"[2]

इदं तथा अति अहम् तर्क का सहारा न लेकर केवल भूतकाल के व्यवहारों पर निर्भर रहते हैं। अति अहं नैतिक आदर्श के नियम से संचालित होता है। इदं सुख के नियम से प्रभावित होता है। अति अहं की भाँति अहं भी मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों पर रोक लगाता है किन्तु अहं द्वारा लगाई रोक स्थायी होती है। इदं, अहं तथा अति अहं के मध्य गतिशीलता संचालित होती है तथा इनमें आपसी अन्तर्द्वन्द्व भी मचा रहता है क्योंकि अहं एक ओर तो इदं को संतुष्ट रखना चाहता है और दूसरी ओर ठीक इसी समय वह अति अहं को भी संतुष्ट रखना चाहता है, जिससे इनमें आपस में संघर्ष मचा रहता है। तीनों की एक ही संगठित इकाई है। इस प्रकार इदं, इगो, तथा सुपर इगो एक ही रंग के तीन शैड के समान हैं।"[3]

मनुष्य की समस्त मूल प्रवृत्तियाँ कला एवं साहित्य को भी प्रेरित करती हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि मनुष्य की दमित शक्तियाँ ही उसकी सृजनात्मक प्रेरणा है। 'इदं' में स्थित मूल प्रवृत्तियाँ उत्तेजना उत्पन्न करती हैं, जिससे व्यक्ति के मन में रोमांटिक वृत्ति उभरती है और इन क्षणों

1. Sigmund Freud : *The Ego and the Id (1952), p. 83*
2. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 148
3. वही, पृ ०149

में वह रोमांटिक साहित्य सृजित करता है। जब वह इसमें उत्कर्षता की ओर अग्रसर होता है तो तुरन्त ही इगो का उसके ऊपर सेंसर लगना प्रारम्भ हो जाता है। 'इदं' का इन्द्रियों के माध्यम से बाह्य परिवेश से सम्पर्क होता है और वह 'वास्तविकता की माँग' से संचरित हो 'अहम्' पर अंकुश लगाता है। वह अपनी समझ, अनुभव, ज्ञान सभी को इस कार्य में लगाता है। ठीक इसी क्षण कवि मन में क्लासिक वृत्ति की भाव-योजना तैयार होती है और वह क्लासिकल साहित्य की सर्जना करने लगता है और क्लासिकल साहित्य की सर्जना में जब उसे उत्कृष्टता प्राप्त होती है तो सुपर इगो अपना कार्य शुरू करता है। तब सुपर इगो का अंकुश लगना प्रारम्भ हो जाता है। यह कवि को सही समय पर सचेत करता है तथा अनैतिकता पर तुरन्त रोक लगाता है। इसी समय सुपर इगो इदं के कामुक तथा आक्रामक आवेगों को अवरोधित करते हुए इगो के यथार्थ लक्ष्यों के स्थान पर नैतिक लक्ष्यों को प्राप्त करते हुए, पूर्णता की प्राप्ति हेतु प्रयास करता है। इगो, इद तथा सुपर इगो के मध्य मध्यस्थता करता है। फलस्वरूप काव्य में यथार्थवादी चेतना भी उभरने लगती है। इस प्रकार अंशतः रोमांटिक और अंशतः यथार्थवादी चेतना के समन्वय से 'नवस्वच्छन्दतावादी काव्य' की सर्जना होती है। कोई भी महान् कवि सर्जन के क्षण इन्हीं क्रमागत गतियों के अनुरूप अपनी वृत्तियों को प्रस्तुत करता है क्योंकि मानव व्यक्तित्व में साहित्य की ये शाश्वत प्रवृत्तियाँ सदैव विद्यमान रहती हैं। समय-समय पर उसकी अभिव्यंजना कवि मन तथा कवि व्यक्तित्व के द्वारा होती है। इस काम में जो कवि जितना पटु होगा उसकी सर्जन उतनी ही उत्कृष्ट होगी।[1]

कविता चेतन तथा अचेतन मन की भावनात्मक अभिव्यक्ति है, जिसमें कवि की पूरी मानसिकता के दर्शन होते हैं। साहित्यकार अपनी कृति में अपनी वैयक्तिक चेतन के साथ-साथ सामूहिक अचेतन की प्रस्तुति करता है। अचेतन मानवी प्रकृति की आन्तरिक धारा है इसलिए अचेतन की शक्ति व्यक्तिगत होते हुए भी वह बाह्यगत और समाजगत होती है।[2]

फ्रायड ने मानव व्यक्तित्व में अचेतन प्रक्रियाओं के महत्त्व को स्वीकार किया है। **फ्रायड** ने माना है कि समस्त मानसिक जीवन अचेतन शक्ति से संचालित होता है। अचेतन असीमित अतृप्त प्रेरकों का भण्डार होता है और अचेतन में ही बचपन की समस्त नैसर्गिक शाश्वत दमित यौन इच्छाएँ स्थित हैं और वहीं से अपनी अभिव्यक्ति के लिए अनुकूल अवसर ढूँढ़ा करती हैं। मनुष्य की ये मूल प्रवृत्तियाँ उसकी प्रेरक शक्ति हैं। **फ्रायड** ने इस काम शक्ति को लिबिडो की संज्ञा दी है। किसी भी सर्जना में कवि के केवल व्यक्तित्व की ही स्पष्ट झलक नहीं दृष्टिगोचर होती है वरन् उसकी मानसिकता के भी दर्शन होते हैं। इस प्रकार व्यक्तित्व के साथ-साथ मानसिक प्रक्रिया भी उत्कृष्ट सर्जना में सहायक है। कवि मस्तिष्क में मानसिक व्यापार कार्य होने के कारण ही विचार भी उद्वेलित होते हैं, जिसके फलस्वरूप सृजन कार्य होता है। **फ्रायड** ने सृजन कार्य के लिए चेतन-अचेतन प्रक्रियाओं को बड़ा महत्त्वपूर्ण माना है। **फ्रायड** ने भी मानसिक प्रक्रियाओं को तीन भागों में विभक्त किया है **चेतन, अर्द्धचेतन**, तथा **अचेतन**।

चेतन

चेतन हमारी त्वरित चेतना का नाम है। इसे ध्यान का क्षेत्र भी कहा जाता है। जो भी कुछ हम स्पष्ट और पृथक् रूप से देखते हैं पूरे ध्यान के साथ यही 'चेतन' कहलाता है। इसमें केंद्रीय चेतना की स्पष्टता के कारण मानसिक व्यापार को गति मिलती है।

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 149
2. वही, पृ 145

अर्द्धचेतन

यह हमारे अनुभव का क्षेत्र है जो हमारी तुरन्त जानकारी में नहीं है या जो इस समय चैतन्य नहीं है यद्यपि यह किसी भी समय चैतन्यावस्था को प्राप्त कर सकते हैं। अर्द्धचेतन मस्तिष्क का एक सबसे बड़ा तथा महत्त्वपूर्ण कार्य यह है कि वह उन भावों और विचारों को दबाता है या उनके गुण दोषों को जाँचता है, जो सामाजिक दृष्टि से अस्वीकृत, प्रतिबन्धित अथवा अशोभनीय हैं। कभी-कभी अर्द्धचेतन मस्तिष्क, चेतन मस्तिष्क के उन विचारों तथा भावनाओं को दबाता है, जो असंगत तथा कुछ हद तक अस्वीकृत हैं। इस प्रकार अर्द्धचेतन मस्तिष्क केवल हमारी अर्द्ध चेतना ही नहीं है अपितु वह सामाजिक दृष्टि से असंगत, अस्वीकृत तथा प्रतिबन्धित विचारों पर एक 'सेंसर' भी है।

अचेतन

अचेतन मानसिक प्रक्रिया की वह स्थिति है, जिसके बारे में हमें कुछ जानकारी नहीं होती है। अचेतन वह स्थिति है जो न तो हमारी चेतना में है और न ही अर्द्धचेतना में। यह मानवी प्रकृति की आन्तरिक धारा है। इसकी कोई प्रत्यक्ष चेतना नहीं होती वरन् स्वप्न तथा सम्मोहन आदि अवस्थाओं के द्वारा व्यक्त होती है। अचेतन को हम अतीत के अनुभव और संस्कारों का भण्डार कह सकते हैं। अचेतन में हमारी समस्त नैसर्गिक इच्छाएँ तथा अभिलाषाएँ निवास करती हैं। भूख, प्यास तथा यौन इच्छाओं का निवास स्थान अचेतन ही है, जो अपनी अभिव्यक्ति के अवसर की तलाश में सदैव तैयार रहती है। हमारी समस्त इच्छाएँ सदैव के लिए अचेतन में दमित नहीं होतीं वरन् वह किसी न किसी रूप में जैसे-मानसिक रोगों, स्वप्नों तथा दिन-प्रतिदिन की भूलों के रूप में व्यक्त होती ही रहती हैं।अचेतन वह आध्यात्मिक भूमिका है, जहाँ से चेतना और अहं भावना आविर्भूत होती है। इसका अपना एक व्यक्तित्व होता है या इसे सर्जनात्मक विचारों का उद्‌गम भी माना गया है।''[1] अवचेतन के धरातल पर हमारा जीवन निजी होता है। चेतना के धरातल पर हम जातीय जीवन के स्रोत-मिथक आदि से जुड़ते हैं। सृजन-प्रक्रिया का रहस्य निजी जीवन के आवेग का जातीय जीवन के मिथक आदि में जुड़ने में निहित है।''[2]

मस्तिष्क का एक बहुत बड़ा भाग अचेतन तथा शेष चेतन है। वस्तुतः अचेतन 'इदम्' की मूल तथा प्रेरणात्मक प्रवृत्तियों में भी विषयबद्ध है, जिसकी प्रत्यक्ष अभिव्यंजना सामाजिक सृष्टि से असंगत तथा अस्वीकृत है। यह सभी अस्वीकृत नैसर्गिक इच्छाएँ तथा भावनाएँ मस्तिष्क की एक विशेष प्रक्रिया 'दमन' द्वारा अचेतन मस्तिष्क के किसी कोने में दबा दी जाती है ताकि समय आने पर कुंठा से बचने के लिए इनकी अभिव्यंजना हो सके। इस सम्पूर्ण प्रक्रिया को फ्रायड ने 'डिफेन्स मेकानिज़्म' नाम दिया है।

मन की गतिशीलता तथा परिवेश के प्रति परिवर्तनशीलता के कारण, मानसिक शक्तियों और क्रियाओं में परिवेश के प्रति क्रिया-प्रतिक्रिया होती रहती है, जिसके कारण मानसिक शक्तियों तथा क्रियाओं का बराबर विकास होता रहता है। दूसरी ओर मानव व्यक्तित्व में इदं, इगो तथा सुपर इगो भी परिवेश में विकसित तथा संचालित होते हैं। मन के चेतन और अचेतन की क्रियाओं की सीमाओं के कठोर न होने के कारण इनमें क्रिया-प्रतिक्रिया भी होती रहती है। इस प्रकार मन एक चेतन-अचेतन

1. Dr. Satya Prakash Singh : *Sri Aurbindo and Jung*, P. 28
2. डॉ० विजयेन्द्र नारायण सिंह : *काव्यालोचन की समस्याएँ,* पृ० 18-19

गति संयुक्त पूर्ण है। वस्तुतः चेतन-अचेतन की गत्यात्मकता से पूर्ण है, इसलिए कवि या लेखक सर्जन करते समय अपने पूर्ण मस्तिष्क से साधनारत होते हैं। ऐसी स्थिति में कवि की सर्जना में कवि चेतन-अचेतन का समन्वित रूप दिखायी देता है।[1]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि सृजनात्मक कार्यों में चेतन मस्तिष्क का तो योगदान है ही किन्तु अचेतन का योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अचेतन को सृजनात्मक विचारों का उद्‌गम माना गया है। अचेतन मानव व्यक्तित्व की दमित इच्छाओं का भण्डार है साथ ही जिस भी वस्तु या घटना का साक्षात्कार मानव से होता भी है मानव के अचेतन में ही दमित हो जाती है। अनुकूल अवसर या उसी प्रकार की किसी अन्य घटना के सामने आते ही वह घटना जो अचेतन में दमित कर दी गई थी पुनः स्मृति पटल पर अंकित हो जाती है। अचेतन की दमित इच्छाओं को कलाकार की प्रेरणा शक्ति कहा जाता है। काव्य-सृजन में अचेतन अपना योगदान एक विशेष प्रक्रिया द्वारा देता है। किसी कवि या साहित्यकार का जब किसी प्राकृत वस्तु अथवा घटना से सम्पर्क होता है तो वह घटना कवि या साहित्यकार को बरबस ही अपनी ओर आकृष्ट करती है। कवि या साहित्यकार की उस घटना या प्राकृत वस्तु की प्रत्यक्षानुभूति होती है किन्तु प्रत्यक्षानुभूति के समय काव्यानुभूति नहीं हो सकती। प्रत्यक्षानुभूति कवि मन की चैतन्यता है। वह घटन्ष-विशेष अथवा वस्तु या प्रत्यक्षानुभूति अचेतन मन में कही सुषुप्तावस्था में विद्यमान रहती है। जब कवि फुरसत के क्षणों में होता है या उससे मिलती जुलती पुनः प्रत्यक्षानुभूति होती है तो वह घटना या वस्तु अचेतन से निकलकर अर्द्धचेतन फिर चेतन मस्तिष्क में स्मृतिपटल पर अंकित होने लगती है। घटना के स्मृति पटल पर अंकित होते ही 'कल्पना' अपना कार्य करने लगती है। फलतः मानसिक व्यापार कार्य प्रारम्भ होता है। मन में विभिन्न प्रकार के भाव प्रवाह तथा आवेग घात-प्रतिघात करने लगते हैं। अनुकूल भावनाओं के सम्पर्क में आकर 'कल्पना' को बल मिलने लगता है। इस बिन्दु पर कवि की मानसिकता तो उभरती ही है, साथ ही कवि व्यक्तित्व भी अपना कार्य करने लगता है।

इदम्, अहं तथा अति अहं भी सृजन कार्य में अपनी भागीदारी निभाते हैं। कवि की वैयक्तिक चेतना में सामाजिक-चेतना का भी समावेश होता है। सामाजिक दृष्टि से अस्वीकृत, असंगत भावों को तिरस्कृत कर उत्कृष्ट भावनाओं का प्रयोग कवि अपनी सर्जना में करता है। फलस्वरूप उत्कृष्ट काव्य का जन्म होता है। इस प्रकार के काव्य की सर्जना में कवि वैयक्तिक अनुभूति एवं चेतना के साथ-साथ समाजवादी यथार्थवादी चेतना का भी सहारा लेता है और एक उत्कृष्ट काव्य की सर्जना करता है जो रोमांटिक एवं यथार्थ का संयुक्त रूप होता है, जो स्वच्छन्दतावाद के नवीन विकास के रूप में नवस्वच्छन्दतावाद के नाम से सम्बोधित है। अतः कवि की कोई भी रचना अकस्मात् घटना नहीं होती उसके पीछे पर्याप्त नियामक कारण होते हैं किन्तु सभी कुछ इतना सहज और स्वाभाविक होता है कि कवि मन को इसका तनिक भी आभास नहीं होता और यह स्वतः ही बिना किसी परिश्रम के अपनी अभिव्यंजना को असली जामा प्रदान करता जाता है।

युंग ने अचेतन को दो भागों में विभक्त किया है- वैयक्तिक अचेतन तथा सामूहिक अचेतन है।"[2]

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 150
2. Puth L. Munro : *School of Psychoanalytic thought* P. 563

वह सभी दमित भावनाएँ जो अचेतन में निवास करती हैं मानव व्यक्तित्व का वैयक्तिक अचेतन कहलाता है। इसमें जो मूल प्रवृत्तियाँ निवास करती हैं वे अधिकतर कामुक होती हैं। प्रत्येक मानव में एक 'सॉट इमेज' होती है। यह पुरुषों में **एनीमा** तथा स्त्रियों में **एनीमस** के नाम से जानी जाती है। **युंग** के अनुसार एनीमस के कारण ही स्त्री-पुरुष एक दूसरे की ओर आकृष्ट होते हैं। मानव व्यक्तित्व की यह सॉट इमेज ही वास्तव में अचेतन का प्रतिनिधित्व करती है और उच्चतम वैयक्तिक सर्जना कहलाती है। यह वैयक्तिक मानव अनुभूतियों को अभिव्यंजित करती है। दूसरे शब्दों में यही मानव व्यक्तित्व का वैयक्तिक अचेतन है। युंग ने 'पर्सोना' या 'इगो' को सामाजिक स्थितियों से प्राप्त ज्ञान कहा है, यह मानव की सामाजिक चेतना है। इस प्रकार युंग अचेतन के द्वारा वैयक्तिक और सामाजिकता दोनों तत्त्वों की उपस्थिति मानव व्यक्तित्व में स्वीकार करता है। फलतः सर्जन के क्षण कोई भी कवि इन तत्त्वों को अपनी चेतना में लाये बिना नहीं रह सकता। यह उसकी स्वाभाविकता है, सहजता है।"[1]

युंग ने अपने सैद्धान्तिक विश्लेषण में स्वप्न-विश्लेषण तथा प्रतीक-निर्माण की व्याख्या की है। स्वप्न-विश्लेषण और सामूहिक अचेतन की व्याख्या करते समय **युंग** ने सामाजिक चेतना के रूप में मानवीय मूल प्रवृत्तियाँ, आद्य-बिम्ब, प्रतीक, मिथक एवं फैंटेसी का विश्लेषण किया है। मानव वृत्तियाँ तथा सामाजिक चेतना के घटक मिलकर सामाजिक जीवन-मूल्यों को अपने ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

मानव वृत्तियाँ मूल भावना से जुड़ी नैसर्गिक और शाश्वत प्रवृत्तियाँ हैं इनसे प्रेरित होकर मानव स्वयं उनकी ओर आकृष्ट होता है। यह समस्त प्राणियों में होती है अधिक या कम किसी भी मात्रा में। इन मूल प्रवृत्तियों को मानवीय चरित्र धर्म, सामाजिक रीति-रिवाज, कला तथा साहित्य की दुनियाँ में प्रमुख स्थान प्राप्त होता है। वह मूल प्रवृत्तियाँ मानव की 'प्रेरणा-स्रोत' हैं।

युंग के अनुसार आद्य-बिम्ब सामूहिक अचेतन के अंश हैं। यह मनुष्य की आत्मिक शक्ति का एक उच्चतम मूल्य है। आद्य-बिम्ब अचेतन मस्तिष्क की सम्पत्ति है। इन पर चेतन मस्तिष्क का कोई नियंत्रण नहीं होता है। इस कारण ये स्वचालित होते हैं जो चेतन मस्तिष्क में स्वप्न, फैंटेसी अथवा 'कल्पना' के द्वारा लाये जाते हैं। आद्य-बिम्ब अचेतन का आध्यात्मिक रूप है। यह देवी देवताओं के रूप में दिखायी पड़ते हैं। जब बिम्ब सचेतन का आध्यात्मिक रूप लिये होता है तो मूल वृत्तियाँ इसका शारीरिक रूप होती है। **युंग** के अनुसार आद्यबिम्ब मनुष्य की आत्मिक शक्ति के उच्चतम मूल्यों में से एक है।"[2]

फैंटेसी मानव मस्तिष्क की काल्पनिक क्रिया है। यह आत्मिक तथा काम भावना दोनों से उद्‌बुद्ध होती है किन्तु मूलरूप से यह आत्मिक भावना से प्रसूत होती है। 'कल्पनात्मक अनुभूति की काव्यात्मक अभिव्यंजना 'फैंटेसी' है।"[3]

युंग ने फैंटेसी को दो भागों में **निष्क्रिय** तथा **सक्रिय फैंटेसी** में विभाजित किया है।

निष्क्रिय फैंटेसी अचेतन मस्तिष्क की उपज है जो स्वचालित है और बिना पूर्व संकेत के इसका

1. Ibid, P. 562
2. Dr. Satya Prakash Singh : *Sri Aurbindo and Jung*, P. 53
3. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद*, पृ० 153

संचालन होता है। निष्क्रिय फैंटेसी का निर्माण अचेतन मस्तिष्क में स्वतः होता है। चेतन-मस्तिष्क इनमें कोई योग नहीं देता है। निष्क्रिय फैंटेसी को मन का एक सहज काल्पनिक प्रवाह कहा जाता है, जिसका अंकन कवि मन के लिए बड़ा ही सरल व सहज है। "ऐसी रचना युग-सापेक्षता की उत्कृष्टता को स्पष्ट नहीं कर पाती।"[1]

इसके विपरीत **सक्रिय फैंटेसी** चेतना का अंश है। इसमें आत्मिक चेतना मुख्य है। सक्रिय फैंटेसी आदिम होती है। **युंग** ने सक्रिय फैंटेसी को मूल प्रवृत्तियों के रूप में भी देखा है। **युंग** के अनुसार सक्रिय फैंटेसी कल्पनात्मक मानसिकता का एक सैद्धान्तिक तत्व है, जिसमें वैयक्तिकता के अतिरिक्त उपयोगिता का योग है क्योंकि यह सर्जना करती है। सक्रिय फैंटेसी का निर्माण संकेतों तथा प्रतीकों द्वारा होता है। **युंग** ने सक्रिय फैंटेसी को सकारात्मक चेतना का अंश कहते हुए 'इन्स्टीटीव' कहा है, जिसे उसने प्रतिपादित किया है कि यह सीधे अचेतन भाव की अनुभूति एवं दृष्टिकोणात्मक प्रवृत्ति है। इस संयोग के फलस्वरूप लिबिडो अचेतन से शीघ्र ही चेतन स्तर पर आकर निश्चित तरीके संचेतन मस्तिष्क से जुड़ता है। वस्तुतः सक्रिय फैंटेसी पूर्ण व्यक्तित्व की रचनात्मक अभिव्यंजना है तथा व्यक्ति संगठन की उदात्त अभिव्यक्ति है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि सक्रिय फैंटेसी पूर्णतः सर्जनात्मक अभिव्यंजना है।"[2]

फैंटेसी की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के पीछे भाषा का मुख्य हाथ तथा निरन्तर अगाध साधना शक्ति है। भाषा ही फैंटेसी की काट-छाँट करती है तथा फैंटेसी भाषा को समृद्धशाली तथा सम्पन्न बनाती है। "कवि की यह फैंटेसी भाषा को समृद्ध बना देती है, उसमें नये अर्थ अनुषंग भर देती है। शब्द को नये चित्र प्रदान करती है। इस प्रकार कवि भाषा का निर्माण करता है, विकास करता है, वह निःसन्देह महान् कवि है।"[3]

इस प्रकार फैंटेसी की मूल-चेतना को फैलाने का कार्य भाषा परम्परागत ढंग से करती है तथा फैंटेसी भाषा में संशोधन भी करती जाती है। कवि के अन्तः में इस स्थिति में भाषा एवं भाव के मध्य द्वन्द्व मचा रहता है। द्वन्द्व की अभिव्यक्ति के लिए भाषा के ऊपर दबाव पड़ता है, जिससे शब्दों तथा मुहावरों में नयी अर्थवत्ता, अर्थभाव तथा नवीन अभिव्यक्ति की अभिव्यंजना होती है।

सामूहिक अचेतन के रूप में संस्कृति भी लोक-चेतना, लोव-परिवेश तथा लोक-संस्कृति को अपने वैयक्तिक अचेतन के साथ जोड़ती है। आदान-प्रदान की क्रिया से संस्कृति का विकास होता है "वस्तुतः संस्कृति आदान-प्रदान के सहारे अपने को जीवित रखती है क्योंकि संस्कृति में जो कुछ विकास या प्रगति है वह मनोवैज्ञानिक स्तर पर चेतना का विस्तार है।"[4]

मानव ही संस्कृति का निर्माण करता है। संस्कृति मानव की ऊर्जा-शक्ति है, जिसमें मानवीय गतिविधियों का इतिहास होता है। इस बिन्दु पर संस्कृति में मानववाद तथा नवमानववाद का प्रतिरूप दिखाई देता है। संस्कृति वैयक्तिकता आन्तरिकता तथा बाह्य सामाजिकता दोनों को दर्शाती है। संस्कृति

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 153
2. वही पृ० 154
3. गजानन माधव मुक्तिबोध : *एक साहित्यिक की डायरी,* पृ० 27
4. Dr. Satya Prakash Singh : *Sri Aurbindo and Jung*, P. 57

अचेतन क्रिया-कलाप की अभिव्यक्ति है, अतः इसकी मूल चेतना मनोवैज्ञानिक एवं आन्तरिक है। इसलिए इसकी पहचान रोमांटिक है। युंगीय मनोविज्ञान के क्रम में अचेतन वैयक्तिकता तथा सामूहिकता का विस्तार है। इसी सामूहिक अचेतन के क्रम में आदिम वृत्तियाँ, आद्यबिम्ब, फैंटेसी, प्रतीक एवं मिथक की अभिव्यंजना सहज स्वाभाविक तथा मनोवैज्ञानिक धरातल पर होती है।"[1]

लोक-साहित्य में कवि की चेतना-विस्तार का प्रमुख योग है। लोक-साहित्य में जन-चेतना व लोक-मानस की स्वाभाविकता की प्रधानता विद्यमान रहती है। अतः लोक-मानस की अभिव्यक्ति ही लोक-साहित्य कहलाती है। साहित्यिक अभिव्यंजना लोक-साहित्य के द्वारा ही उत्कृष्ट साहित्य में मिथकीय अभिव्यंजना बनती है क्योंकि लोक-साहित्य अत्यन्त मनोवैज्ञानिक तथा मानवीय होता है। अतः इसकी भाषा में सहजता, स्वाभाविकता, आकर्षण तथा मनोहरता दृष्टिगोचर होती है। इस कारण "लोक साहित्य की मूल चेतना रोमांटिक होती है। लोक-साहित्य का सम्बन्ध सीधे लोक-भाव से जुड़ा हुआ होता है। भारतीय साहित्य का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाव लोक साहित्य पर आधारित है। लोक साहित्य की आधारशिला लोक-मानस है। इसलिए लोक-संस्कृति में लोक-चेतना की अभिव्यंजना होती है। लोक-संस्कृति का अभिप्राय जीवन की संस्कृति से हैं।"[2] लोक हमारे जीवन का समुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। यह राष्ट्र का अमर स्वरूप है।"[3]

लोक-साहित्य की अभिव्यक्ति में राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यक्ति मिलती है। लोक-संस्कृति, लोक-गीत, लोक-नृत्य तथा लोक-कला की ओर आकृष्ट होना, उनका पुनर्मूल्यांकन, उसके जीवित तत्वों से प्रेरणा लेना राष्ट्रीय चेतना का ही परिचायक है। लोक-साहित्य में मनुष्य की मूल भावना बोलती है। समस्त लोक-साहित्य विशेषतया लोक-गीतों में उस देश की आत्मा बोलती है।"[4]

लोक-गीत किसी संस्कृति के, मुँह बोलते चित्र हैं।"[5] अतः लोक-गीत के माध्यम से लोक-संस्कृति प्रतिबिम्बित होती है। लोकगीत का प्रधान गुण सहजता एवं स्वाभाविकता होता है। परिवेशगत चित्रण के साथ-साथ लोक-गीत की शैली सहज तथा स्वच्छन्द होती है, यह किसी बन्धन में नहीं बँधा होता है। इसी कारण उन्मुक्त वातावरण लोक-गीतों के लिए आवश्यक है। जो प्रगीत सामूहिक चेतना और लोक-भावना पर आधारित होते हैं वह छन्द आदि की रूढ़िगत परम्परा को साथ लेकर नहीं चल सकते।

नवस्वच्छन्दतावादी चेतना, लोक-चेतना का विस्तार है। अतः नवस्वच्छन्दतावाद के विकास में लोक-जीवन, लोक-परिवेश, लोक-संस्कृति तथा लोक गीतात्मकता का प्रमुख हाथ है। अतः लोक-संस्कृति एवं लोक-गीतात्मकता हिन्दी कविता के नवस्वच्छन्दतावादी प्रवाह में विकसित होते हैं। लोक-गीतों की लयात्मकता, गरीबों को तिरस्कृत नहीं कर सकती। लोक-साहित्य अज्ञान एवं तुच्छता के ऊपर बल नहीं देता बल्कि सर्वातिशायी, आध्यात्मिक एवं शारीरिक स्वस्थता, बुद्धिमत्ता, दक्षता और आत्मा की उदात्तता के ऊपर बल देता है। इस तरह नवस्वच्छन्दतावादी साहित्यकार लोक-साहित्य में लोक

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 157
2. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 158
3. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, : *लोक-संस्कृति विशेषांक, सम्मेलन पत्रिका,* पृ० 65
4. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 159
5. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, : *आजकल, नवम्बर* 1951

संस्कृति एवं लोक-परिवेश की अभिव्यंजना लोकगीतात्मक रूप में प्रस्तुत करता है।

प्रेम तथा सौन्दर्य

'प्रेम' की व्याख्या अत्यन्त जटिल कार्य है क्योंकि इसके स्वरूप व अर्थ की व्याख्या के लिए शब्दों का सहारा नहीं लिया जा सकता है। प्रेम एक प्रकार की अनुभूति है, जिसे केवल अनुभव किया जा सकता है। प्रेम मूलतः अज्ञात तथा अजेय होता है। किन्तु प्रेम को जन्म देनेवाली परिस्थितियाँ मनोवैज्ञानिक होती हैं। यह मनुष्य की मूल चेतना तथा जन्मजात प्रवृत्ति होती है। प्रेम मानव व्यक्तित्व की उत्कृष्टता है। प्रेम व्यक्तित्व का वैशिष्ट्य है और एक दूसरे के प्रति इसमें आसक्ति होती है। ''[1] इसका अर्थ-विश्लेषण अलग-अलग मनुष्य के लिए अलग-अलग होता है- नर का नारी के प्रति प्रेम, माता का पुत्र के प्रति, देश-प्रेम, प्रकृति-प्रेम आदि अनेक भाव इसी प्रेम-विश्लेषण के अन्तर्गत आते हैं। कोई भी कला या साहित्य प्रेमाभाव में सृजित नहीं हो सकती क्योंकि प्रत्येक कार्य की कल्पना अपने में प्रेम-भाव को सँजोये रहती है।''[2] **फ्रायड** प्रेम की अवधारणा का विश्लेषण मनोवैज्ञानिक धरातल पर करता है। **फ्रायड** के अनुसार लक्ष्य कुंठित सेक्स ही प्रेम है। प्रेम एक आदर्शीकृत आवेग है, जो यौन की विफलता से विकसित होता है।''[3] विशिष्ट वस्तु या व्यक्ति के प्रति होने पर लोभ वह सात्त्विक रूप प्राप्त करता है, जिसे प्रीति या प्रेम कहते हैं।''[4]

वस्तुतः प्रेम, इच्छा, ज्ञान और क्रियावृत्ति की त्रिवेणी है। ये तीनों मिलकर जब एक हो जाते हैं तो इसी मिलन-स्थल को प्रेम कहा जाता है। प्रेम मूलतः एक इच्छा है जो ज्ञान के सहारे एक प्रकार का रूप ग्रहण करता है।''[5]

प्रेमी वस्तु के प्रति वस्तुपरक और व्यक्तिपरक दो प्रकार का दृष्टिकोण रखता है।[6] पहले दृष्टिकोण में प्रेमी का रूप रमनेवाले का होता है तथा दर्शनीय वस्तु या व्यक्ति के गुणों की प्रधानता रहती है जबकि व्यक्तिपरक दृष्टिकोण में प्रेमी वस्तु या व्यक्ति के गुणों को केवल ग्राह्य ही नहीं करता वरन् उसे अपने रंग में रँग लेता है। आलम्बन की दृष्टि से प्रेम के वासनात्मक तथा सात्विक[7] दो रूप होते हैं। वासनात्मक प्रेम शारीरिक अथवा स्थूल सौन्दर्य पर आश्रित होता है, जबकि सात्विक प्रमोदय शारीरिक सौन्दर्य से ऊपर अतीन्द्रिय आन्तरिक सौन्दर्यानुभूति तथा आत्मिक पवित्रतानुभूति के कारण होता है। प्रेमी का अन्तःकरण उस सूक्ष्म अतीन्द्रिय असीम सौन्दर्य के ध्यान से पवित्र, असीम और दिव्य हो जाता है।[8]

प्रकृति, मानव तथा अलौकिक तीनों ही क्षेत्र प्रेम के आलम्बन हैं और स्वच्छन्दतावाद में प्रेम की इन तीनों क्षेत्रों के प्रति आसक्ति होती है। स्वच्छन्दतावादी कवि या लेखक किसी-न-किसी कल्पना-लोक का सृजन करते हैं और वहाँ के दिव्य प्राणियों में चलनेवाले स्वच्छन्द एवं अनन्त प्रेम

1. John Bayley : *Characters of Law*, P. 465
2. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 162
3. वहीं, पृ० 162
4. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : *चिन्तामणि (भाग-१)* पृ० 69
5. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 162
6. वही, पृ० 162
7. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 162
8. वहीं, पृ० 162

को व्यक्त करते हैं। स्वच्छन्दतावादी कवि अन्तर्जगत् में गहन आस्था रखने के कारण प्रेमी, प्रेमिका के प्रथम बार प्रेमोदय को प्रमाण मानते हैं। यही पूर्वानुराग का परिणय परिपक्व होकर प्रेम में परिणत हो जाता है।[1]

प्रेम पात्र की उपस्थिति और अनुपस्थिति के आधार पर प्रेम के दो पक्ष होते हैं- संयोग और वियोग। संयोग प्रेम में प्रेमी-प्रेमिका की परस्पर लीलाओं तथा रति आदि का योग होता है जबकि वियोग में प्रेमी-प्रेमिका के विरहदग्ध हृदय से मार्मिक उद्‌गारों के साथ विरहजन्य विवशता, विषाद और आकुलता के उद्‌गारों का स्वर भी सुनायी देता है। बिरही में ऐन्द्रिय वासना के तिरोभाव से विशुद्ध मानसिक अथवा आध्यात्मिक प्रेम का उदय होता है।

स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रेम के इन दोनों रूपों का चित्रण होता है। स्वच्छन्दतावादी काव्य में जहाँ एक ओर काल्पनिक या वास्तविक प्रिया के संयोगजन्य प्रेमोद्‌गार तथा आनन्दानुभूति की अभिव्यंजना के स्वर सुनायी पड़ते हैं, वहीं दूसरी ओर प्रिया की विरहजन्य विवशता, विषाद, आकुलता तथा बिरह के तीव्र एवं मर्मभेदी उद्‌गार भी सुनायी देते हैं। स्वच्छन्दतावादी काव्य में कवि की 'रागात्मक' वृत्ति ऊर्ध्वमुखी होकर देश-काल की सीमाओं से परे मानव-मात्र के प्रेम से उमड़ पड़ती है वहाँ प्रेम के व्यापक स्वरूप का उदय होता है। स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रेम के इन सभी रूपों का सन्निवेश दिखाई पढ़ता है। प्रेम के इन सभी रूपों में आत्माभिव्यक्ति की प्रेरणा ही सर्वोपरि है। प्रेम की इस परिधि को प्रायः इतना विशद बना दिया गया है कि इसके अन्तर्गत मनुष्य का प्रकृति के प्रति प्रेम भी अन्तर्भूत हो जाता है।[2]

इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रेम नवीन रूप में अभिव्यक्त होता हुआ व्यक्तिनिष्ठ बन जाता है। नवस्वच्छन्दतावादी काव्य में आत्मपरक, वैयक्तिक, आत्मिक एवं वासनामय प्रेमानुभूति प्रधान है।

नवस्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रेम की अभिव्यंजना यथार्थ तथा क्रांतिकारी अभिव्यक्ति के तत्त्व-रूप में अभिव्यंजित होती है।

नवस्वच्छन्दतावादी साहित्य में कवि या लेखक आध्यात्मिक एवं अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना या तो बिल्कुल ही नहीं करते हैं या अगर करते भी हैं तो लौकिक धरातल पर क्योंकि नवस्वच्छन्दतावादी काव्य में वर्णित प्रेम यथार्थवादी दृष्टिकोण लिये हुए हैं कल्पना एवं भावुकता रूप नहीं। नवस्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रेम सर्वप्रथम शरीर में उत्पन्न होता है इसलिए उसका धरातल मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक एवं ऐन्द्रिय केंद्रित है। यही शारीरिक तथा ऐन्द्रिय केंद्रित प्रेम अधिक उत्कृष्टता को प्राप्त हो आध्यात्मिक रूप ले लेता है। अतः स्वच्छन्दतावादी प्रेम का धरातल मानवीय है और प्रेम सांसारिक है, लौकिक है, एक नैसर्गिक भूख है तथा शरीर का भोजन है।[3]

सौन्दर्य मूल रूप में ऐन्द्रियता का विज्ञान है, जिसका उद्देश्य स्वच्छन्दता तथा सुख भोग की

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 162
2. एम० एच० अब्राहम्स, : *नेचुरल सुपरनेचुरलिज्म,* पृ० 297
3. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 65

कामना है। सौन्दर्य में मूलवृत्ति तथा नैतिकता का समन्वय है। सौन्दर्य स्वयं में मानवीय चेतना का विस्तार होता है यही सृष्टि की अन्तिम कड़ी भी है। सौन्दर्य की भावना मूलतः एक आध्यात्मिक तथा रहस्यानुभूति है। **डॉ० अजब सिंह** के अनुसार, "सौन्दर्य स्थिर नहीं है स्थिर सौन्दर्य केवल रुझान की जड़ता हो सकती है। चेतना का उज्ज्वल वरदान नहीं हो सकता।"[1] **निराला** सौन्दर्य को चेतना कहते हैं। चेतना ही जीवन है अतः काव्य-कला का उद्देश्य सौन्दर्य का उन्मेष करना है।[2]

सौन्दर्य की खोज प्रेम के भीतर होती है क्योंकि सौन्दर्य ही प्रेम की आत्मा है। जिसे धर्मज्ञ अपनी दृष्टि के अनुसार शुभ या मंगल समझता है, उसी को कवि अपनी दृष्टि के अनुसार सुन्दर कहता है।[3]

आज **सौन्दर्य-बोध**, विज्ञान, औद्योगीकरण तथा आर्थिककरण की प्रधानता के कारण एक नवीन चिन्तन-प्रक्रिया के रूप में उभरता है। इस चिंतन-प्रक्रिया के कारण सौन्दर्य भौतिकवादी हो जाता है। मानवीय तथा भौतिकवादी सौन्दर्य का अंकन नवस्वच्छन्दतावादी काव्य में दिखायी पड़ता है। दिव्य तथा अलौकिक सौन्दर्य को नवस्वच्छन्दतावादी कवि यथार्थ रूप प्रदान करता है तथा उसका अंकन मानवीय धरातल पर करता है। "नवस्वच्छन्दतावादी सौन्दर्य चेतना वस्तुपरक होती है। इसमें मानवीय एवं प्राकृतिक सौन्दर्य विशेषकर लोक-परिवेश एवं आंचलिकता के रूप में उसका आकलन होता है। स्वच्छन्दतावाद में सौन्दर्य व्यक्ति मन की अभिव्यक्ति है लेकिन नवस्वच्छन्दतावादी सौन्दर्य बाह्य वस्तुओं का यथार्थ अंकन भी है।"[4]

इस प्रकार स्पष्ट है कि नवस्वच्छन्दतावादी कवियों की सौन्दर्य चेतना में शारीरिक एवं आकुल प्रणय निवेदन की स्थिति होती है। सौन्दर्य चेतना दैहिक धरातल पर विकसित होती है। कवि अपनी कल्पना से जिन बिम्बों-प्रतीकों का विधान सौन्दर्यांकन में करता है वे सभी ऐन्द्रिय, लौकिक एवं अर्थव्यंजक होते हैं। वस्तुतः सौन्दर्य-बोध एवं सौन्दर्य निरूपण दोनों ही स्थितियों में सौन्दर्य मानव वैयक्तिक एवं सामाजिक अनुभूतियों से सम्पृक्त रहता है। सौन्दर्य एक जीवन-मूल्य है, उसका उद्गम मनुष्य के भीतर मनोवेगों के उदात्तीकरण से है।[5]

प्रकृति-प्रेम तथा देश-प्रेम

प्रकृति-प्रेम के अभाव में स्वच्छन्दतावादी काव्य की कल्पना असम्भव है। अपने प्रकृति-प्रेम से वशीभूत स्वच्छन्दतावादी कवि 'बैक टू द नेचर' का नारा लगाते हैं। अतः प्रकृति के प्रति उनका प्रेम अटूट है। स्वच्छन्दतावादी तथा नवस्वच्छन्दतावादी काव्यों में प्रकृति का चेतन रूप दिखायी पड़ता है। प्रकृति कवि के सुख-दुःख की अनुभूति करती है। जब कवि का अन्तःकरण व आन्तरिक आनन्द प्रकृति के साथ-साथ तादात्म्य स्थापित करता है उस समय कवि की प्रतिभा जागरूक होती है। प्रकृति के समस्त अचेतन पदार्थ गतिशील लगने लगते हैं। यहाँ मानव और प्रकृति एक हो जाते हैं। नवस्वच्छन्दतावादी कवि में अचेतन जड़ पदार्थों को मानवीय भावनाओं तथा क्रिया-व्यापारों से संयुक्त

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 168
2. सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला,: *गीतिका (समीक्षा-आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी),* पृ० 23
3. आचार्य रामचंद्र शुक्ल : *रस-मीमांसा,* पृ० 26
4. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 169
5. वही, पृ० 173

देखने और अनुभव करने की प्रवृत्ति प्रबल होती है। नवस्वच्छन्दतावादी कवि मानवेतर पदार्थों से मानवीय भावनाओं का आरोप करता है। इस नवस्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रकृति का मानवीकरण होता है। नवस्वच्छन्दतावाद में मानव और प्रकृति एक महत्त्वपूर्ण उपादान हुए। आधुनिक स्वच्छन्दतावादी कवियों ने सामान्यतया अतिप्राकृतिक तत्वों को प्राकृतिक बनाया और दैवी तत्त्वों को मानवीय।[1] नवस्वच्छन्दतावादी कलात्मक सृजन में प्रकृति और मानव की अभिव्यंजना सहज रूप में अभिव्यंजित होती है।

स्वच्छन्दतावादी कवि अपने देश व अपनी धरती के प्रति सहज व स्वाभाविक प्रेम की भावना रखता है अतः उसके काव्य में देश-प्रेम, राष्ट्रीय प्रेम तथा राष्ट्रीय चेतना की भावना अत्यन्त प्रबल रूप में अंकित होती है। अतः देश-प्रेम के कारण कवि व्यक्तित्व प्रकृति-प्रेम में स्वतः ही रम जाता है। अपने देश की प्राकृतिक सुषमा व प्रकृति-चित्रण में उसे सुख का अनुभव होता है। देश-प्रेम तथा देशभक्ति की भावना से वशीभूत स्वच्छन्दतावादी तथा नवस्वच्छन्दतावादी कवि प्रकृति की ओर आकृष्ट होता है। अतः नवस्वच्छन्दतावादी कवि देश-प्रेमी होने के कारण प्रकृति-प्रेमी है तथा प्रकृति-प्रेमी होने के कारण देश-प्रेमी है। नवस्वच्छन्दतावादी कवि अपनी देश-भक्ति व देश-प्रेम की भावना को चित्रित करके अपने देश की धरती व जनता के प्रति आस्था व प्रेम की भावना को चित्रित करते हैं। देश-प्रेम के कारण स्वच्छन्दतावादी काव्य में राष्ट्रीय भावना को स्वर मिला तथा लोकतांत्रिक चेतना को भी अभिव्यक्ति मिली है। देश को स्वतंत्रता प्राप्ति पर भी शोषण से मुक्ति नहीं मिली तथा मनुष्यों की अभिलाषाएँ भी पूरी नहीं हो सकी हैं। फलतः आज का कवि भी निराशा की कगार पर एकान्त बैठा उदास है और समस्याओं से जूझ रहा है और समस्या का व्यक्तिगत एवं सामाजिक निराकरण तलाश रहा है।

रहस्य-विस्मय तथा जिज्ञासा

रहस्य-विस्मय एवं जिज्ञासा नवस्वच्छन्दतावादी साहित्य सामान्य न होकर उत्कृष्ट नवीन रूप में दिखायी देता है। रहस्यवादी अनुभूति नवस्वच्छन्दतावादी काव्यों में रहस्यवाद के रूप में परिवर्तित दिखायी देती है क्योंकि नवस्वच्छन्दतावादी कवि रहस्य तथा अध्यात्म के स्थान पर नैतिकता तथा जीवन की यथार्थता को चित्रित करता है। स्वच्छन्दतावादी साहित्यकार की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी है अतः वह आन्तरिक शक्तियों के अनन्त विस्तार की क्षमता रखता है परन्तु जब वह अचानक किसी अलौकिक, औदात्य-अनन्तसुन्दर सत्ता का अवलोकन करता है, उसकी बुद्धि भ्रमित-सी हो जाती है। वह उनके अलौकिक सौन्दर्य, अपरिमित विस्तार तथा अनन्त वेग से विस्मय विमुग्ध हो, उनके रहस्य-लोक में खो जाता है, उसकी कल्पना आनन्द-सागर में तल्लीन हो जाती है। गरिमा आदर और विस्मय को जन्म देती है और उदात्त का प्रभाव अत्यन्त प्रबल और दुर्निवार होता है।[2]

जिज्ञासा का यथार्थवादी चेतना में महत्त्वपूर्ण स्थान है। जिज्ञासा वस्तु की तह में पहुँचना चाहती है। अपनी इच्छाओं को किसी पर लादना जिज्ञासा का कार्य-क्षेत्र नहीं है क्योंकि जिज्ञासा निरीक्षण की प्रवृत्ति को बढ़ावा देती है। जिज्ञासा केवल एक स्थिति, एक परिस्थिति, एक व्यक्ति, एक चरित्र की सीमा-रेखा में नहीं बँधी रहती है।[3] वह एक श्रेणी के सम्बन्ध में अन्तर्दृष्टि उस श्रेणी की अनेक

---

1. *Studies in Romanticism, Vol. 21, No. 4, Winter, 1982* p. 614
2. डॉ० नगेन्द्र : *काव्य में उदात्त तत्व,* पृ० 101
3. मुक्तिबोध : *नयी कविता का आत्म-संघर्ष,* पृ० 23

स्थिति, परिस्थितियों, व्यक्तियों और चरित्रों के अध्ययन के पश्चात् ही प्राप्त करती है। प्रश्नों के कारणों और अनुसंधान का चित्रण करती है। साहित्य मनुष्य के आध्यात्मिक उत्थान और सामाजिक परिवर्तन के रूप में स्वीकृति पा चुका है। साहित्यिक परिवर्तन व आध्यात्मिक उत्थान का कारण मानव-चरित्र के जीवन के चित्र का रूपांकन और निरूपण कितना महत्त्वपूर्ण है। यह जानने के लिए जिज्ञासा को ही माध्यम बनाना है। इस प्रकार स्पष्टतः कहा जा सकता है कि नवस्वच्छन्दतावादी कवि यथार्थवादी जीवन की अभिव्यंजना रहस्य-विस्मय एवं जिज्ञासा के भावों के माध्यम से ही करता है।

आजीवन प्रेम, स्वतंत्रता, आशा एवं निराशा तथा आनन्द ये सभी स्वच्छन्दतावादी शब्द हैं।[1] आनन्द हर्ष का ही प्रतिरूप है, यह मानवीय व्यापार का जीवन्त रूप है। एक प्रकार से हर्ष व आनन्द का दूसरा नाम जीवन है। प्रेम, स्वतंत्रता जैसी भावनाओं को जीवित रखने के लिए 'आशा' की आवश्यकता होती है। आश: का रूप अत्यधिक विस्तृत है क्योंकि आशा, निराशा, प्रेम, स्वतंत्रता, जीवन, हर्ष और आनन्द सभी को अपनी सीमा-रेखा में बाँधती है। 'आशा वस्तुतः उन मनुष्यों के जीवन में क्रांति लाती है जो कि आधुनिक रचना की दृष्टियों को समझने के योग्य बनाती है।''[2]

जो कला कलाकार की एकाकी आत्मा में अन्तर्मुख हो जाती है आशा उस कला को बाह्य जगत् के साथ पुनः जोड़ देती है और यही आशा की प्रमुख आधार-शिला है। वस्तुतः आशा, निराशा, हर्ष व आनन्द तथा स्वतंत्रता स्वच्छन्द कला की पहचान है। ये जब अपनी व्याख्या में जीवन-यथार्थ एवं युग-सापेक्षता की अभिव्यक्ति देती हैं तब अपने यथार्थपरक चित्रण के आधार पर नवस्वच्छन्दतावादी चेतना के साथ मिल जाती है।[3]

शिल्पगत वैशिष्ट्य

स्वच्छन्दतावादी साहित्य व्यक्ति-प्रधान साहित्य है। वैयक्तिक भावना की अभिव्यक्ति न तो किसी विशिष्ट शैली का अनुसरण करती है और न ही किसी प्रकार के बाह्य अलंकार-येजना की अपेक्षा रखती है। स्वच्छन्दतावादी साहित्य में किसी भी परम्परागत शिल्प-विधान का पालन नहीं किया जाता है। उसमें अलंकार, रीति, वृत्ति आदि नियमों का अनुकरण नहीं होता वरन् कवि की अनुभूति अपनी अभिव्यंजना की भाषा साथ लेकर आती है। स्वच्छन्दतावादी साहित्य की भाषा-शैली व्यक्ति-प्रधान होती है। इसमें मिथकीय चेतना, बिम्ब विधान, प्रतीक विधान, प्रगीतात्मकता के माध्यम से कवि अपनी आन्तरिक वृत्तियों को प्रस्तुत करता है।

जिस प्रकार स्वच्छन्दतावादी कवियों ने अपने पूर्व की भाषा का परित्याग कर शब्दों, प्रतीकों, बिम्बों का नवीन विधान प्रस्तुत कर भाषा में व्यंजकता, प्रगीतात्मकता व चित्रात्मकता का विशेष रूप से समावेश किया था, उसी प्रकार नवस्वच्छन्दतावादी भाषा-शिल्प भी एक नवीन रूप लिये हमारे सामने आया। हिन्दी के नवस्वच्छन्दतावादी साहित्यकार तथा कवि भाषा-शिल्प को एक नवीन दिशा-यात्रा की ओर अग्रसर करते हैं। नवस्वच्छन्दतावादी कविता अन्तः-बाह्य, चेतन-अचेतन तथा वैयक्तिक-सामाजिकता के संघात से संश्लिष्ट एक नवीन रूप में विकसित हुई। नवस्वच्छन्दतावादी रचनाकार अपनी रचना में अन्तः-बाह्य, चेतन-अचेतन तथा वैयक्तिक सामाजिकता के संश्लिष्ट रूप को व्यक्त करने

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 178
2. वही पृ०, 179
3. वही पृ०, 179

के लिए अपनी चेतना के विकास के लिए स्थिति के अनुसार मिथकों, बिम्बों, प्रतीकों तथा प्रगीतों का युगसापेक्षता से सम्पृक्त करता हुआ, अपनी सर्जनात्मक कल्पना से एक नवीन रूप में ढाल उनकी पुनर्व्याख्या भी करता चलता है। इस प्रक्रिया में वह आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की चेतना को भी कलात्मक रूप देता है। नवस्वच्छन्दतावादी रचनाकार अपनी अभिव्यक्ति प्रक्रिया में वह युगीन विरोधाभास को समकालीन जीवन-डोरी में लपेटकर प्रत्येक बिन्दु पर वैयक्तिकता आन्तरिक आत्मपरकता के माध्यम से एक स्वच्छन्द नवीन चेतना रूप में प्रतिबिम्बित करता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वच्छन्दतावादी वैयक्तिकता या आन्तरिकता नवस्वच्छन्दतावादी काव्यों में शिल्पों के रूप में दिखाई पड़ती है। शिल्प-तंत्र विधान में हर रचनाकार अपनी आन्तरिकता से एक दूसरे से अलग नज़र आता है। वह अलगाव काव्य में स्वच्छन्द एवं सक्रिय कल्पना से अपना रूप निर्मित करता है। संरचना में भाषा, बिम्ब, प्रतीक, मिथक तथा प्रगीत आदि उपकरणों के द्वारा कवि अपनी आन्तरिकता को काव्य में नया संदर्भ देता है।[1]

प्रत्येक कवि अलग-अलग व्यक्तित्व का होता है और उसकी अपनी अलग मानसिकता भी होती है। अतः उसकी अनुभूतियों में वैविध्य की झलक स्पष्ट एवं स्वाभाविक रूप में विद्यमान रहती है। यही कारण है कि प्रत्येक कवि स्वयं अपने बारे में एक नवीन परिवर्तित दृष्टिकोण रखता है और उसी के अनुसार सामाजिक परिवेश और युगीन चेतना की अनुभूतियों को सजग और प्रेरित करता है। अतः नवस्वच्छन्दतावादी काव्य में अनुभूति की ईमानदारी दृष्टिगोचर होती है। इस काव्य में शिल्प-तंत्र जैसे कवियों की निजी सम्पत्ति बन जाता है। अतः प्रत्येक कवि के शिल्पों में उसकी वैयक्तिकता के दर्शन होते हैं। नवस्वच्छन्दतावादी कवि अपनी काव्य चेतना को नये बिम्ब-विधान, नूतन प्रतीक, नयी मिथकीय चेतना के माध्यम से यथार्थ-चित्रण वैयक्तिक धरातल पर शिल्प के रूप में करते हैं। नवस्वच्छन्दतावादी कवियों की भाषा में भी वैयक्तिकता के दर्शन होते हैं। 'बोलचाल की भाषा के नूतन प्रयोग, नवीन शब्द-संगठन एवं अर्थ-लय पर निर्मित स्वच्छन्द भाव-प्रवाह आदि के द्वारा ये कवि अपने आपको ही अभिव्यंजित करने का प्रयास करते हैं।''[2] भाषा-शिल्प-विधान के माध्यम से कवि का व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है। आत्मपरक व्यंजना के वशीभूत ये कवि अपने परिवेश तथा भाषा के प्रति रुझान रखते हुए तत्सम, तद्भव, विदेशी, देशज तथा नवीन शब्दों का प्रयोग अपनी रचनाओं में करते हैं। नवस्वच्छन्दतावादी काव्य में युग सापेक्षता के अनछुए, टटके एवं नवीन शब्दों का चयन कवियों की आत्मपरक व्यंजना का द्योतक है जो कवि की अनुभूति एवं व्यक्तित्व से सिक्त काव्य में अंकित हुए हैं। ''नवस्वच्छन्दतावादी कवियों की शिल्पगत विशेषताएँ कवि की आन्तरिकता की नितांत आत्मीय प्रतिक्रियाओं को मूर्तिमान् करती हैं। इस प्रकार भाषा, बिम्ब, प्रतीक, मिथक एवं प्रगीत के रूप में नवस्वच्छन्दतावादी कवियों की शैलीगत प्रवृत्तियाँ अपना रूप निर्मित करती हैं।''[3]

भाषा

स्वच्छन्दतावादी कवियों की भाषा, काव्य-भाषा-क्षेत्र में एक नवीन परिवर्तित दृष्टि की परिचायक है। नवस्वच्छन्दतावादी रचनाकारों ने **सरल तथा जनजीवन की भाषा** का प्रयोग किया है। प्रगल्भ,

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 179
2. वही पृ०, 185
3. वही, पृ० 185

अलंकृत तथा भावोच्छ्वसित भाषा को त्याज्य इन्होंने बोलचाल की सरल भाषा के द्वारा ही अपनी अनुभूतियों को काव्य में अभिव्यंजित किया है। इन कवियों ने शब्द-योजना की सरलता पर दृष्टि केंद्रित करते हुए सहजाभिव्यक्ति को प्राथमिकता दी। ये अपनी काव्य रचना में भाषा और भाषा अनुसार शब्दों का प्रयोग कर सहज भाषा और सहजाभिव्यक्ति को अपनाते हैं। प्रगीतात्मक काव्य-भाषा के माध्यम से कवि अपनी अनुभूतियों की रचनात्मक अभिव्यंजना करता है। नवस्वच्छन्दतावादी कवि मानवीय तृष्णा की हू-बहू अभिव्यंजना करते हैं। अतः इनकी रचना 'कल्पनालोक' की न होकर जन-जीवन के धरातल की होती है। जहाँ इन कवियों की भाषा-शैली व्यंग्यों के माध्यम से एक नवीन संदर्भ उद्धृत करती है। भाषा-शैली में कवि परम्परा से हटकर एक नवीन दिशा की ओर पग बढ़ाता है। इस कविता की भाषा परम्परागत काव्य से विद्रोह तथा नवीन अनुभूति का चयन है, जिसकी अभिव्यंजना सदैव व्यक्तिगत होती है। **डॉ० इन्द्रनाथ मदान** ने नवस्वच्छन्दतावादी काव्य-भाषा की आत्मपरकता के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि "शब्द का अत्यधिक प्रयोग भी होता है और यह प्रेषण का माध्यम भी बनता है।"[1]

नवस्वच्छन्दतावादी काव्य में वैचारिक गहनता होती है। कवि अपने कथ्य को बिम्बों, प्रतीकों एवं मिथकों के माध्यम से भाषा को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। नवस्वच्छन्दतावादी काव्य की भाषा का अलंकार-योजना से कोई लेना देना नहीं होता और न ही इस काव्य की भाषा अलंकृत होती है वरन् सपाटबयानी की भाषा का प्रयोग इस काव्य के कवियों की रचनाओं में अवश्य दृष्टिगोचर होता है। नवस्वच्छन्दतावादी कवि सहज और स्वाभाविक रूप से बढ़कर पारिवेशिक समस्याओं से जूझते और उसे चित्रित करते हैं। अतः यह जनसाधारण की भाषा के अनुरूप अपने काव्य की भाषा को रूप प्रदान करते हैं।

नवस्वच्छन्दतावादी काव्य की अभिव्यक्ति बिम्बों, प्रगीतों, प्रतीकों तथा मिथकों के माध्यम से यथार्थवादी धरातल पर होती है अतः यहाँ 'कल्पना' की उड़ान को कोई स्थान नहीं है। ये कवि समकालीन जीवन-बोध को मिथकों, प्रगीतों, बिम्बों एवं प्रतीकों में प्रस्तुत करते हैं और ये प्रवृत्तियाँ नवस्वच्छन्दतावादी कवियों में प्रचुर मात्रा में मिलती है। फलतः कवि को आधुनिक जीवन बोध के अंकन में इन उपकरणों से पर्याप्त बल मिलता है।"[2]

नवस्वच्छन्दतावादी कवि भाषागत प्रयोग में काल्पनिक अनुभूतियों के स्थान पर यथार्थ अनुभूतियों की अभिव्यंजना करते हुए सौन्दर्य-बोध, कलात्मक भाषा के नये मुहावरे और छन्द के विधानों का नवीन संदर्भ प्रस्तुत करते हैं। नवस्वच्छन्दतावादी काव्य में नूतनता के कारण अभिव्यंजना शिल्प का तथा बदलाव के फलस्वरूप काव्य और शिल्प दोनों का ही विस्तार हुआ है। **डॉ० अजब सिंह** के अनुसार, "आधुनिक काव्य की भाषा विषयक 'स्वीय' चेतना भी स्वच्छन्दतावादी चेतना का एक रूप है। आन्तरिकता एवं अन्तर्मुखी वृत्ति के कारण कवि का अनुभव क्रमशः रचना-क्रिया का अनुभव हो जाता है।

---

1. डॉ० इन्द्रनाथ मदान : *उत्तरछायावादी : हिन्दी काव्य की प्रवृत्तियाँ और धाराएँ,* पृ० 46
2. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 187

इन्द्रियगोचर विश्व और उसकी पुनर्सृष्टि का प्रयास तथा भाषा के माध्यम से अपने आपको अभिव्यंजित करने की साधना के द्वन्द्व के टूटने का खतरा हमेशा बना रहता है। ऐसी स्थिति में ये कविताएँ रचना की कविता होने की जगह कविता-विषय कविता हो जाती हैं और इस प्रकार अन्ततः भाषा-विषयक कविता बन जाती हैं। किन्तु प्रत्येक स्थिति में कविता की संरचना वर्तुलाकार ही रहती है। इस प्रकार भाषा और विश्व के अन्तराल के संघर्ष ही आधुनिक काव्य का मूलाधार है।"[1]

बिम्ब

आधुनिक साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण चरित्र बिम्ब प्रधान है। हिन्दी-आलोचत्त्व-संसार में बिम्ब शब्द के सर्वप्रथम प्रयोग का श्रेय **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** को जाता है। **फ्रायड** ने उन प्रेम एवं यौन अनुभूतियों को, जो अचेतन मस्तिष्क में दमित होती हैं और अनुकूल अवसर के हाथ आते ही व्यंजना को तत्पर रहती हैं, बिम्ब या स्वप्न का नाम दिया है। किन्तु **युंग** ने स्वप्न अथवा बिम्ब-निर्माण में केवल दमित यौन एवं प्रेमानुभूतियाँ ही नहीं माना है वरन् वह इसमें सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का भी योगदान मानता है जो **युंग** के अनुसार बिम्बों एवं स्वप्नों में उभरती हैं। वस्तुतः बिम्ब सर्जनात्मक एवं सक्रिय कल्पना तथा चेतन-अचेतन का व्यापार है। यह कवि की सम्पूर्ण चेतना का सर्जनात्मक रूप है। कवि अपनी चेतना की सर्जनात्मक कल्पना से ही बिम्ब की रचना करता है। वास्तव में बिम्ब विधान की मूल चेतना अचेतन मस्तिष्क का विस्तार है।[2] सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना के कारण बिम्ब, प्रतीक तथा मिथक अपना निर्माण संकेतात्मक रूप में करते हैं। कवि बिम्ब-विधान में वैयक्तिक अचेतन और सामूहिक अचेतन दोनों ही क्षेत्रों में काव्य की सर्जना करता है। बिम्ब-विधान प्रक्रिया मानवीय धरातल पर अपना रूप प्रस्तुत करती है और कवि की प्रतिभा उसे अपने व्यक्तित्व व मानसिकता के अनुसार अलग-अलग आकार देती है। कलात्मक बिम्ब विशिष्ट, विलक्षण एवं प्रारूपित होते हैं। ये मनुष्य की संवेदना को सघन कर संवेगात्मक अनुभूति को बढ़ाते हैं। स्वच्छन्दतावादी कवि अन्तर्मुखी प्रवृत्ति होने के कारण संवेदनशील, भावुक एवं कल्पनाशील होता है। इस प्रकार वह भावावेश के क्षणों में अपनी संवेदनशीलता से ही निर्जीव पदार्थों को भी सजीव और संवेदनशील बना देता है। इसी तरह भावुक कवि निराकार तथा इन्द्रियातीत भावनाओं को भी अपनी रागात्मकता के संस्पर्श से गोचर एवं सहज संवेद्य रूप प्रदान करता है। इस तरह की प्रवृत्ति को बिम्ब-विधान कहते हैं।[3] नवीन व मौलिक परम्परा के अलग बिम्ब, मानवीय गुणों, भावों, विचारों तथा व्यक्ति के मध्य साक्षात् क्रिया-प्रतिक्रिया द्वारा मानवीय रूप ग्रहण करते हैं तथा इन बिम्बों में आलंकारिकता साधारणतया उनके नूतन अभिव्यंजना के ढंग में निहित होती है। "मानव जीवन और गति बिम्ब की आत्मा है कविता में वर्णित घटनाएँ, स्थान उसमें निहित क्रियाएँ प्रतिनिधि रूप में मानवीय होती हैं। इनमें उन बिन्दुओं को उभारा जाता है, जो मनुष्य की प्रकृति, स्वभाव और उसके जीवन के विस्तार के सम्बन्ध में रख रहे हैं।"[4]

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 187
2. वही, पृ० 187
3. वही, पृ० 183
4. वही, पृ० 188

कविता **कल्पना** से उपकृत होती है और बिम्ब कल्पना को बल देता है। अतः बिम्ब का सम्बन्ध बौद्धिकता से होता है। जब कल्पना एवं अनुभूतियों के आधार पर जड़ पदार्थ में चेतना आरोपित की जाये तो उस आरोपण को बिम्ब कहते हैं। काव्य में बिम्ब-विधान एक शैली-विशेष ही है, जिसका अपना एक सर्जनात्मक पक्ष है।[1] भाषाभिव्यंजना एवं भावसम्प्रेषण का बिम्ब एक सशक्त माध्यम है। बिम्ब कल्पना का विस्तार होते हुए भी अनुभूति से जुड़ा होता है। कवि द्वारा अपनी अनुभूति के स्वच्छन्द-प्रवाह में जो दृश्य, भाव अथवा घटना सामने आती है, उसे ऐन्द्रिय ग्राह्य कर चित्रांकन करने की प्रक्रिया को बिम्ब कहते हैं। स्वच्छन्दतावादी बिम्बों में कवि की एक अनुभूति होती है जिसमें नवीनता के साथ-साथ आवेग और ऐन्द्रियता का स्पर्श अवलोकनीय होता है। स्वच्छन्दतावादी बिम्ब का सम्बम्ध जीवन की गतिशीलता से होता है। अतः कवि मानवीय क्रियाओं के साथ मानवीय धरातल पर अपने अनुभवों की अभिव्यंजना करता है और क्रियाशीलता तथा चिंतनशीलता को समन्वित करता है। **डॉ० अजब सिंह** के अनुसार, "स्वच्छन्दतावादी बिम्ब-विधान में कवि सीधे विचार एवं अनुभूति के संघर्ष को व्यक्त नहीं करता बल्कि बिम्बों की रचना श्रृंखलाबद्ध रूप में रखता है। बिम्ब यहाँ विचार-प्रधान है, बौद्धिक है तथा संश्लेषणात्मक है।"[2]

प्रयोग के आधार पर तथा परीक्षणों के माध्यम से बिम्ब ही बाद में प्रतीक बन जाते हैं। बिम्ब का प्रयोग पहले एक रूपक के अर्थ में होता है किन्तु निरन्तर एवं निश्चित अर्थ में आने के कारण बिम्ब प्रतीक का रूप धारण करता है। किसी भी वस्तु की अभिव्यंजना के लिए रचनाकार उपमेय तथा उपमान का चयन करता है और वस्तु और उपमान दोनों को वर्णित भी करता है किन्तु जब कालान्तर में उपमान एक निश्चित अर्थ में प्रयुक्त होने लगता है तो वह प्रतीक बन जाता है। बिम्ब की क्रिया मानसिक तथा प्रतीक की क्रिया आंगिक होती है। बिम्ब अपने आप में साध्य है, प्रतीक साधन है। प्रतीक में अर्थ-पद्य व्यंजना एवं अवधारणा अपेक्षित है। प्रतीक अपना अर्थ नहीं हो सकता। अभिधा, लक्षणा एवं व्यंजना में प्रतीक का सम्बन्ध लक्षणा तथा व्यंजना से होता है। बिम्ब में अनुभूति का विस्तार है, कल्पना की शक्ति है तथा कल्पना की ज्वाला है। बिम्ब धीरे-धीरे प्रतीक का रूप ले लेता है।[3]

प्रतीक

जब कवि की भावुकता सीधे सरल शब्दों में न ढलकर सांकेतिक या लाक्षणिक शैली को अपनाती है उसे **प्रतीक-विधान** कहते हैं। प्रत्येक कला के क्षेत्र में सभी प्रतीक एक-से नहीं होते, उनमें पर्याप्त भिन्नता होती है। किसी क्षेत्र में रूढ़ प्रतीक तो किसी में सांकेतिक प्रतीक पाये जाते हैं।

फ्रायड ने प्रतीक को आदिम भाषा से सम्बन्धित माना है।[4] प्रतीक का सम्बन्ध अचेतन से है अतः प्रतीक की भाषा स्वतः ही प्रकट होती है। प्रतीक मानव अभिव्यक्ति का एक आन्तरिक मार्ग है।[5] स्वप्न, फैंटेसी, कविता, कला, मिथक और धार्मिक संस्कार सभी में प्रतीक की सहजाभिव्यक्ति होती है। मनुष्य के आन्तरिक तनाव की अभिव्यक्ति प्रतीकात्मक होती है और यही मनुष्य की

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 188
2. वही, पृ० 190
3. वही, पृ० 191-192
4. *Complete Psychological Works of Sigmund Freud Vol. XIX*, P. 135
5. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 192

आनन्दानुभूति का कारण बन जाती है। **युंग** के अनुसार प्रतीक को सरलता से परिभाषित नहीं किया जा सकता है वह एक अनिश्चित अभिव्यक्ति है क्योंकि एक वस्तु की अनेकार्थों में प्रतीकात्मक अभिव्यंजना सम्भव है।[1] वास्तव में प्रतीक द्वारा हम अपने आपको प्रकट करते हैं।[2]

मानव की सर्वाधिक मौलिक विशेषता प्रतीक अभिव्यंजना है जो मनुष्य की आत्मचेतना के क्रमिक विकास में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। प्रतीक-विधान मानसिक अवस्थाओं के कारण होता है। यह अचेतन जगत् की इच्छाओं की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। भाषा, धर्म, कला, संस्कृति, मनोविज्ञान और दैनिक क्रिया तथा व्यापारों में प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है। मिथक को भी प्रतीक विधान द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। इस प्रकार प्रतीक मिथक का एक विस्तार भी होता है। किन्तु प्रतीक एक विशिष्ट दृष्टिकोण लिये होता है जो अंशतः दार्शनिक, अंशतः सौन्दर्य-बोध की मान्यताओं से प्रभावित तथा अंशतः यथार्थवाद को अपने में समेटता है। इसी कारण स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रतीकात्मक बिम्ब का महत्त्वपूर्ण स्थान है। काव्य-कला में स्वच्छन्दतावादी चेतना सदैव क्रियाशील रहती है और मानवीय रुझान के कारण कवि प्रतीकात्मक अभिव्यंजना अपनी आन्तरिकता, वैयक्तिकता तथा सामाजिकता की समन्वित चेतना के कारण करता है। अतः कवि प्रतीक-योजना अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति के कारण करता है।

प्रक्षेपण, साहचर्य, समता, प्रतिनिधान तथा आत्मिककरण प्रतीक-योजना के लिए काव्य में पाँच आवश्यक आवश्यकताएँ मानी गयी हैं।[3] इनकी साधना ही काव्य में प्रतीक-योजना का कारण बनती है। सृजन प्रक्रिया में आत्मिक साधना के आत्मिककरण के फलस्वरूप रचनाकार प्रतीकात्मक अभिव्यंजना करता है। आत्मिककरण के अभाव में प्रतीक-योजना नहीं हो सकती है।[4] कलाकार द्वारा अपनी आन्तरिकता का मूर्तिकरण करने के कारण ही प्रतीकात्मक अभिव्यंजना स्वच्छन्दतावादी हो जाती है। मानव चैतन्य की केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण की प्रक्रियाओं के परस्पर व्याप्ति के माध्यम प्रत्यक्ष, अप्रत्यक्ष तथा अन्तर्ज्ञान तीनों ही स्तरों पर प्रतीकों की उत्पत्ति होती है। हम अपनी भावना और अनुभूति के अनुरूप ही बाह्य संसार को देखते हैं। प्रक्षेपण तथा आत्मिकरण की विविध प्रक्रिया के द्वारा बिम्ब प्रतीकात्मक हो जाते हैं।

मिथक

मिथक शब्द हिन्दी में अत्याधुनिक है तथा **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** द्वारा सुझाया गया है। संस्कृत के 'मिथ शब्द के साथ 'क' प्रत्यय से जुड़ने से इसका निर्माण हुआ है, जिसका अर्थ प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए दो तत्वों के परस्पर सम्मिलित रूप के लिए होता है। यद्यपि कुछ विद्वान् यह मानते हैं कि **डॉ० द्विवेदी** ने अंग्रेजी के **Myth** शब्द का रूप **मिथक** शब्द बनाया जिसका अर्थ अंग्रेजी में एक कहानी, कथा या काव्य है, किन्तु हिन्दी में यह पुरावृत्त, कल्पकथा, पराकथा, देवकथा, धर्मगाथा, पुराणकथा, पुराख्यान-तत्त्व, पौराणिक प्रसंग आदि के लिए आया है।[5]

---

1. C. G. Jung : *The Collected Works, Vol. V,* p. 232.
2. मुक्तिबोध : *नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र,* पृ० 119
3. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 197
4. डॉ० सत्य प्रकाश सिंह : *उपनिषदिक सिम्बोलिज्म,* पृ० 399
5. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 198

मिथक का कोई **आद्य रूप** हमारे अचेतन में अवश्य रहता है। इसलिए मिथक को आद्य बिम्ब भी कहा जाता है। आद्य बिम्ब के अभाव में मिथक रचना प्रायः असम्भव है। मिथक आदिकालीन विज्ञान, इतिहास, धर्म, संस्कृति, दर्शन, कर्मकाण्ड अथवा अचेतन कल्पनाओं अथवा इसी प्रकार की किसी अन्य प्रवृत्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।[1]

मिथक को एक ऐसी परम्परा कहा जा सकता है जो अपने समय के सांस्कृतिक मूल्यों की प्रतीकात्मक एवं लाक्षणिक प्रस्तुति करती है। मिथक कदाचित् सांस्कृतिक अभिव्यंजना का प्राचीनतम माध्यम है।[2] मिथक को संस्कृति से अलग नहीं किया जा सकता है। यह किसी-न-किसी संस्कृति से अवश्य जुड़ा होता है तथा सांस्कृतिक चेतना का आवश्यक अंश होता है। मिथकीय चेतना को संस्कृति से विलग करके उसकी प्रवृत्ति एवं स्वरूप को समझना कठिन होता है क्योंकि मिथकीय चेतना सदैव सांस्कृतिक बोध से जुड़ी होती है। ''मिथक वस्तुतः आदिम मानव के समष्टि मन की सृष्टि है जिनमें चेतन की अपेक्षा अचेनत मन की प्रधानता रहती है। समष्टि मन द्वारा प्राकृतिक उपादानों और घटनाओं के मानवीयकरण की यह अचेतन प्रक्रिया मिथक रचना का मूल है। इसका सत्य आत्मपरक एवं मनोवैज्ञानिक होता है। इस अर्थ में मिथक की अनुभूतियाँ उसी तरह यथार्थ हैं, जिस प्रकार प्रत्येक मनोवैज्ञानिक अनुभूति समाज के लिए यथार्थ होती है। मिथक आत्मनिष्ठ एवं मनोवैज्ञानिक होता है और वह सांसारिक यथार्थ को मानवीय अनुभूतियों की शब्दावली में प्रस्तुत करता है।[3]

आधुनिक साहित्य मिथक प्रधान हो गया है। प्राचीन मिथक के समान आधुनिक मिथक ही सामूहिक अचेतन का विस्तार तथा फैंटेसी के रूप में दिखायी पड़ता है। यह फैंटेसी नहीं है क्योंकि इसका आधार यथार्थ है। यह दूसरी बात है कि यथार्थ को भी मिथकीय चेतना बदल देती है। मिथक सांस्कृतिक तथा धार्मिक चेतना को एक नवीन रूप में प्रस्तुत कर सामाजिक चेतना को जगाता है। ''मिथक वस्तुतः एक सांस्कृतिक कथा है, एक काल्पनिक कथा है, एक तर्कातीत कथा है तथा एक पौराणिक कथा है। सांस्कृतिक मूल्यों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक मिथकों के द्वारा संप्रेषित किया जाता है। मिथक इस प्रकार सांस्कृतिक मूल्यों के संप्रेषण का एक माध्यम है। वे सभी अवधारणाएं, जो मूल्यों को व्याख्यायित करती हैं मिथक कही जाती हैं। मिथक से कवि सांस्कृतिक मूल्यों को सुरक्षित रखता है।''[4] कविता के मिथक के संदर्भ में **डॉ० विजयेन्द्र नारायण सिंह** का कथन महत्वपूर्ण है। ''कविताएँ और मिथक कला को एक विशिष्ट पार्थिक श्रेणी में स्थान्तरित करने में अनुरूप सिद्ध होते हैं। एक अतीत में जो कि सदा भविष्य होता है और जो सदा वर्तमान बनने को प्रस्तुत रहता है।''[5]

मिथक संस्कृति का वाहक, संरक्षक तथा निर्देशक होने के साथ-साथ विज्ञान का आलोचक भी है। मिथक किसी प्रस्तुत वास्तविकता में से प्रमुख विचारों की अवतारणा और कल्पना के माध्यम से पुनः अभिव्यक्त होता हुआ यथार्थवाद तक पहुँचता है जहाँ, कवि अपनी इच्छाओं और संभावनाओं को अवतरित अवधारणा से जोड़कर स्वच्छन्दतावाद तक पहुँच जाते हैं।

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 199
2. वही, पृ० 199
3. वही, पृ० 200
4. वही, पृ० 201
5. डॉ० विजयेन्द्र नारायण सिंह : *काव्यालोचन की समस्याएँ,* पृ० 29

मिथक की अनुभूति **प्रत्यक्षीकरण** एवं **अवधारणा** के धरातल पर होती है। प्रत्यक्षीकरण के धरातल पर बिम्ब तथा अवधारणा की भूमि पर प्रतीक की अनुभूति होती है अतः मिथक की अनुभूति के लिए बिम्ब तथा प्रतीक दोनों ही अपेक्षित हैं। मिथक में मानवीयता सर्वोपरि होती है। मिथक दैवी भावना से मानवी भावना की यात्रा है। वस्तुतः मानवीयता मिथक की अस्मिता होती है।[1] मिथक मानवीय चित्ति की यथार्थता के संस्कार रूप में सुरक्षित रहती है।[2]

अर्थ एवं अभिव्यक्ति प्रधान बौद्धिक भाषा के प्रयोग के कारण आदिम मिथक छूटकर नवीन प्रतीकों के रूप में नवीन अर्थ व नवीन संदर्भ पाकर पुनः बारम्बार जन्म लेते हैं। अतः स्पष्ट है कि नये मिथकों का सृजन विश्वासों तथा नवीन ज्ञान की किरणों के कारण होता है। पुराने मिथकों का रूपान्तरण तथा व्याख्या आधुनिक जीवन-बोध के संदर्भ में होती है। यद्यपि मिथक का अर्थ सामयिक होता है किन्तु उसकी चेतना शाश्वत और सार्वभौम होती है। वस्तुतः मिथक में कल्पना और यथार्थ का योग होता है। यह ज्ञान और विज्ञान से सम्बद्ध तथा मानव की समस्त चेतना की संस्कृति है। शब्द संसार की मुख्य रूपरेखा है और परिधि की रचना में सहयोग देता है जिसमें बाद में साहित्य भी समाहित हो जाता है।[3]

मिथकों का आधुनिक स्वरूप भी क्रमशः विकसित हो रहा है। इससे बदले हुए ज्ञान और संवेदना के नये धरातलों, नयी आस्थाओं एवं नयी मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में ही समझा जा सकता है। मिथक को नया रूप देना, उनकी पुनर्व्याख्या करना तथा मिथक की सर्जन-प्रक्रिया साहित्य के लिए नवस्वच्छन्दतावादी कवि या साहित्यकार की होती है।[4]

समसामयिक बोध के कारण नवस्वच्छन्दतावादी कवि या साहित्यकार आध्यात्मिक चेतना तथा पुराणकथा को नवीन रूप प्रदान करता है। मिथकीय चेतना के संदर्भ में नवस्वच्छन्दतावादी काव्य की यह प्रक्रिया क्रान्तिकारी है। कवि या लेखक अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति के कारण ही मिथकों को अपनी सर्जनात्मक कल्पना के द्वारा नवीन रूप प्रदान करता है। ''अचेतन मन की अभिव्यंजना मिथक की विवृत्ति के लिए आवश्यक धरातल है। **फ्रायड** और **युंग** ने अपने मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों की प्रस्तुति की है, उसमें स्वप्न, आद्य-बिम्ब, प्रतीक, फैंटेसी के साथ-साथ मिथक का भी अपना स्थान है।[5]

प्रगीतात्मकता

प्रगीत को स्वच्छन्दतावादी कवियों की शैलीगत प्रवृत्ति के रूप में स्वीकार किया गया है। प्रगीत में कवि की आन्तरिकता तथा वैयक्तिकता के दर्शन होते हैं। प्रगीत कवि के अन्तः जगत् की उद्‌भावना है। कवि की वैयक्तिक अनुभूति आधुनिक प्रगीत की सर्वोत्तम पहचान है। आन्तरिकता स्वच्छन्दतावादी काव्य की मूल प्रवृत्ति है। प्रगीत के माध्यम से कवि अपनी आन्तरिकता की व्याख्या स्वयं के विचार तथा भावनाओं के माध्यम से करता है। प्रगीत का विषय कवि की व्यक्तिगत अनुभूतियाँ होती हैं जो गीति काव्य से सम्बद्ध होती हैं या कवि की स्वयं की होती हैं। आत्मपरकता, एकपक्षीय,

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 203
2. डॉ० रमेश कुन्तल मेघ : *मिथक और स्वप्न, कामायनी की मनस्सौन्दर्य सामाजिक भूमिका,* पृ० 206
3. डॉ० विजयेन्द्र नारायण सिंह : *काव्यालोचन की समस्याएँ,* पृ० 29
4. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 204
5. वही, पृ० 205

संवेग, स्वाभाविकता या सहजता तथा मीठी एवं सुरीली भाषा प्रगीत की प्रमुख विशेषताएँ हैं।[1] कवि के विचारकों अथवा भावों को सीधे अभिव्यक्त करनेवाली छोटी कविता प्रगीत कही जाती है।[2]

कवि की स्वीय आन्तरिकता की अभिव्यंजना होने के कारण प्रगीत में वैयक्तिक अनुभूतियों तथा संवेगों को प्रधानता दी जाती है। इस काव्य में कवि के विचार व अनुभूति की अभिव्यंजना प्रथम पुरुष में होती है तथा कवि की भावनाएँ ही सर्वोपरि होती हैं। प्रगीत में अनुभूति संवेद्य को वर्तमान काल में अभिव्यक्ति दी जाती है।

आधुनिक युग का प्रधान काव्य रूप प्रगीत है, जो व्यक्तिवादी जीवन-दृष्टि का विस्तार है।[3]

स्वच्छन्दतावादी कवि अपनी अनुभूति की तीव्रता की अभिव्यंजना अनेक रूपों में करता है तब वह सुख-दुःखमय की निर्बाध अनुभूति की अभिव्यंजना के लिए प्रगीत का आश्रय लेता है। सच्चा प्रगीत स्वयं में सरल, क्षणिक एवं तीव्र मनोवेगी होता है, जिसकी विशेषता आत्माभाव होती है और हार्दिकता उसे प्रकृति से प्राप्त होती है। गेयता गीतिकाव्य का आवश्यक तत्त्व है। ''प्रगीतात्मकता में तन्मय रहने के कारण स्वच्छन्दतावादी कवि मुक्त छन्द के प्रवाह में बहने लगता है क्योंकि नये विषय को नया अभिव्यंजना शिल्प चाहिए। स्वच्छन्दतावादी काव्य मूलतः प्रगीतात्मक होता है तथा प्रगीत आज भी अनुभव की प्रामाणिकता के लिए सबसे उपयुक्त है।''[4]

प्रगीत वैयक्तिक नहीं होता वरन् उसकी वैयक्तिकता में सामाजिकता भी निहित है। आधुनिक प्रगीत में यथार्थवादी चेतना अभिव्यक्ति के लिए बौद्धिकता भी ग्राह्य तत्व है। बौद्धिकता को वहीं तक ग्रहण किया जाता है जहाँ तक प्रगीत की मूल चेतना का ह्रास न हो बल्कि बौद्धिकता को कलात्मक प्रणाली के रूप में ग्रहण किया जाता है।

नवस्वच्छन्दतावादी काव्य में लोकगीत को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। लोक-परिवेश तथा लोक-गीतात्मक शैली नवस्वच्छन्दतावादी काव्य का प्राण है। इस काव्य में लोकगीतात्मक काव्य की सहज और प्रमुख रूप में अभिव्यंजना हुई है। लोकगीत में कवि परिवेश तथा अपनी अन्तः चेतना को सहज और मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति देता है। **डॉ० अजब सिंह** के अनुसार, ''नवस्वच्छन्दतावादी कवि अपनी प्रगीतात्मकता के रूप में अन्तः एवं बाह्य, चेतन एवं अचेतन की अनुभूतियों का समन्वित रूपायन करता है। इसलिए यहाँ परिवेशगत यथार्थता का भी संस्पर्श विद्यमान रहता है। आज का प्रगीत मात्र वैयक्तिक ही नहीं वरन् वैयक्तिक तथा सामाजिक चेतना से सिक्त होकर नवीन भावबोध को समाहित किये हुए हैं।''[5]

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 206
2. M. H. Abrams *(Ed.) The Narton Anthology of English Literature,* p. 125
3. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 206
4. वही, पृ० 207
5. वही, पृ० 209

स्वच्छन्दतावाद एवं यथार्थवाद

यथार्थवाद अंग्रेजी शब्द **Realism** का हिन्दी पर्याय है, जिसकी उत्पत्ति Realis शब्द से हुई है। Realis का अर्थ ठीक अथवा वास्तविक पदार्थ से है। Realis शब्द का हिन्दी अनुवाद यथार्थ है जिसका अर्थ सत्य, प्रकृत तथा उचित है। यथार्थ से ही 'यथार्थवाद' शब्द निःसृत हुआ है। 'यथार्थवाद' का अर्थ सत्य कथन से[1] अथवा किसी पदार्थ का यथार्थ रूप में वर्णन करना होता है।[2] यथार्थवाद वास्तव में एक दार्शनिक सिद्धान्त है। इस दार्शनिक सिद्धान्त के अनुसार किसी चीज को उसके वास्तविक रूप में वर्णित किया जाना ही यथार्थवाद है।[3] इस प्रकार 'यथार्थवाद' का अर्थ उस सिद्धान्त से है, जिसमें किसी पदार्थ अथवा वस्तु का यथार्थ रूप में वास्तविक वर्णन होता है या वह कथन अथवा अभिव्यक्ति जो सत्य पर आधारित यथार्थ अथवा वास्तविक हो, यथार्थवाद का उत्स बनता है।

यथार्थवाद को प्रारम्भ में 'वाद' के रूप में मान्यता नहीं मिली थी वरन् यह एक चित्रण के रूप में परिलक्षित होता था। 19वीं शताब्दी में यथार्थ अंकन को यथार्थवाद के रूप में उद्धृत किया गया। इस प्रकार यथार्थ-चित्रण एक सशक्त आन्दोलन का आधार पाकर 'वाद' के रूप में जाना जाने लगा और यथार्थ-चित्रण यथार्थवाद बन गया। 20 वीं शताब्दी में यथार्थवाद समाजवादी यथार्थवाद बन जाता है। यथार्थवाद जीवन की वास्तविकता का चित्रण करता है। जीवन की वास्तविकता में यथार्थ अंकन के कारण यथार्थवाद की चेतना सामाजिक होती है और मानवीय अनुभूतियाँ सर्वोपरि होती हैं। अतः यथार्थवाद मानवतावाद का प्रतिरूप है।

यथार्थवाद में जीवित मानव के पूर्ण व्यक्तित्व को कल्पना के साथ समाहित करके अभिव्यंजित किया जाता है। कल्पना के अभाव में यथार्थ-चित्रण सम्भव नहीं हो सकता है। जन-जीवन और जन-नसंघर्षों की वास्तविक पहचान हमें साहित्य में यथार्थ की सही पकड़ कराने में समर्थ होती है।[4] यथार्थवाद समाज, जीवन तथा मनुष्य के सम्बन्ध में मानवीय तथा क्रांतिकारी दृष्टिकोण से, अभिव्यंजना करता है। परिवेश की सच्चाई से अवगत कराना यथार्थवाद की दायित्व चेतना है। इस प्रकार यथार्थवाद सत्य को उजागर करनेवाली कला है और वह उसे ईमानदारी तथा सम्पूर्ण वस्तुपरकता के साथ उजागर करती है।[5] **डॉ० रांगेय राघव** ने यथार्थवाद के सम्बन्ध में कहा है कि जीवित रहने वाले व्यक्ति को चलते समाज के भीतर देखना और उस व्यक्ति के पूर्णत्व को प्रतिबिम्बित करके लोक कल्याण की ओर ले जानेवाला वह वास्तविकता का चित्रण जो उसे उदात्त बनाकर सत्य की ओर प्रेरित करता है, वही वास्तविक यथार्थवाद है।[6]

वस्तुतः यथार्थवादी चिंतन का प्रारम्भिक रूप अठारहवीं शताब्दी के अन्त तथा उन्नीसवीं शताब्दी

---

1. सम्पादक कालिकाप्रसाद, *वृहत् हिन्दी कोश* पृ० 1093
2. सं० नवल जी, *नालन्दा विशाल शब्द सागर,* पृ० 1135
3. सं० सहदेव बाहरी, *राजपाल हिन्दी शब्दकोश,* पृ० 679
4. डॉ० कुँवरपाल सिंह, *मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र और हिन्दी कथा साहित्य,* पृ० 39
5. डॉ० शिवकुमार मिश्र : *यथार्थवाद,* पृ० 15
6. रांगेय राघव : *यथार्थवाद और प्रगति,* पृ ० 6

के प्रारम्भ से ही उभरने लगा था। यह वह समय था जब परम्परावाद और स्वच्छन्दतावाद के बीच संघर्ष चल रहा था। उन्नीसवीं शताब्दी में यथार्थवादी चिंतन ने क्रांतिकारी मोड़ ले लिया था। यथार्थवादी चिंतन जो पूर्व में केवल अन्यान्य विचारधाराओं के समानान्तर जीवन तथा कला सम्बन्धी अभिव्यक्ति की ओर प्रेरित था, इस शताब्दी तक आते-आते साहित्य एवं कला रचना की प्रधान प्रेरक शक्ति बन गया था।

19वीं शताब्दी में यथार्थवाद एक नये रूप में विकसित होता है जिसमें स्वच्छन्दतावादी क्रांतिकारी चेतना स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। इस समय के यथार्थवादी लेखकों की विशेषताओं में सत्य के प्रति अटूट आस्था और ज्ञान की अनन्त पिपासा सर्वोपरि थी। इस समय के लेखकों ने जीवन के सत्यों की अभिव्यंजना और पूँजीवाद की असंगतियों की अभिव्यक्ति में निर्मम आलोचनात्मक रवैया अपना लिया था अतः इस समय के यथार्थवाद को 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' के नाम से अभिहित किया गया। सन् 1917 की रूस की महान् अक्टूबर-क्रांति ने समूचे मानव इतिहास को क्रांतिकारी मोड़ दिया। पहली बार मानवीय शोषण के समस्त औज़ारों को दफन कर एक नये समाजवादी राज्य ने जन्म लिया। इस समाजवादी क्रांति की सफलता के फलस्वरूप विश्व भर के शोषित वर्ग के मन में एक सुखमय भविष्य की आस्था का जन्म हुआ, जिसने पूँजीवाद को सम्पूर्ण विश्व से समाप्त कर दिया। इस प्रकार 20वीं शताब्दी तक आते-आते यथार्थवादी काव्यान्दोलन ने एक नया मोड़ लिया। इस समाजवादी क्रांति के पीछे समाजवादी चेतना काम कर रही थी। इस चेतना ने लेखकों एवं कलाकारों को सामाजिक यथार्थवाद की एक नयी दृष्टि से अवगत कराया जिसने नयी समाजवादी व्यवस्था को जन्म दिया। मार्क्सवादी समाजवादी विचारधारा ने यथार्थवादी काव्यान्दोलन की इस बदलती आकृति को एक नया क्रांतिकारी जामा पहनाया और महान् समाजवादी परिवर्तन के लिए पथ-प्रशस्त किया। **लेनिन** के विचार इस क्रांतिकारी परिवर्तन के प्रेरणास्रोत थे। इन सभी परिस्थितियों ने यथार्थवादी काव्यान्दोलन को एक नया रूप प्रदान किया जो यद्यपि आलोचनात्मक यथार्थवाद के जीवंत तत्त्वों के साथ जुड़ा रहने के बावजूद दृष्टिकोण तथा शैली के स्तर पर एक नयी भूमि पर प्रतिष्ठित हो 'समाजवादी यथार्थवाद' का रूप लेता है। 'समाजवादी यथार्थवादी' चेतना ने विश्व के कला रूपों को यथार्थ की नयी दिशा की ओर अग्रसर किया। इस प्रकार यथार्थवाद का दृष्टि और पद्धति के रूप में आन्दोलनबद्ध विकास का प्रारम्भ सन् 1840 ई० के उपरान्त 19वीं शताब्दी में हुआ। यथार्थवाद ने दुर्बल ह्रासशील एवं बीमार जीवन-दृष्टियों से प्रेरणा ग्रहण की और जो साहित्य प्रस्तुत किया उसके सम्बन्ध में यथार्थवाद के महान् व्याख्याता हंगरीयन दार्शनिक **जार्ज लुकाच** ने यथार्थवाद को कला के अस्वीकार के आन्दोलन और कला के अस्वीकार के साहित्य[1] के रूप में प्रतिष्ठित किया है। **बोरिस सुखोव** ने यथार्थवाद के सम्बन्ध में अपने विचारों को प्रकट करते हुए कहा कि जब कलासर्जक ऐसी किसी वस्तु को आविष्कृत करना चाहता है, जिसे कि वह संभावना की परिधि से बाहर समझता है, सही अर्थों में, वह और कुछ नहीं करता, उसी समग्र के अंगीभूत अंशों को नये रूप में व्यवस्थित और पुनर्प्रस्तुत करता है जिसे हम यथार्थवाद कहते हैं।[2]

वस्तुतः यथार्थवाद यथार्थतः यथार्थ का चित्रण नहीं वरन् यथार्थ का प्रस्तुतीकरण के साथ-साथ

1. जार्ज लुकाच, *कॉटेम्परेरी रियलिज्म,* पृ० 46
2. बोरिस सुखोव, *हिस्ट्री आफ रियलिज्म, पीपुल्स पब्लिकेशन, मोस्का,* पृ० 5

अनुभव करनेवाले कृति के मस्तिष्क की एक झलक देनेवाली कलात्मक प्रवृत्ति है। यथार्थवाद ऐसी मानवीय क्रिया है, जिसके अन्तर्गत सम्पूर्ण मनुष्य द्वारा अपने सर्वांगीण अस्तित्व का सर्वांगीण ढंग से ग्रहण होता है।[1]

यथार्थवाद युगपरक होता है। इसी कारण उद्भव से लेकर आज तक यथार्थवाद की युग-संदर्भता स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है। यथार्थवादी काव्यांदोलन प्रकृतिवाद और स्वच्छन्दतावाद दोनों के ही विरोध में आया था। प्रकृतिवाद के विरोध में यथार्थवाद मानवीय और क्रांतिकारी दृष्टि लेकर आया था। **डॉ० शिवनकुमार मिश्र** के अनुसार, ''यथार्थवाद जिसे हम आलोचनात्मक यथार्थवाद तथा समाजवादी यथार्थवाद के रूप में जानते और समझते हैं, प्रकृतिवाद के विरोध में समाज, जीवन तथा मनुष्य के सम्बन्ध में मानवीय तथा क्रांतिकारी दृष्टि को लेकर हमारे समक्ष आया है।[2]

आलोचनात्मक यथार्थवाद युग-जीवन तथा मानव में व्याप्त विकृतियों के प्रति कठोर आलोचनात्मक रुख अपनाने के साथ-साथ अपनी मानवतावादी रुझान की भी अभिव्यंजना करता है। वहीं दूसरी ओर समाजवादी यथार्थवाद युग-जीवन तथा मानव-जीवन में व्याप्त विकृतियों के मूल कारण ढूँढ़ते हुए, जनसामान्य की अतिचारी अनैतिकता के प्रति विद्रोह की भावना जागृत कर अतिचारी तथा अनैतिक व्यवस्थाओं को सदैव के लिए समाप्त करने का आह्वान करते हुए अपने क्रांतिकारी रुझान का परिचय देता है। समाजवादी यथार्थवाद उन सभी ऐतिहासिक शक्तियों को भी उजागर करता है जो नये समाज की स्थापना का स्रोत है।

जार्ज लुकाच ने **यथार्थवाद** को प्रकृतिवादियों की वस्तुपरकता तथा मनोविश्लेषणवादियों की व्यक्तिपरकता दोनों से ही अलग करके विश्लेषित किया है। **जार्ज लुकाच** के अनुसार, ''यथार्थवाद मिथ्यावस्तुपरकता तथा मिथ्याव्यक्तिपरकता के बीच का कोई मध्य मार्ग नहीं है वरन् इसके विपरीत यह हमारे समय की भूलभुलैया में बिना किसी नक्शे के भटकने वाले लोगों के द्वारा गलत रूप में प्रस्तुत किये प्रश्नों के फलस्वरूप उत्पन्न समस्त प्रकार के झूठे असमंजसों के विरुद्ध सत्य तथा सही समाधानों तक पहुँचानेवाला एक तीसरा रास्ता है।''[3]

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका में यथार्थवादी रचनाकार यथातथ्य वर्णनों पर विश्वास रखते हैं। पश्चिमी विचारक **आर० एम० लावेट** तथा **एच० एस० ह्यूज** का कथन है कि, ''जिस प्रकार विज्ञान विश्व की परिभाषा यांत्रिक शब्दावली में करता है, उसी प्रकार यथार्थवाद का लक्ष्य है, हमारी ज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभूत जगत् का यथातथ्य वर्णन करना।''[4]

एमिल फागे के अनुसार, ''यथार्थवादी कला का तात्पर्य है जीवन और जगत् को यथातथ्य और निष्पक्ष भाव से देखना और उसी प्रकार उनका चित्रण करना।''[5]

इस प्रकार वास्तविकता का सत्य चित्रण तथा तथ्यों के प्रति आग्रह यथार्थवाद की आधारभूत

---

1. कार्ल मार्क्स, *इकानॉमिक एण्ड फिलासफि मेनुस्क्रिप्ट आफ* 1884 (मास्को 1961), पृ० 105
2. डॉ० शिवकुमार मिश्र : *यथार्थवाद,* पृ० 14
3. जार्ज लुकाच, *स्टडीज इन यूरोपियन रियलिज्म,* पृ० 6
4. आर० एम० लावेट तथा एच० एस० ह्यूज : *दि हिस्टरी आफ दि नावेल इन इंग्लैण्ड,* पृ० 324
5. एमिल फागे : *बाल्जक,* पृ० 137

विशेषता है। चिंतन तथा कला के धरातल पर यथार्थवादी रचनाकार अत्यन्त सक्रिय हो सर्जना करता है। अपनी कृति के निर्माण में वह मात्र तथ्य संकलन को ही नहीं वरन् तथ्यों को महत्त्व देता है। यथार्थवादी रचनाकार अपनी कृति वास्तविकता के सत्य चित्रण में वास्तविकता का तथ्यपरक चित्रण न करके उसकी कलात्मक अभिव्यक्ति करता है क्योंकि यथार्थवादी रचनाकार यथार्थ का हूबहू चित्रण नहीं करता वरन् उसमें निहित सत्य का आकलन ही उसका उद्‌देश्य होता है। वह सत्य का अंकन अपनी कला में वैज्ञानिक सत्य के परिप्रेक्ष्य में करता है। वस्तुतः यथार्थवादी रचनाकार सत्य का यथावत् अनुकरण चित्रण न करके सत्य की पुनर्रचना करता है। यथार्थवाद का जीवन की वास्तविकता से गहरा सम्बन्ध होता है अतः यथार्थवाद की चेतना सामाजिक होती है। जीवन से संघर्ष करनेवाला और क्रांति की इच्छा करनेवाला चरित्र यथार्थवादी साहित्य में नायकत्व को ग्रहण कर 'टाइप' अथवा 'प्रतिनिधि' पात्र की संज्ञा पाता है जहाँ इस चरित्र का रूप 'टिपिकल' बन जाता है। वह चरित्र यथार्थवाद का साध्य बन जाता है जिसमें मानव व्यक्तित्व के अंतरंग और बहिरंग दोनों ही पक्ष समाहित रहते हैं। इस प्रकार यथार्थवादी साहित्यकार पात्रों की मनोवैज्ञानिक भूमिका के प्रति भी सजग रहते हैं। यथार्थवादी साहित्य के पात्रों का मनोविज्ञान भी सामाजिक संगति लिये हुए है। उनकी मानसिक विकृतियों का उत्स मन में न होकर सामाजिक जीवन की असंगतियों में है। इसी कारण यथार्थवादी साहित्यकारों ने अपने पात्रों के अन्तर्मन को, उनकी बाह्य जीवन की जटिलताओं के बावजूद, मनोविश्लेषणवादियों की अपेक्षा अधिक सफलता से उजागर किया है और यही यथार्थवाद की उत्कृष्टता है।

यथार्थवाद मानव-जीवन से सम्बन्धित है अतः इसमें केवल मानव से सम्बन्धित सामाजिक-आर्थिक समस्याएँ, विविध प्रकार के जीवन-संघर्ष, सामाजिक दुःख-दैन्य जैसे विषयों का ही अंकन नहीं होता वरन् यथार्थवाद में युग-जीवन की समस्त वास्तविकता के सत्य का अंकन होता है। मानव तथा मानव-जीवन से सम्बन्धित समस्त विषय इसकी परिधि में आते हैं। यथार्थवाद में जीवन का उसकी पूर्ण समग्रता के साथ अंकन होता है। यहाँ तक कि प्रकृति-सौन्दर्य जो मानव-मन में सौन्दर्य की संवेदना उत्पन्न कर रसबोध जागृत करता है यथार्थवादी साहित्य की अभिव्यंजना का भी क्षेत्र है। यथार्थवादी साहित्यकारों ने प्रकृति के रमणीय चित्रांकन के साथ-साथ प्रेम तथा सौन्दर्य की मोहक अभिव्यंजनाओं को भी अपनी सर्जना में स्थान दिया है। यथार्थवादी रचनाकार ही अपनी शृंगारिक चेतना को दाम्पत्य तथा वात्सल्य की ओर भी उन्मुख करते हैं, जिनका दूसरे कवियों में लगभग अभाव है। समग्रतः जीवन की कोमल और रागात्मक अनुभूतियाँ भी यथार्थवादी साहित्य का अभिन्न अंग है।[1]

कल्पना के अभाव में वास्तविकता का यथार्थ चित्रण संभव नहीं है क्योंकि यथार्थ एवं कल्पना के समन्वित रूप से ही कला का जन्म होता है। कवि की सर्जनात्मक तथा सक्रिय कल्पना ही यथार्थ को एक नवीन रूप में विश्लेषित करती है। सक्रिय एवं सर्जनात्मक कल्पना भी यथार्थवादी अंकन करती है। कल्पना के अभाव में काव्य का सर्जन असंभव है। कल्पना एवं यथार्थ के समन्वय से उत्कृष्ट काव्य की सर्जना होती है। साहित्यकार यथार्थवादी धरातल पर जीवन अनुभूतियों की अभिव्यंजना सक्रिय कल्पना के परिप्रेक्ष्य में करता है। सक्रिय कल्पना ही विशुद्ध एवं यथार्थपरक कल्पना है। अतः यथार्थवाद कल्पना का विरोधी नहीं है क्योंकि बाह्य यथार्थ की पुनर्रचना के लिए कल्पना तत्त्व आवश्यक

---

1. डॉ० शिव कुमार मिश्र : *यथार्थवाद,* पृ० 220

है। **गोर्की** ने भी कल्पनतत्त्व को बिम्बों में, सोचने की प्रक्रिया मानते हुए कहा है कि साहित्य सर्जना की कला जिसका सम्बन्ध सामान्य या प्रतिनिधि चरित्रों के निर्माण से है- कल्पना विदग्धता तथा आविष्कारिता की अपेक्षा रखती है।"[1]

इस प्रकार बिम्बों से ही हमें स्मृति प्राप्त होती है जो कल्पना को जन्म देती है। यथार्थवाद में वायवी, यथार्थ से कटी हुई तथा रहस्यवादी कल्पना का अस्वीकार है। वह कल्पना जिसके पीछे अनुभव तथा यथार्थ की स्थिति होती है यथार्थवादी साहित्य के लिए स्वीकार्य है क्योंकि सच्ची कल्पना कभी भी यथार्थ अनुभवों से कटी या अलग नहीं हो सकती। किसी भी यथार्थवादी रचना का रूप कल्पना के अभाव में अपनी साहित्यिक विशिष्टता एवं कलात्मकता को स्थिर नहीं रख सकता।

यथार्थवादी चेतना साहित्यिक चेतना एवं लोक-चेतना को भी समाहित करती चलती है। इसका कारण यह है कि लोक-कला यथार्थवादी कला का अद्यतन प्रतिरूप है, जिसमें लोक-परिवेश, लोक-संस्कृति तथा लोक-साहित्य की अभिव्यंजना गीतों के माध्यम से होती है।

यथार्थवादी लेखक सामाजिक-चेतना तथा लोक-चेतना का आदर करते हुए जीवन की वास्तविकता का चित्रण करता है। यथार्थवादी साहित्यकार उपदेशात्मकता से दूर रहता है क्योंकि उसका कार्य उपदेश देना नहीं वरन् अपनी कला के माध्यम से जीवन का यथार्थ एवं वास्तविक चित्रण है। जब तक लेखक जीवन की सम्पूर्ण क्रियाओं को नहीं समझता, तब तक वह यथार्थवादी लेखक कहलाने का अधिकारी नहीं।[2] सत्य एवं वास्तविकता के मूल्य निरन्तर बदलते रहते हैं। इस सम्बन्ध में जार्ज लुकाच ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है कि सत्य और वास्तविकता निरन्तर बदलते हुए मूल्य हैं। यथार्थवाद इनका सही परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन है।[3]

डॉ० अजब सिंह के अनुसार, "यथार्थवादी कला में साहित्यकार सामाजिक चेतना से आक्रांत होकर प्रस्तुति करता है, तर्क का भी सहारा लेता है। इस प्रकार रूप और वस्तु का सही समन्वय ही सही यथार्थवाद है।[4]

मार्क्सवादी आलोचक **जार्ज लुकाच** ने यथार्थवाद को दो भागों में विभाजित किया है।[5]

1. आलोचनात्मक यथार्थवाद।
2. समाजवादी यथार्थवाद।

आलोचनात्मक यथार्थवादी साहित्य का जन्म यथार्थवादी साहित्य के उदय के साथ-साथ 19वीं तथा 20वीं शताब्दी में प्रकृतिवादी दृष्टिकोण के विरोध में हुआ था। वास्तविक जीवन को उसकी वस्तुपरकता में सच्चाई एवं ईमानदारी से परखने, अवलोकन करने तथा चित्रित करनेवाला यह साहित्य जब विकसित हुआ तो मार्क्सवादी आलोचकों ने इसे 'आलोचनात्मक यथार्थवादी साहित्य' के नाम से अभिहित किया और इसमें निहित यथार्थ चेतन दृष्टि को 'यथार्थवादी दृष्टि' का नाम दिया। यह आलोचनात्मक यथार्थवाद आज साहित्य के सभी रूपों में व्याप्त है।

---

1. **मैक्सिम-गोर्की** : *ऑन लिटरेचर,* पृ० 29-30
2. डॉ० कुँवर पाल सिंह : *मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र और हिन्दी कथा-साहित्य,* पृ० 37-38
3. जार्ज लुकाच, *स्टडीज इन यूरोपियन रियलिज्म,* पृ० 35
4. डॉ० अजब सिंह *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 125
5. जार्ज लुकाच : *दि मीनिंग आफ कन्टमपरेरी रियलिज्म,* पृ० 93

समाजवाद की स्थापना के बाद प्रगतिशील आस्थावाले सोवियत लेखों ने यथार्थवाद को एक नवीन संदर्भ में व्याख्यायित किया। साथ ही, यह भी आवश्यक समझा गया कि उसे समाजवादी दृष्टिकोण से रहित, प्रचलित यथार्थवादी दृष्टिकोण से अलग एक नवीन आधार दिया जाये और एक नवीन नाम से अभिहित किया जाय जिससे उसकी अपनी विशिष्ट पहचान बन सके। अतएव इस नये दृष्टिकोण को 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' के नाम से अभिहित किया गया। 'समाजवादी यथार्थवाद' से भिन्न आलोचनात्मक यथार्थवाद नामकरण के सम्बन्ध में यह तर्क प्रस्तुत किया गया है कि 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' में समाजवादी दृष्टि की निष्क्रियता बनी हुई तथा यह यथार्थवाद स्वयं में युग-जीवन तथा सामाजिक विकृतियों एवं विरूपताओं के प्रति एक सहज आलोचनात्मक दृष्टि रखता है न कि रचनात्मक संभावनाओं को अपनी चेतना में उजागर करने की इच्छा। मार्क्सवादी साहित्यिक आलोचकों ने **आलोचनात्मक यथार्थवाद** को **बुर्जुआ यथार्थवाद** का नाम दिया किन्तु **गोर्की** ने 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' को 'बुर्जुआ यथार्थवाद' से भिन्न माना है। 'बुर्जुआ यथार्थवाद' में गोर्की ने दो प्रकार के यथार्थवादी साहित्यकारों की चर्चा की है। प्रथम प्रकार के बुर्जुआ यथार्थवाद अपने वर्ग-हितों से जुड़े रहने के कारण अपनी कृतियों में अपने वर्ग का गौरव गान करते हुए, अपने वर्ग-चरित्र को नहीं छोड़ते जबकि दूसरे प्रकार के बुर्जुआ यथार्थवादी साहित्यकार अपने वर्ग-हितों का तथा वर्ग-स्वार्थ का अतिक्रमण कर अपने वर्ग की तीखी आलोचना में संलग्न रहते हैं। दूसरे प्रकार के बुर्जुआ यथार्थवादी साहित्यकार ही 'आलोचनात्मक यथार्थवादी साहित्यकार' होते हैं, जो आलोचनात्मक यथार्थवाद का विकास करते हैं। **गोर्की** ने इन सभी लेखकों को 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' या 'क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद' का स्रष्टा कहा है।[1]

'आलोचनात्मक यथार्थवादी' साहित्यकारों को **गोर्की** ने असाधारण प्रतिभा से प्रसूत माना है। इन लेखकों की प्रतिभा को स्वीकृति प्रदान करते हुए **गोर्की** ने माना है कि इस प्रकार के लेखकों की कृतियों के माध्यम से सामाजिक वैयक्तिकता के निर्माण की तो आशा नहीं की जा सकती है क्योंकि इस प्रकार के लेखक वस्तु की प्रतिष्ठा के स्थान पर उसकी केवल आलोचना ही कर सके है, ऐसा करके ये लेखक स्वयं उन सभी तर्कों का समर्थन करने लगते हैं जो कभी स्वयं उन्हें अस्वीकार थे। **गोर्की** ने इन लेखकों में सृजनात्मक सृष्टि का अभाव कहा है।[2] **अन्स्टफिशर** ने आलोचनात्मक यथार्थवाद को पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति रोमानी विद्रोह तथा बुर्जुआ मूल्यों को स्वीकार का प्रतिफल मानते हुए कहा है कि, ''आलोचनात्मक यथार्थवाद'' पूँजीवाद व्यवस्था के खिलाफ इसी अकेले अहं के रोमानी विद्रोह तथा बुर्जुआ मूल्यों के प्रति एक ऐसे विलक्षण अस्वीकार का प्रतिफल है, जिसमें अभिजात तथा गवाँरू (ऐरिस्काक्रेटिक एण्ड प्लेबियन) दोनों प्रकार की मानसिकता घुली-मिली है।[3]

अपनी इस टिप्पणी के माध्यम से **अर्न्स्टफिशर** ने आलोचनात्मक यथार्थवाद में प्रारम्भ से ही स्वच्छन्द भाव-बोध की प्रतिक्रियाओं को निहित कर, स्वच्छन्दतावाद एवं यथार्थवाद को एक-दूसरे के विपरीत तथा विरोधी नहीं माना वरन् उसने तो 'स्वच्छन्दतावाद' को आलोचनात्मक यथार्थवाद का प्रारम्भिक दौर माना है। इस संदर्भ में **अर्न्स्टफिशर** ने लिखा है कि, ''आलोचनात्मक यथार्थवाद' में दृष्टिकोण के स्तर पर उससे कोई आधारभूत भिन्नता नहीं दिखायी देती, हाँ, तरीके या पद्धति में जरूर

---

1. डॉ० शिवकुमार मिश्र : *यथार्थवाद,* पृ० 40
2. मैक्सिम गोर्की : *ऑन लिटरेचर,* पृ० 242
3. अर्न्स्टफिशर : *दि नेसेसिटी आफ आर्ट,* पृ० 103

अन्तर आ गया है। वह पहले से अधिक वस्तुपरक, अधिक तटस्थ और अधिक दूरवर्ती हो गई है।"[1]

अन्स्टफिशर की उपर्युक्त मान्यता सत्य की सम्पूर्ण वास्तविकता को व्यक्त करने में असमर्थ रही है। आलोचनात्मक यथार्थवाद के प्रारम्भिक लेखकों एवं उनकी कृतियों में रोमानी विद्रोह की भावना तथा परिवेशगत विकृतियों एवं असंगतियों के प्रति पीड़ा की भावुकता तीखी एवं निर्मम प्रतिक्रियाएँ अवश्य दृष्टिगोचर होती हैं और इस प्रकार आलोचनात्मक यथार्थवाद का प्रवेश स्वच्छन्दतावाद की सीमाओं के भीतर ही दिखायी देता है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि, 'आलोचनात्मक यथार्थवाद' 'स्वच्छन्दतावाद' हो गया।

आलोचनात्मक यथार्थवादी साहित्यकारों ने पूँजीवादी आक्रांताओं के समक्ष अपनी कला दृष्टि और कलात्मक चेतना को समर्पित नहीं होने दिया था वरन् वे और अधिक गहराई एवं सूक्ष्मता से वस्तुगत यथार्थ का अवलोकन करते रहे हैं अपनी सम्पूर्ण निष्ठा, ईमानदारी एवं सत्यता के साथ यथार्थ का वास्तविक अंकन अपनी कृतियों में मूर्त करते रहे। उन्होंने पूँजीवादी शोषण के विरोध का पर्दाफाश किया, पूँजीवाद के शोषक चरित्र के विरोध में विद्रोह करते हुए उसे धिक्कारा तथा शोषित मानवता के प्रति हमदर्दी जाहिर करते हुए उसके उत्थान का प्रयत्न किया। कुछ आलोचनात्मक यथार्थवादी साहित्यकारों ने अपनी कृतियों में व्यापक यथार्थ को न लेकर यथार्थ के सीमित क्षेत्र को ही अपनी दृष्टि का क्षेत्र बनाया। आलोचनात्मक यथार्थवादी साहित्यकारों में **बाल्ज़क, मोपासा, गोनकोर्टबन्धु, तोल्स्टोय, टामस** आदि तथा इंग्लैण्ड के **थेकरे, फील्डिंग तथा डिकेंस** जैसे कथाकारों का नाम सदैव स्मरणीय रहेगा, इन्हीं कथाकारों के माध्यम से आलोचनात्मक यथार्थवाद अपनी सम्पूर्ण शक्ति, सीमाओं व प्रमाण के साथ परखा और विश्लेषित किया जा सकता है।

आलोचनात्मक यथार्थवाद और **समाजवादी यथार्थवाद** मूलतः एक-दूसरे से भिन्न हैं। समाजवादी यथार्थवाद में समाजवादी दृष्टिकोण निहित है जबकि आलोचनात्मक यथार्थवाद में इसका अभाव है। यदि समाजवादी यथार्थवाद से उसकी मूल चेतना 'समाजवादी दृष्टिकोण' को अलग कर दिया जाए तो आलोचनात्मक यथार्थवाद तथा समाजवादी यथार्थवादी इन दोनों में कोई भी तात्त्विक पार्थक्य नहीं दृष्टव्य होगा। **जार्ज लुकाच** आलोचनात्मक तथा समाजवादी यथार्थवाद के सहज मिलाप की अपेक्षा रखते हुए यथार्थवादी कला का भविष्य निश्चित करते हैं। **बाल्ज़क** के कृतित्व पर चर्चा करते हुए जार्ज लुकाच ने आलोचनात्मक यथार्थवादी विशेषताओं को विश्लेषित किया है। जार्ज लुकाच ने माना है कि **बाल्ज़क, रोमारोला, स्टेंडल, गोनकोर्टबन्धु** इत्यादि यथार्थवादी साहित्यकारों ने आलोचनात्मक यथार्थवादी साहित्य को विशिष्ट ऊँचाईयों तक पहुँचाया। इसी कारण उनकी कृतियाँ किसी एक युग अथवा एक राष्ट्र की सम्पत्ति न बनकर आज भी सम्पूर्ण प्रगतिशील मानवता की धरोहर हैं। **बाल्ज़क** की कामेडी **'ह्यूमेन'** नाम से लिखी गयी उपन्यास श्रृंखला आलोचनात्मक यथार्थवाद को उसकी चिरस्मरणीय देन है।[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि आलोचनात्मक यथार्थवाद की उपलब्धियाँ न केवल व्यापक हैं अपितु

---

1. अन्स्टफिशर : *दि नेसेसिटी आफ आर्ट,* पृ० 103
2. राल्फ फाक्स : *दि नॉवेल एण्ड दि पीपुल,* पृ० 111

बहुआयामी भी हैं। **कार्ल मार्क्स** ने आलोचनात्मक यथार्थवादी कलाकारों के विषय में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा है कि ''सत्य के प्रति अप्रहित निष्ठा, सूक्ष्म पर्यवेक्षक, समग्र आकलन, वस्तुगत यथार्थ का निर्मम उद्घाटन, चित्रण की समग्रता उसका पारदर्शी स्वरूप, गहरी सामाजिक निष्ठा तथा अकृत्रिम मानवीय संवेदना, यांत्रिकता का तिरस्कार, सजीव और सप्राण मानव चरित्र-चित्रण के अन्तर्गत 'टाइप' की सृष्टि और उसे दोहरी भूमिका पर उसके वैयक्तिक तथा सामाजिक इतिहास के साथ मूर्त करना, महाकाव्यात्मक औदात्य-दृष्टिकोण तथा चित्रण, दोनों धरातलों पर निष्क्रिय तटस्थता से हटकर युग जीवन की गतिविधियों में इनका सजग और सचेष्ट 'इनवाल्वमेंट' कुछ ऐसी बातें हैं, जो आलोचनात्मक यथार्थवाद को महनीयता प्रदान करती हैं इसे यथार्थवादी कला की धरोहर सिद्ध करती हैं।''[1]

आलोचनात्मक यथार्थवाद की उपर्युक्त विशेषताओं की महनीयता एवं उपलब्धि के परिप्रेक्ष्य में **जार्ज लुकाच** ने आलोचनात्मक यथार्थवाद और समाजवादी यथार्थवाद के सामंजस्य की आवश्यकता को प्रतिपादित किया है।[2] समाजवादी यथार्थवाद के प्रवर्तक **मैक्सिम गोर्की** ने जब समाजवादी यथार्थवाद की रूपरेखा प्रस्तुत की तो आलोचनात्मक यथार्थवाद की उपलब्धियों को एक मूल्यवान विरासत के रूप में ही स्वीकार किया, साथ ही, नयी पीढ़ी के समाजवादी लेखकों से भी यही आग्रह व अपेक्षा की थी।[3]

आलोचनात्मक यथार्थवाद सभी मूलभूत विशेषताओं के बावजूद अपना कोई भविष्य निर्धारित नहीं कर सका, यद्यपि यथार्थवाद यहाँ आलोचनात्मक यथार्थवाद की अपेक्षा स्वयं मजबूत स्थिति को प्राप्त हुआ था क्योंकि समाजवादी यथार्थवाद में वह समाजवादी दृष्टि निहित थी आलोचनात्मक यथार्थवाद में जिसका अभाव था। वस्तुतः आलोचनात्मक यथार्थवाद में वैचारिकता का अभाव था जिसके कारण आलोचनात्मक यथार्थवादी साहित्यकार आगत भविष्य को देखने में समर्थ था और केवल वर्तमान में ही घूमता रहा।

यद्यपि आलोचनात्मक यथार्थवाद में वैज्ञानिक दृष्टि का अभाव था किन्तु फिर भी इस यथार्थवाद ने अपने युग के अन्तः एवं बाह्य परिवेश की अमानवीयता, समाज, व्यवस्था का अंकन ईमानदारी जीवन्तता एवं प्राणवत्ता के साथ किया है तथा अपने समय के मनुष्य की पीड़ा तथा उसके निजी एवं सामाजिक जीवन का सम्पूर्ण परिवेश के परिप्रेक्ष्य में चित्रित करना इसकी अपनी विशेषता रही है। आलोचनात्मक यथार्थवाद की उपर्युक्त विशेषताओं के कारण आज भी यह साहित्य सम्पूर्ण मानवता की सम्माननीय धरोहर है। किसी भी कला को उत्कृष्टता प्रदान करने के लिए आलोचना एवं समाजवादी यथार्थवाद के सहज मिलन की अपेक्षा रहती है।

20वीं शताब्दी तक आते-जाते यथार्थवादी कलान्दोलन एक क्रान्तिकारी मोड़ लेकर एक नये रूप में उदित हुआ। सन् 1917 की रूस की महान् क्रांति ने पूँजीवादी व्यवस्था को समाप्त कर एक नयी चेतना को जाग्रत किया, जिसके फलस्वरूप समाजवादी क्रांति ने जन्म लिया और यथार्थवादी कलान्दोलन भी उससे अछूता न रह सका। मार्क्सवादी समाजवादी विचारधारा ने इस क्रांति को एक

---

1. मार्क्स : *न्यूयार्क ट्रिब्यून* 1959 ई० में मार्क्स का 19वीं शताब्दी के आलोचनात्मक यथार्थवादी उपन्यासकारों के विषय में वक्तव्य
2. जार्ज लुकाच, *दि मीनिंग आफ कन्टमपरेरी रियलिज्म,* पृ० 108
3. गोर्की : *ऑन लिटरेचर,* पृ० 242

अनोखे पथ पर अग्रसर किया जहाँ लेनिन के विचार इस क्रांतिकारी परिवर्तन के प्रेरणास्रोत बने। पूँजीवादी व्यवस्था की समाप्ति, रूस की महत्ता क्रांति तथा लेनिन के क्रान्तिकारी विचार इन सभी परिस्थितियों ने यथार्थवादी कलान्दोलन को एक नया रूप प्रदान किया जिससे समाजवाद का सपना साकार करते हुए यथार्थवादी कलान्दोलन को, नई चेतना से सराबोर कर नयी दिशा की ओर अग्रसर करते हुए 'समाजवादी यथार्थवाद' के सिंहासन पर प्रतिष्ठापित किया। यथार्थवाद का यह नवीन रूप आलोचनात्मक यथार्थवाद के जीवन्त तत्त्वों से तो अवश्य जुड़ा हुआ था किन्तु दृष्टिकोण तथा शैली दोनों स्तरों पर यह आलोचनात्मक यथार्थवाद से भिन्न था। स्वयं में निहित समाजवादी प्रेरणा तथा वैज्ञानिक दृष्टि के कारण इस नये यथार्थवाद का नामकरण 'समाजवादी यथार्थवाद' के नाम से किया गया। **मैक्सिम गोर्की** ने सोवियत लेखकों की सन् 1934 ई० की पहली कांग्रेस में समाजवादी यथार्थवाद का सर्वप्रथम उल्लेख किया जिसे कालान्तर में मार्क्सवादी साहित्यकारों एवं समीक्षाओं ने अपने साहित्य चिंतन के अन्तर्गत सर्वोच्च एवं कलात्मक प्रतिमान के रूप में प्रतिष्ठापित किया।

इस प्रकार 'समाजवादी यथार्थवाद' यथार्थवादी कलान्दोलन के विकास की नव्यतम मंजिल के रूप में विद्यमान है। यह एक नये प्रकार का कलात्मक विचार है, जिसे आलोचनात्मक यथार्थवादी कला से अलग नहीं किया जा सकता। इसका जन्म आलोचनात्मक यथार्थवादियों की दृष्टि की असमर्थता के कारण हुआ था। यह यथार्थवादी कलादृष्टि आलोचनात्मक यथार्थवादियों की तुलना में मनुष्य, समाज, जीवन तथा उसके यथार्थ को वास्तविक सत्य की सम्पूर्णता में देखने और अभिव्यंजित करनेवाली एक रचनात्मक दृष्टि है जो स्वयं में भविष्य के नये और यथार्थवादी कला सृजन की महत्वपूर्ण भूमिकाएँ संलग्न करती है। **गोर्की** ने 'समाजवादी यथार्थवाद' के रूप को विश्लेषित करते हुए 'क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद' की संज्ञा दी है। समाजवादी यथार्थवाद के स्वरूप को विश्लेषित एवं व्याख्यायित करते हुए कहा है कि समाजवादी यथार्थवाद ऐसे सम्पूर्ण साहित्य के विकास में एक नयी दिशा थी जो साहित्य संसार के क्रांतिकारी पुनर्निर्माण के विचार से प्रेरित था। ये विचार-समाजवादी मानववाद के हैं। यह ऐसे साहित्य के विकास में नई दिशा थी जो साहित्य मनुष्य का वर्णन उसके स्थिर रूप में नहीं करता बल्कि उसके सदैव गतिशील, क्रियाशील, पारस्परिक संघर्ष, वर्ग, संघर्ष, समूह-संघर्ष और व्यक्तिगत रूपों में करता है।[1]

इस प्रकार **गोर्की** ने यथार्थवाद के जिस रूप को व्याख्यायित किया है वह तटस्थ अथवा चित्रात्मक नहीं है वरन् वह यथार्थवाद और कल्पना के सजीव सम्मिश्रण पर बल देता है। **गोर्की** ने इस बात पर भी बल दिया कि जनता की आशा, आकांक्षाओं को मूर्त रूप देने की दिशा में महत्त्वपूर्ण प्रेरणा वही कृति बन सकती है जो यथार्थवाद तथा कल्पना के सम्मिश्रण के ढाँचे में ढली हो। समाजवादी यथार्थवाद की एक व्यवस्थित परिभाषा देते हुए **गोर्की** ने कहा कि, "समाजवादी यथार्थवाद एक विचार है, जो यथार्थवादी और कल्पनाशील है तथा सामाजिक अनुभव के ऊपर आधारित है।[2]

इस प्रकार **गोर्की** समाजवादी यथार्थवाद को एक ऐसी विचारधारा मानता है, जो यथार्थवादी एवं कल्पनाशील होने के साथ-साथ समाजवादी अनुभूति पर आधारित है। इस यथार्थवादी और कल्पना के समन्वित रूप में समाजवादी यथार्थवादी कला एक नयी चेतना के क्षेत्र में पदार्पण करती है।

---

1. A. Ovcharenko : *Socialist Realism and the Modern Literary Process*, page 68
2. डॉ० अजब सिंह *नवस्वच्छन्दतावाद*, पृ० 132 (उद्धृत)

सामाजिक अनुभूतियाँ, यथार्थ और कल्पना के माध्यम से समाजवादी यथार्थ के क्रांतिकारी रूप और स्वच्छन्दतावाद के नये आयाम नवस्वच्छन्दतावाद के साथ जुड़ जाती हैं। **अलेक्जेण्डर फेडवे** ने भी यह माना है कि समाजवादी यथार्थवाद अपने में क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद को लिये हुये हैं। समाजवादी यथार्थ का अभ्युदय सर्वप्रथम रूस की धरती पर हुआ था अतः सोवियत श्रमिकों का जीवन यथार्थ साहित्य का प्रेरणास्रोत होने के कारण स्वच्छन्दतावाद साहित्य का विरोधी नहीं वरन् जनजीवन के प्रगाढ़ सम्बन्ध होने के आधार पर इस साहित्य से अत्यन्त घुल-मिल जाता है। इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद मानव-अनुभूतियों की स्वच्छन्द एवं यथार्थ अभिव्यंजना है अतः बिना स्वच्छन्दतावाद के मानव अनुभूतियों की अभिव्यंजना कठिन नहीं बल्कि असंभव है। अतः समाजवादी यथार्थवाद स्वच्छन्दतावादी कला के परिप्रेक्ष्य में विकसित मानव-जीवन की अनुभूतियों को चित्रित करनेवाली एक प्रवृत्ति है जिसमें समाजवादी यथार्थवाद और स्वच्छन्दतावादी रुझान दोनों मिलकर एक भिन्न प्रकार का मिश्रण बनाते हैं। इसमें समाजवादी यथार्थवाद स्वच्छन्द प्रवृत्ति को वायवी होने से बचाता है तथा स्वच्छन्द प्रवृत्ति कला के स्तर को उभारती है। इन दोनों को अलग-अलग नहीं देखा जा सकता। इन दोनों को अलग-अलग देखने से कविता की अन्विति को आघात पहुँचता है।[1]

अनातोली लुना चार्स्की ने भी समाजवादी यथार्थवाद और स्वच्छन्दतावाद के अन्तः सम्बन्ध को स्वीकार करते हुए कहा कि, "हमारा स्वच्छन्दतावाद समाजवादी यथार्थवाद का प्रमुख अंग है। कुछ अंशों तक स्वच्छन्दतावादी तत्त्व के अभाव में समाजवादी यथार्थवाद की कल्पना नहीं की जा सकती। यही तत्व इसे तटस्थ चित्रण मात्र होने से बचाता है।"[2]

गोर्की ने भी यथार्थवाद एवं स्वच्छन्दतावाद के मिश्रण के सिद्धान्त का विरोध किया किन्तु अंततः वह इस निष्कर्ष पर आया कि समाजवादी यथार्थवाद की व्यापकता अपने में एक तत्व क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद को लिए हुए है और इससे अधिक इसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं है।[3]

अतः समाजवादी यथार्थवाद ही वास्तविक यथार्थवाद है, जिसके अनेक रूप हैं। क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद में कलात्मक जीवन्तता तभी आती है जब उसमें यथार्थ, कल्पना तथा स्वच्छन्द प्रवृत्ति का सहज मिलाप हो। अतः क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद को जीवन और जगत् से पृथक् नहीं किया जा सकता वरन् यह जीवन-दृष्टि के द्वारा देखी गयी जगत् की एक कलात्मक अभिव्यक्ति है।[4]

वस्तुतः साहित्यकार स्वच्छन्द दृष्टि व कल्पना के द्वारा अपनी सर्जनात्मक अभिव्यंजना में सर्वहारा संस्कृति की प्रस्तुति करता है। यहाँ कवि की अभिव्यक्ति को मानववादी विचारधारा से अधिक बल मिलता है क्योंकि इसमें मानववाद के क्रांतिकारी रूप की अभिव्यंजना होती है।

इस प्रकार समाजवादी यथार्थवाद एक नये विचार एक नई चेतना का प्रतिनिधित्व करता है यह चेतना समूह के संघर्षों के फलस्वरूप संचालित होती है और यह समाजवादी विचारधारा

---

1. Yuri Barabash, *Aerthetics and Poetics*, p. 133
2. A. Ovcharenko, *Socialist Realism and Modern Literary Process, p. 160-161.*
3. डॉ० अजब सिंह *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 133
4. A. Ovcharenko, *Socialist Realism and Modern Literary Process, p. 160-161.*

मानव-कल्याण के क्रांतिकारी विकास को सुनिश्चित करती है। समाजवादी यथार्थवाद शोषित वर्ग की ऐतिहासिक चेतना की कलात्मक अभिव्यक्ति है। इस कला में क्रांतिकारी जीवन-निर्माण में संघर्षरत मानव के जीवन, जीविका, उसके चरित्र एवं नैतिक सिद्धान्तों के क्रांतिकारी परिवर्तन की अभिव्यंजना होती है। यह अभिव्यंजना मानव की एक विशिष्ट मानव के रूप में पहचान कराती है और इसी बिन्दु पर मानव नव-मानव के रूप में जगत् में अवतरित होता है क्योंकि संघर्षरत मानव ही समाजवादी यथार्थवादी रचनाओं का नायक होता है। यही नवमानव अपने जीवन-अंकन में निरन्तर क्रांतिकारी विकास-पथ पर गतिशील है।

यथार्थ का सम्बन्ध मनुष्य के व्यक्तित्व और अस्तित्व दोनों के कारण समाजवादी यथार्थवाद क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावादी संदर्भ में सांसारिक साहित्य में मानव-कल्याण की कलात्मक उपलब्धि एवं साहित्यिक विकासात्मक यात्रा में पूँजीवाद से समाजवाद और साम्यवाद की ओर संक्रमण है।

गोर्की समाजवादी यथार्थवाद का जनक तथा सर्वहारा चेतना का महान् साहित्यकार भी है। **गोर्की** के उपन्यास **माँ** में इस चेतना को विस्तृत फलक मिला है और इसी उपन्यास को समाजवादी यथार्थवादी कला की पहली कृति के रूप में स्वीकृति भी मिल चुकी है।

मार्क्सवादी भी यह स्वीकारते हैं कि स्वच्छन्दतावाद का एक क्रांतिकारी रूप होता है। यही कारण है कि **गोर्की** ने स्वच्छन्दतावाद के क्रांतिकारी रूप को समाजवादी यथार्थवाद कहा है। इसका कारण यह है कि स्वच्छन्दतावादी कवियों में ग़जब की यथार्थवादी दृष्टि होती है जो उनमें मानव-जीवन को समझने व परखने की अद्‌भुत क्षमता पैदा करती है और इसी कारण स्वच्छन्दतावादी कवि जनसाधारण के कष्टों का चितेरा बन जाता है। सामाजिक कष्टों एवं व्यथा से जागृत मानवी आत्मा यथार्थवादी रूप धारण करती है उसी प्रकार सम्पन्न परिस्थितियों, अपनी भावनाओं के धरोहर-खजाने से चेतन मानवीय आत्मा भाव एवं कल्पना की भावना से प्रसूत रोमांटिक हो जाती है। अतः यथार्थवाद तथा स्वच्छन्दतावाद दोनों में परिस्थिति वैषम्य अधिक दिखायी देता है। यथार्थवादी साहित्यकार का दृष्टिकोण बहिर्मुखी है। उसकी भावनाएँ बाह्य वास्तविक जीवन-संघर्ष से जन्म लेती हैं जबकि स्वच्छन्दतावादी साहित्यकार आन्तरिक दृष्टिकोण को अपनाता है और उसका रुझान आन्तरिक जगत् की ओर है, अतः प्रत्येक यथार्थ स्थिति स्वयं में स्वच्छन्द वृत्ति को लिये होती है। अतः यथार्थवादी कवि अथवा लेखक, स्वच्छन्द प्रवृत्ति का होता है। **गोर्की** ने स्वयं इस सम्बन्ध में अपने विचारों को व्यक्त करते हुए कहा है कि महान् लेखकों, स्वच्छन्दतावादी साहित्यिक तथा यथार्थवादी साहित्यकारों के मध्य वैभिन्य बताना अत्यधिक कठिन है क्योंकि उनमें यथार्थवाद और स्वच्छन्दतावाद के तत्त्व दूध-पानी के समान घुले-मिले रहते हैं। मानव-जीवन की विविधता में कहीं-न-कहीं किसी न किसी रूप में स्वच्छन्दतावादी तत्त्व विद्यमान रहते हैं। दूसरे शब्दों में इसे यह भी कह सकते हैं कि जीवन की यथार्थता वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी चेतना ही है; क्योंकि जीवन की यथार्थता के रूप में स्वच्छन्दतावादी चेतना की ही अभिव्यंजना होती है।

स्वच्छन्दतावाद में यथार्थता की पहचान **नवस्वच्छन्दतावाद** के रूप में होती है क्योंकि यथार्थ से कटा मात्र कल्पना से जुड़ा साहित्य नवस्वच्छन्दतावाद के सिंहासन पर प्रतिष्ठित नहीं हो सकता। नवस्वच्छन्दतावादी काव्य-कला मानव तथा प्रकृति की सुन्दर मंजूषा है क्योंकि नवस्वच्छन्दतावाद में दैवी भावना तथा अतिमानवता को मानव-रूप में तथा अति-प्राकृतिकता को प्रकृति-रूप में अभिव्यंजित

अभिव्यंजना प्रवाह में केवल प्रकृति और मानव-जीवन की झाँकियाँ ही प्रधान विषय होती हैं। यहाँ यथार्थवादी चिन्तन के अधिक गहरा होने से ही स्वच्छन्दतावाद को नवस्वच्छन्दतावाद के नाम से पुकारा जाता है। इसका कारण यह भी है कि यथार्थता समकालीनता की अभिव्यक्ति में सहायक होती है जो नवस्वच्छन्दतावादी काव्य-कला को जीवन्त एवं गतिशील बनाती है और यही इसकी वैचारिक उत्कृष्टता है, अस्मिता है। वैज्ञानिक उपलब्धियाँ तथा सामाजिक परिस्थितियों से प्रसूत कविता आधुनिकता के संदर्भ में यथार्थवादी चेतना से आकर मिलती है जिसकी स्वच्छन्दतावादी चेतना अपना त्वरित विस्तार करती है। इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी तथा यथार्थवादी बोध के समन्वय से स्वच्छन्दतावाद नये रूप में एक नया संदर्भ ग्रहण कर 'नवस्वच्छन्दतावाद' बन जाता है। **डॉ० अजब सिंह** के अनुसार, ''स्वच्छन्दतावाद अपने उत्कर्ष पर पहुँचकर जब दूसरी दिशा की ओर उन्मुख होता है और वह यथार्थवाद के साथ सहज मैत्रीभाव से नया रूप लेता है, यही नवीनता स्वच्छन्दतावाद को 'नवस्वच्छन्दतावाद' में परिवर्तित कर देती है।''[1] अतः नवस्वच्छन्दतावाद का अपेक्षित उपकरण बना, स्वच्छन्दतावाद तथा यथार्थवाद का कल्पना समन्वित रूप। स्वच्छन्दतावाद जब यथार्थवाद की भूमि में पदार्पण करता है तो स्वयमेव ही उसका मूल रूप परिवर्तित हो जाता है तथा आधुनिकता के यथार्थवादी परिप्रेक्ष्य में यथार्थवाद और स्वच्छन्दतावाद का यह रूप 'नवस्वच्छन्दतावाद' का नव रूप ग्रहण करता है। अतः नवस्वच्छन्दतावाद स्वच्छन्दतावाद का एक विकसित आयाम है। **डॉ० अजब सिंह** ने स्पष्ट किया है कि स्वच्छन्दतावादी काव्य प्रवाह में आधुनिकता की सारी प्रक्रियाएँ आ नहीं पाई थीं अतः फलतः आधुनिक हिन्दी कविता सामाजिक परिवेश से टकराकर नया मोड़ लेती है जो यथार्थात्मक है। वैज्ञानिक उपलब्धियों के फलस्वरूप सामाजिक वातावरण से प्रसूत आधुनिक हिन्दी कविता यहाँ यथार्थवादी चेतना से मिलती है। इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी तथा यथार्थवादी बोध के समन्वय के स्वच्छन्दतावाद नये रूप में उभरता है।[2] नवस्वच्छन्दतावाद एक परिवर्तित कायी-दृष्टि है, जिसमें कहने और अनुभव करने के तरीके सर्वथा भिन्न होते जाते हैं जिसमें युग सापेक्षता एवं यथार्थता का स्वर मुखरित होता है। नवस्वच्छन्दतावाद में स्वच्छन्दतावाद तथा यथार्थवाद एक समन्वित इकाई के रूप में सहज परिवर्तित दिखायी पड़ता है उनका यह सहज नैसर्गिक मिलाप नवस्वच्छन्दतावादी कला को उभारती है।

नवस्वच्छन्दतावादी कवि समाजवादी यथार्थ से प्रभावित होकर शोषित वर्ग, उनके जीवन व उनकी समस्याओं के प्रति क्रांति के भावात्मक विचार रखते थे। रचनाकार-अपनी चेतना का विस्तार अपने क्रांतिकारी भावनात्मक विचारों द्वारा करता है और समाजवादी यथार्थवाद के क्रम में वह सहज ही क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद से जुड़ जाता है। इन्हीं अवधारणाओं के समन्वय से स्वच्छन्दतावादी कला को महानता प्राप्त होती है। क्रांतिकारी विचारों की पृष्ठभूमि में यथार्थवाद के मिलन से स्वच्छन्दतावाद नवस्वच्छन्दतावादी स्वरूप को प्राप्त होता है। नवस्वच्छन्दतावादी साहित्य में लोक-साहित्य का भी महत्वपूर्ण योगदान है। '**गोर्की** ने तो लोक-साहित्य को नयी-सर्जना के एक महत्त्वपूर्ण प्रेरणास्रोत के रूप में स्वीकार किया है। वास्तव में लोकगीतों तथा पुराण-कथाओं व लोक-कथाओं आदि का निर्माण कल्पना के ताने-बाने से होता है। यथार्थ में निहित किसी भी बुनियादी भाव अथवा विचार का

---

1. डॉ० अजब सिंह *नवस्वच्छन्दतावाद, (प्राक्कथन)* पृ० 8
2. डॉ० अजब सिंह :*नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ०
3. डॉ० अजब सिंह :*नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 83

अमूर्तीकरण कर उसे एक बिम्ब में मूर्त करने की प्रक्रिया से हमें जिस यथार्थवाद की उपलब्धि होती है, वास्तव में वही कल्पना है। इस तरह यथार्थ से गृहीत वस्तु को अमूर्तित कर उसे संभाव्य तथा आकांक्षित पुट दे उसके अर्थ का विस्तार करने पर हमें जिस स्वच्छन्दतावाद की प्राप्ति होगी उसे यथार्थ के प्रति एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण का आधार बना दुनिया को नये साँचे में ढाला जा सकता है। कल्पना तथा यथार्थ के समन्वित कलात्मक साधना से इस प्रकार एक उत्कृष्ट सर्जना होती है, जो स्वच्छन्दतावाद एवं यथार्थवाद के समन्वित कलात्मक साधना से भी उत्कृष्ट होगी। इसी बिन्दु पर आकर यह कला नवस्वच्छन्दतावादी हो जाती है।

स्वच्छन्दतावादी कवि अपनी सर्जना में सर्जनात्मक कल्पना से रंग भरते हैं। किन्तु नवस्वच्छन्दतावाद में जब स्वच्छन्दतावाद के साथ यथार्थवाद का समन्वय होता है तो साहित्यकार का काम केवल सर्जनात्मक कल्पना से नहीं चलता वरन् साहित्यकार अपनी चेतना में सक्रिय कल्पना का विस्तार कर सक्रिय कल्पना को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाते हैं क्योंकि सक्रिय कल्पना की सम्पूर्ण प्रक्रिया यथार्थ पर ही निर्भर होती है। निरीक्षण और अनुभव के द्वारा ही सक्रिय कल्पना की प्रक्रिया होती है। इस प्रकार साहित्यकार सत्य का वास्तविक चित्रण करने में अपनी सर्जनात्मक एवं सक्रिय कल्पना से यथार्थ को एक नवीन संदर्भ देता है जो यथार्थ की स्वच्छन्द वृत्ति के साथ मिलकर एक उत्कृष्ट साहित्य की चेतना बन जाती है। इस प्रकार कल्पना और यथार्थ के समन्वित रूप का रूपायन उत्कृष्ट कविता की आत्मा है। उसका नवस्वच्छन्दतावादी रूप है। यही काव्य महानता को प्राप्त हो, उसकी उत्कृष्टता के कारण युग संदेश का वाहक बन जाता है। जब कवि किसी काव्य का सृजन करता है तो सर्जन के स्तर पर यथार्थ एवं रोमांस मिलकर एक हो जाते हैं और यह विलयन कवि की सक्रिय कल्पना के द्वारा ही सम्भव है।

वस्तुतः भारत के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा राष्ट्रीय आन्दोलनों ने नवस्वच्छन्दतावादी कवियों को प्रेरणा दी। हिन्दी नवस्वच्छन्दतावादी चेतना परिवेशगत आवश्यकता थी। इस प्रकार नवस्वच्छन्दतावाद स्वच्छन्दतावादी कविता का नवीन विस्तार तथा नवस्वच्छन्दतावादी कविता के प्रति प्रतिक्रिया है। युगसापेक्ष अभिव्यंजना ही नवस्वच्छन्दतावाद है। स्वच्छन्दतावाद वैज्ञानिक आविष्कारों तथा उपलब्धियों के समक्ष इस कारण नहीं टिक सकता था जिन नव क्षितिजों को मापा जा रहा था उनके लिए तर्क, बुद्धि एवं भौतिक दृष्टि अपेक्षित थी और इसके आगे स्वच्छन्दतावादी कल्पना, भावुकता एवं आधुनिकता कहाँ टिक पाती है। अतः युगसापेक्षता के परिप्रेक्ष्य में स्वच्छन्दतावाद ने नवस्वच्छन्दतावाद का विरोध किया और नये रूप में अपनी अभिव्यक्ति की। वैज्ञानिक उपलब्धियों और तत्कालीन परिवेश से प्रसूत कला जब यथार्थवादी चेतना से आकर मिलती है तो स्वच्छन्दतावाद तथा यथार्थवाद के समन्वित रूप से सक्रिय कल्पना के संदर्भ में स्वच्छन्दतावाद भी एक नव विकसित रूप में उभरता है जिसे हम स्वच्छन्दतावाद का अत्यन्त विकसित रूप 'नवस्वच्छन्दतावाद' के रूप में जानते हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जब स्वच्छन्दतावादी चेतना के साथ यथार्थवाद का समन्वय होता है तो स्वच्छन्दतावाद एक नया रूप लेकर विकसित होता है। जब स्वच्छन्दतावादी चेतना युगसापेक्षता से संस्पर्श में आयी तो उसने अपना रूप सँवारा। वैज्ञानिक क्रांति तथा सामाजिक वातावरण से प्रसूत स्वच्छन्दतावादी चेतना यथार्थ से मिलती है तथा एक नये रूप में स्वयं को अभिव्यक्त करती है।

स्वच्छन्दतावादी चेतना का यह नव रूप ही इसके अपने रूप का व्यापक विस्तार 'नवस्वच्छन्दतावाद' के रूप में उभरता है। अतः स्वच्छन्दतावाद एवं यथार्थवाद का नवोन्मेष ही नवस्वच्छन्दतावाद है। इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी चेतना विस्तृत संस्कार पाकर जब अधिक व्यापक फलक पर अपने पाँव पसारती है तो यथार्थ के धरातल पर वह सक्रिय कल्पना की सीढ़ी पर चढ़, अपने आपको और अधिक प्रौढ़ तथा समृद्धिशाली बनाती हुई नवस्वच्छन्दतावादी चेतना के रूप में उभरती है, परिणत होती है। इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी चेतना अपने विकसन की स्थिति में मनोवैज्ञानिक तथा यथार्थवादी समन्वित संदर्भ में नवस्वच्छन्दतावाद का रूप धारण कर लेती है।

जब रोमांटिक भावनाओं के साथ यथार्थ का मिलन होता है तो निश्चित ही कवि मन में नवीन भाव उत्पन्न होंगे और यही नवस्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रवृत्ति की रूप-सृष्टि है। अतः यह स्पष्ट है कि स्वच्छन्दतावादी और यथार्थवादी चेतना के समन्वय और सीमा-विस्तार से ही नवस्वच्छन्दतावादी कला चेतना का जन्म होता है। यह चेतना साहित्य में भावजगत् और बाह्य संसार में कोई अन्तर्विरोध नहीं रखती। भावजगत् तथा बाह्य जगत् के समन्वय से ही यथार्थवाद का विकास होता है और जहाँ से यथार्थवाद का विकास होता है वहीं से नवस्वच्छन्दतावादी कला चेतना का जन्म होता है। यहाँ यथार्थवाद का विकास एक शैली के रूप में होता है, जिसकी प्रवृत्ति स्वच्छन्द होती है। **डॉ० अजब सिंह** ने इस संबन्ध में ठीक ही कहा है कि यथार्थ के दोनों रूपों आलोचनात्मक यथार्थवाद एवं समाजवादी यथार्थवाद में स्वच्छन्दतावाद की स्थिति रहती है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्वच्छन्दतावादी कवि या लेखक यथार्थवादी होता है तथा यथार्थवादी कवि या लेखक स्वच्छन्दतावादी प्रकृति का होता है। इन दोनों के समन्वित कलात्मक साधना से ऊँची कला उभरती है और इसी बिन्दु पर आकर कलाकार या साहित्यकार नवस्वच्छन्दतावादी हो जाता है।[1]

नवस्वच्छन्दतावाद का सामाजिक धरातल ही वास्तव में उसका मार्क्सवादी संदर्भ है। कार्लमार्क्स ने मनुष्य के पूर्णत्व का स्वप्न देखा था और यही भावना नवस्वच्छन्दतावादी चेतना का केंद्र है। मार्क्सवाद का मूल स्वर क्रांति है और यही क्रांति नवस्वच्छन्दतावाद का भी मूल है।

वस्तुतः सर्वप्रथम **जार्ज लुकाच** ने पूँजीवाद विरोधी नवस्वच्छन्दतावाद को आविर्भूत किया और प्रस्तावित किया कि पूँजीवाद विरोधी नवस्वच्छन्दतावाद ही वास्तविक नवस्वच्छन्दतावाद है। इस प्रकार **जार्ज लुकाच** ने नवस्वच्छन्दतावादी यथार्थवाद को जन्म दिया जिसके मूल में पूँजीवाद का विरोध था। **लुकाच** ने यह भी माना कि मार्क्सवाद में केवल आर्थिक व्यवस्था को प्राथमिकता नहीं दी गयी थी वरन् आर्थिक व्यवस्था की सम्पूर्णता की धारणा प्रमुख थी। **लुकाच** का नवस्वच्छन्दतावादी मार्क्सवाद सम्पूर्ण क्रांति का पक्षधर है। एक ऐसी क्रांति जो इस जीवन और संसार की व्यवस्था को बिल्कुल समाप्त कर उसके स्थान पर एक नयी व्यवस्था को जन्म दे सके। मानव और मानवता का विकास केवल सम्पूर्ण क्रांति से ही सम्भव है यही **लुकाच** के स्वच्छन्दतावादी मार्क्सवाद की मूल चेतना है।

स्वच्छन्दतावादी चेतना भी मानव और मानवीय अनुभूतियों से संबद्ध है अतः मानव-जीवन ही स्वच्छन्दतावाद का केंद्र है। स्वच्छन्दतावादी चेतना से मार्क्सवाद मानवीय अनुभूतियों के परिप्रेक्ष्य में जुड़ता है क्योंकि, ''समाजवादी यथार्थवादी कला में संवेगात्मक अनुभूति का यथातथ्य अंकन इसे

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 83

स्वच्छन्दतावादी चेतना से मिला देता है।"[1] अतः स्पष्ट है कि जब यथार्थ के साथ कल्पना का विलयन होता है तो समाजवादी यथार्थवादी कला नवस्वच्छन्दतावादी कला में परिणत हो जाती है। "सामाजिक अनुभूतियों को यथार्थ और कल्पना के माध्यम से अभिव्यंजित करनेवाली कला स्वच्छन्दतावादी कला निश्चित रूप से स्वच्छन्दतावाद के नूतन विकास नवस्वच्छन्दतावाद से अपने को जोड़ देती है।"[2]

प्रत्येक मनुष्य का मनोवैज्ञानिक पहलू उसके सामाजिक धरातल को आलोकित करता है। यही मार्क्सवाद का कलात्मक चिंतन है, जो परोक्ष रूप से स्वच्छन्दतावाद से जुड़ता है। स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद के मिश्रित रूप से नवस्वच्छन्दतावादी कला चेतना का विकास होता है। मार्क्सवाद में स्वच्छन्दतावाद के प्रगतिशील रूप को समर्थन मिलता है, जो समाजवादी यथार्थवाद का प्रतिरूप है। संस्कृति को एक नया आयाम देने के लिए ही स्वच्छन्दतावाद एवं यथार्थवाद का मिलन होता है। इस प्रकार इस युगसापेक्ष में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति एक नूतन रूप में परिवर्तित होती है और यथार्थता के कारण इसकी पहचान नवस्वच्छन्दतावादी हो जाती है। कवि जीवन की अनुभूतियों की अभिव्यंजना करते समय सामाजिक व्यवस्था पर कुछ व्यंग्य भी करता है वह रोमांटिक आयरनी के द्वारा इसकी अभिव्यंजना करता है। फलतः क्रान्ति, स्वच्छन्दतावादी चेतना को नवस्वच्छन्दतावादी चेतना में परिवर्तित कर देती है। इस प्रकार नवस्वच्छन्दतावाद की मूल चेतना सम्पूर्ण क्रांति है जो सम्पूर्ण परिवर्तन की अपेक्षा रखती है, कामना करती है। यही सम्पूर्ण क्रांति नवस्वच्छन्दतावाद में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है और कल्पना को यथार्थ में, अनुभूति को परिवेश में, वैयक्तिकता को सामाजिकता में, विद्रोह को क्रान्ति में, आधुनिकता को रोमांटिक आयरनी में, यथार्थवाद को समाजवादी यथार्थवाद में तथा मानववाद को नवमानववाद में परिवर्तित कर देती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि नवस्वच्छन्दतावादी साहित्य में यथार्थवाद अनेक रूप लेकर स्वच्छन्दतावादी साहित्यिक परिवेश से जुड़ता है। आलोचनात्मक यथार्थवाद के रूप में वह समसामयिक युग के अन्तः एवं बाह्य परिवेश की सामाजिक व्यवस्था का प्रस्तुतीकरण तथा जीवन की वास्तविकता का अंकन पूरी ईमानदारी, जीवन्तता एवं प्राणवत्ता से करता है। यह क्रांतिकारी यथार्थवाद का स्रष्टा है।

समाजवादी यथार्थवाद के रूप में यह चिंतन यथार्थ जीवन का समाजवादी दृष्टि से मूल्यांकन करता है। मानव-कल्याण के संघर्ष का यथार्थ अंकन करते हुए यह नवसमाजवादी मानव का सृजना करता है, जिसके कारण इसका सम्बन्ध नवस्वच्छन्दतावादी साहित्यिक चेतना से जुड़ जाता है। यही इसका क्रांतिकारी रूप है। किसी भी साहित्यिक रचना को उत्कृष्टता प्रदान करने के लिए आलोचनात्मक तथा समाजवादी यथार्थता का सहज समन्वय अत्यन्त अपेक्षित है। आलोचनात्मक समाजवादी अथवा क्रांतिकारी यथार्थवाद के साथ जब 'स्वच्छन्दतावाद' का समन्वय 'सक्रिय कल्पना' के साथ होता है तो स्वच्छन्दतावाद का एक नवीन विकास होता है क्योंकि स्वच्छन्दतावाद यथार्थवाद के साथ मिलकर 'नवस्वच्छन्दतावाद' बन जाता है। क्रांतिकारी यथार्थवाद सदैव रचनात्मक होता है जो समाजवादी यथार्थवादी स्वच्छन्दतावाद का ही अंग है। स्वच्छन्दतावादी तत्त्व में समाजवादी यथार्थवाद प्रमुख है।

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद*, पृ० 75
2. वही, पृ० 75

इसके बिना समाजवादी यथार्थवाद की कल्पना नहीं की जा सकती। अतः स्वच्छन्दतावाद और तत्पश्चात् स्वच्छन्दतावाद के नवीन विकास 'नवस्वच्छन्दतावाद' में यथार्थ विशेषकर समाजवादी यथार्थवाद व क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद प्रमुख प्रवृत्तियों के रूप में उभरता है।

आज हम वैचारिक संक्रांति के युग से गुजर रहे हैं। आज का परिवेश आज की संस्कृति अपनी पूर्णता में रही है। मनुष्य के चित्त की अवस्थाएएँ जैसा कि **पतंजलि** ने अपने योग-दर्शन में रेखांकित किया है, वे हैं, -क्षिप्त, गूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र एवं निरुद्ध। अन्तिम दो अवस्थाएँ आध्यात्मिक मंडल की ओर उन्मुख हैं। इस प्रकार चित्त की अवस्था में अपनी अवस्थाएँ चिन्मय हैं- आध्यात्मपरक हैं। विद्या एवं अविद्या, परा एवं अपरा की व्याख्या देती चलती हैं और यह सब आध्यात्मिक मण्डल की ओर सें संकेत है। चेतना के दो रूपों में केवल भौतिकवादी चेतना को ही महत्त्व देना उचित नहीं है।

मनुष्य की अवधारणा भी मानवीयता के देवत्व में चिन्मयता को जोड़ती है। यह चिन्मयता भौतिकता से समन्वित होकर युगल रूप में अपनी प्रस्तुति आधुनिक समकालीनता संसार के लिए दे सकेगा और यही कल्याणी भावना का स्रोत है।

आधुनिकता-बोध में परम्परा एवं मध्ययुगीन आध्यात्मिकता का विरोध भी था। आज हम देख रहे हैं कि उत्तर-आधुनिकता-बोध में परम्परा एवं समकालीनता-आध्यात्मिकता की वापसी हो रही है। हम समकालीन संदर्भों में परम्परागत जीवन-मूल्यों को आत्मसात् करने जा रहे हैं। यह कला की सहजता एवं युगसापेक्षता की प्रस्तुति होती है। आज हम देख रहे हैं कि पश्चिमी वैचारिकता शिकारीयुग से चलकर सामन्तवाद, पूँजीवाद, साम्यवाद एवं समाजवाद तक चलकर विफल हो गयी है। ऐसी विषम परिस्थिति में भारतीय आर्ष चेतना, भारतीय समाजवाद, वेदान्तिक समाज के संस्पर्श से आज विश्वमानवता को नयी दिशा मिल सकती है। वस्तुतः चेतना का अर्थ सम्पूर्णता में मात्र वैचारिकता का विस्तार धारा नहीं है। अब तो चेतना का सही अर्थ चिन्मयता, अलौकिकता एवं आध्यात्मिकता ही है, जो परम आनन्द का उत्स है। सर्वात्मभाव की जननी है- अतिच्छन्दसमय है।[1] इसी आध्यात्मिकता की अनिवार्यता को ध्यान में रखकर **डॉ० अजब सिंह** ने यथार्थवादी चिन्तन के नये संदर्भ को विस्तार दिया है।

यथार्थवादी चिन्तन को पूर्णता में वैश्विक संदर्भों में आत्मसात् करने में हमें यथार्थवाद को किंचित् नये संदर्भों में लेना होगा। इसी परिप्रेक्ष्य को ध्यान में रखकर **डॉ० अजब सिंह** ने यथार्थवाद को इस रूप में विस्तार दिया है।

1. आलोचनात्मक यथार्थवाद
2. समाजवादी यथार्थवाद
3. रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद : सांस्कृतिक-आध्यात्मिक, अतिच्छन्दस्

अगर प्राकृतिक, यौनपरक यथार्थ हो सकता है तो अतियथार्थवाद भी मनोवैज्ञानिक संदर्भों में स्वीकार्य है। जादुई यथार्थवाद की भी बातें होने लगी हैं। मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र में समाजवादी यथार्थवाद अपने उत्कर्ष पर समस्त बौद्धिक जगत् में था ही जो अब कमजोर पड़ गया है। सोवियत

---

1. डॉ० अजब सिंह : *चेतना, शिक्षा एवं संस्कृति, प्र० सं०,* पृ० 7

संघ में वैचारिकता के विघटन के साथ एशियाई एवं भारतीय आर्षचिंतन के परिप्रेक्ष्य में अखण्ड मानववाद की प्रस्तुति के लिए रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद : सांस्कृतिक-आध्यात्मिक, अतिच्छन्दस् के संदर्भ में अतिमानववादी चेतना का विस्तार भी अपेक्षित है। अखण्डमानव की प्रस्तुति में रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद अपेक्षित है। यही मानव की सम्पूर्ण अवधारणा की प्रस्तुति भी देता है। "अध्यात्म के अभाव में मानव की तथा मानववाद की परिकल्पना संभव नहीं है। इस प्रकार अखण्ड मानववाद के लिए हमें यथार्थवाद की सीमा-विस्तार की बढ़ोत्तरी की अपेक्षा है। आज सारा संसार इसी आध्यात्मिक मण्डल की ओर बढ़ रहा है। इस मानवीयता की सही पहचान भी आध्यात्मिकता ही है। यही आध्यात्मिकता इहलौकिकता है, सांसारिकता है एवं अखण्ड मानववादी चेतना का विस्तार है। इस प्रकार हमें मानववाद में सर्वहारा संस्कृति एवं मानव संस्कृति में आध्यात्मिक जीवन की कहानी भी मिलती है और उसका आकलन साहित्य में अपेक्षित है। इसीलिए रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद की माँग इस संदर्भ में हो रही है।"[1]

इस प्रकार मानव को अखण्ड मानव रूप प्रदान करने के आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य में यथार्थवादी चिन्तन का सीमा-विस्तार करना होगा। अध्यात्म का अर्थ यहाँ केवल ईश्वर नमन, ईश्वर भजन से नहीं वरन् आत्मशुद्धिकरण की भावना से है। मानव-मूल्यों के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता को आध्यात्मिकता के परिप्रेक्ष्य में ही रचनात्मक रूप प्राप्त हो सकता है, जो यथार्थ की ही स्थिति है। अतः यथार्थ का आध्यात्मिकता के साथ मिलन मानव को अतिविशिष्ट मानव से अखण्ड मानव बना देता है। मानव-सेवा की भावना आत्मशुद्धिकरण से ही सम्भव है और आत्मा को शुद्ध करके ही समस्त मानव 'एक कुटुम्ब' हो सकता है जहाँ समस्त मानव एकरूप होंगे उनका दुःख-सुख एक होगा यही वह सपना है, जिसे **कार्लमार्क्स** ने भी देखा था और इसी रूप में वह सम्पूर्ण क्रांति की आवश्यकता समझता था। केवल वैचारिक क्रांति ही नहीं वरन् वह आत्मीय क्रांति की भी अपेक्षा रखता था। उसकी 'आत्मीय क्रांति' की अपेक्षा ही आध्यात्मिकता है।

जार्ज लुकाच भी पूँजीवाद विरोधी नवस्वच्छन्दतावाद का आह्वान करता है किन्तु पूँजीवाद विरोधी नवस्वच्छन्दतावाद को प्रयोगात्मक रूप प्रदान करने का एकमात्र उपाय 'आत्मशुद्धिकरण' है, जो केवल 'आत्मीय-क्रांति' से ही संभव है। शायद यही कारण है कि समस्त जगत् आध्यात्मिकता की ओर पुनर्प्रस्थान कर रहा है। यही यथार्थवाद का नवीन अपेक्षित विस्तार 'रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवादी चेतना' का क्रियान्वित रूप भी है।

आध्यात्मिकता अतिच्छन्दस् की उदात्त भावभूमि पर मानवीयता कल्याणी-धारा की गंगा प्रवाहित करती रहती है। भक्ति व चिन्मयता की कल्याणी-धारा भी जन-जीवन के काल कंगारों से निकली है। ब्रह्मतत्त्ववेत्ता, अध्यात्मतत्त्ववेत्ता, अखण्ड महायोगी श्री देवराहा बाबा कहा करते थे कि भूखों को भोजन देना, नंगों को वस्त्र देना, प्यासों को पानी देना, दुखियारी आँसू पोछना-कई यज्ञों से भी बढ़कर पुनीत कार्य है। इसलिए जनवादी साम्यवादी चिंतन में भी सेवा भाव मानवीय गुणों को साथ लेकर चलता है। अन्तर केवल इतना ही है कि जनवादी-साम्यवादी भावना खण्डित मानववाद का प्रतीक है और आध्यात्मिकता अखण्ड मानववाद की सम्पूर्णता का प्रतीक है। जनवाद, साम्यवाद अगर अपने

---

1. डॉ० अजब सिंह : *यथार्थवाद : पुनर्मूल्यांकन, प्र० सं०*, पृ० 3

में अखण्ड मानव को समेटता है तो उसमें सम्पूर्णता आ सकती है तभी वह पूर्णता की ओर बढ़ सकता है।[1] इसी अध्यात्म व विश्वकल्याणी भावना का आधार लेकर ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा का 'सर्वात्म-दर्शन' विश्व के सभी जीव-जन्तुओं, वनस्पतियों की कल्याणी विश्वमानवतावादी दर्शन है।

ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा का **सर्वात्मदर्शन** दिव्य कल्याणकारी भावना का उत्स है, स्रोत है। आज इसी दार्शनिक दृष्टि 'सर्वात्मदर्शन' की विश्वशान्ति के लिए अपेक्षा है। **ब्रह्मर्षि देवराहा बाबा** का **सर्वात्मदर्शन** भारतीय अध्यात्म विद्या के द्वारा कल्याणी भावना का प्रसार है इसी के द्वारा आज विश्व को विनाश की स्थितियों की ओर उन्मुख होने से बचाया जा सकता है।

---

1. *देवराहा बाबा दिव्य-दर्शन,* पृ० 63-65

स्वच्छन्दतावाद और मनोवैज्ञानिकता

आधुनिक कविता मनोवैज्ञानिक हो गयी है। मनोवैज्ञानिक होने के कारण उसमें स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ अधिक दृष्टिगोचर होती हैं। जीवन और साहित्य में आन्तरिकता की प्रवृत्ति हमें स्वच्छन्दतावादी वैचारिकता तथा अवधारणा के निकट लाती है। यह अवधारणा मनोविश्लेषण के महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को लेकर अपनी यात्रा को परिपूर्णता की ओर ले जाती है। अतः परिवेश के साथ बाह्य परिवेश भी कला के मनोवैज्ञानिक चिंतन की आवश्यकता के रूप में उभरता है। फलतः कला में अन्तः तथा बाह्य के साथ चेतन-अचेतन का भी विलयन है। काव्य-प्रक्रिया में कवि वैयक्तिक और सामूहिक अचेतन की प्रवृत्ति के द्वारा काव्य की अभिव्यंजना करता है।[1]

आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार किसी भी कला या साहित्यिक दृष्टि की उत्पत्ति कलाकार अथवा कवि की दमित प्रवृत्तियों के कारण होती है। **फ्रायड** के अनुसार "सुखी आदमी कभी कल्पना चित्रों की सृष्टि नहीं करता, केवल असन्तुष्ट व्यक्ति ही यह सृष्टि करते हैं।"[2] दमित प्रवृत्तियों का ज्ञान स्रष्टा को होता नहीं है क्योंकि इनमें से कुछ वर्णनीय तो कुछ गोपनीय होती हैं। Climate, Country तथा Environment के साथ दमित प्रवृत्तियाँ भी काव्य का स्रोत बन जाती हैं। इस प्रकार के सृजनस्रोत ही कल्पना के प्रेरणा स्रोत भी हैं। यहाँ 'कल्पना' महान् से महान कवियों की प्रेरणास्रोत है। यही 'कल्पना' तत्त्व रोमांटिक कविता की जननी भी है। अतः स्वच्छन्दतावादी कवि अत्यधिक मनोवैज्ञानिक होता है। वैसे भी मानव-जीवन के प्रत्येक पहलू से मनोविज्ञान का सम्बन्ध है। कवि की कोई भी रचना अकस्मात् घटना नहीं होती उसके पीछे नियामक कारण होते हैं। **फ्रायड** का मत है कि व्यक्ति के प्रत्येक व्यवहार का कोई-न-कोई कारण अवश्य होता है। हमारे कार्य, विचार एवं संवेग बिना किसी पर्याप्त कारण की उपस्थिति के कभी भी घटित नहीं हो सकते। यह सिद्धान्त **फ्रायड** के अनुसार **Psychic Determinism** कहलाता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि काव्य रचना में मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्तों का पूरा-पूरा हाथ रहता है। प्रत्येक साहित्यकार अपनी रचनाओं में मन की सहज प्रेरणाओं का सुसंगत और सन्तुलित समन्वय करता है और अपने काव्य में मनोवैज्ञानिक तत्वों की अभिव्यंजना करता है। इस प्रकार साहित्यकार की रचना अवधारणात्मक हो जाती है। सौन्दर्यवृत्ति के द्वारा कलाकार अपनी कला को पुनर्जीवित कर देता है। इस प्रकार प्रत्येक साहित्यकार की रचना के काव्यगत मूल्यांकन के संदर्भ में मनोवैज्ञानिक घटकों का विश्लेषण भी अपेक्षित है। कोई भी रचना काव्यात्मक पूर्णता को उसी समय प्राप्त करती है, जब उसको अवधारणात्मक एवं मनोवैज्ञानिक घटकों के आधार पर विश्लेषित किया जाय।

प्रत्येक साहित्यकार का अपना एक व्यक्तित्व होता है और उसके व्यक्तित्व की छाप उसकी रचना में स्पष्टतः दिखायी पड़ता है। साहित्यकार की पूरी मानसिकता उसके काव्य में उभरती है। इस प्रकार किसी भी रचना में उसके सृष्टा का व्यक्तित्व एवं मानसिकता दोनों का विलयन होता है। अतः

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 145
2. सं० डॉ० रतनकुमार पाण्डेय, *साहित्य सौन्दर्य एवं संस्कृति में डॉ० कृष्ण मुरारी मिश्र का आलेख साहित्यालोचन मनोवैज्ञानिक दृष्टियाँ,* पृ० 137

काव्य-प्रक्रिया के लिए कवि-मानस व्यक्तित्व एवं मानसिक क्रिया की व्याख्या आवश्यक है। प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक **फ्रायड** ने व्यक्तित्व सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है, जिसे **फ्रायड** का 'मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त' कहा जाता है।

फ्रायड का मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त

सिग्मण्ड फ्रायड का यह **व्यक्तित्व सिद्धान्त** है, जिसे उसने मनोविश्लेषणवाद का नाम दिया है। यह पहला व्यापक व्यक्तित्व सिद्धान्त है, जिसने मानव-व्यवहार की अतल गहराइयों में प्रवेश कर उसे समझने की चेष्टा करते हुए मानव-व्यवहार की व्याख्या प्रस्तुत की है।

वस्तुतः मनोविश्लेषण का तात्पर्य तीन अर्थों में किया जाता है- सर्वप्रथम इसका तात्पर्य एक प्रविधि (Technique) के अर्थ में ग्रहण किया जाता है, जिसके माध्यम से एक व्यक्ति के मानसिक जीवन की चेतन और अचेतन गतिशीलता की खोज की जाती है।[1] दूसरे अर्थ में मनोविश्लेषण एक प्रकार की मनोचिकित्सा (Psychotherapy) है, जिसके माध्यम से मनस्ताप, मनोविक्षिप्तता या मनोविकृत रोगियों का पुनर्निर्माण या उपचार इस प्रकार किया जाता है कि वह जीवन की समस्याओं के प्रति बेहतर और सुखी समायोजन कर सके।[2] तीसरे अर्थ में मनोविश्लेषण एक सम्प्रदाय (School) है।[3] **फ्रायड** मनोविश्लेषण सम्प्रदाय के संस्थापक थे।

फ्रायड के मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त की आधारशिला 'मनोनियतिवाद' (**Psychic Determinism**) है। **फ्रायड** का मानना है कि व्यक्ति के प्रत्येक व्यवहार का कोई-न-कोई कारण अवश्य होता है। मानव का प्रत्येक कार्य, विचार एवं संवेग बिना किसी पर्याप्त कारण की उपस्थिति के कभी नहीं घटित हो सकते। उपर्युक्त तर्क के आधार पर ही **फ्रायड** ने **अचेतन स्तर, मनोयौनिक विकास** आदि के अस्तित्व को स्वीकार किया है।

फ्रायड का मत है कि प्रत्येक व्यक्ति में कुछ प्राथमिकताएँ प्रेरणाएँ होती हैं। ये **मूल प्रवृत्तियाँ** व्यक्ति की प्राथमिक **मनोशक्तियाँ** (**psychic energies**) हैं जो जन्मजात तथा अनर्जित होती हैं। मनुष्य जो भी कार्य करता है, उसके पीछे शक्ति का स्रोत यही मूल प्रवृत्तियाँ है। व्यक्ति का व्यवहार इन्हीं मूल प्रवृत्तियों के कारण घटित होता है। मूल प्रवृत्तियाँ व्यक्ति के व्यवहार का संचालन और दिशा निर्धारण करती हैं। किसी समय विशेष में व्यक्ति के व्यवहार का निर्धारण इन्हीं मूल प्रवृत्तियों के द्वारा किया जाता है, जो व्यक्ति की व्यक्तित्व संरचना के माध्यम से वातावरण में सम्पादित होता है। प्रत्येक कार्य का कारण होता है। हमारे व्यवहार का कारण यही मूल प्रवृत्तियाँ हैं। जीवन के अनुभव के साथ-साथ मूल प्रवृत्तियों में भी परिवर्तन होता है। किन्तु इनका आधारभूत स्वरूप जैविक (Biological) ही रहता है। साथ ही, **फ्रायड** ने मूल प्रवृत्तियों में मानसिक तथा सामाजिक प्रभाव को स्वीकार किया है इसी कारण उसने इन मूल प्रवृत्तियों का स्वरूप सामाजिक मनोजैविक (Psychobiological) माना है।

फ्रायड ने मूल प्रवृत्ति के लिए जर्मन शब्द Trieb का प्रयोग किया है। Trieb का अर्थ अंग्रेजी

---

1. J. F. Brown *(Psychodynamics of Abnormal Behaviour)* डॉ० डी० एन० श्रीवास्तव, *आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान,* पृ० 112 से उद्धृत।
2. वही, पृ० 112
3. डॉ० डी० एन० श्रीवास्तव, *आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान,* पृ० 113

में Instinct और Drive के बीच का है। इस शब्द का अर्थ अन्तःप्रेरणा (Urge) से बहुत अधिक मिलता है। फ्रायड ने मूल प्रवृत्ति को व्यक्तित्व गतिशीलता (Personality dynamics) माना है।[1]

फ्रायड के अनुसार मूल प्रवृत्ति एक जन्मजात शक्ति है जो व्यवहार को संचालित करती है और उसके व्यवहार की दिशा निर्धारित करती है। मूल शक्तियाँ मानसिक शक्ति की स्रोत हैं। यदि सभी मूल प्रवृत्तियों को एक साथ मिला दिया जाय तो प्राप्त शक्ति व्यक्तित्व के लिए उपलब्ध सम्पूर्ण मानसिक शक्ति के बाहर होगी।[2] प्रत्येक मूल प्रवृत्ति की चार विशेषताएँ होती हैं- आधार या स्रोत (Source), उद्देश्य (Aim), पदार्थ (Object) तथा गतिशक्ति (Impetus)। आधार या स्रोत एक प्रकार की शारीरिक आवश्यकता है जो शक्ति में एक प्रकार की उत्तेजना, असन्तुलन और अनुसंधान उत्पन्न करती है, यही आवश्यकताएँ मूल प्रवृत्तियों का स्रोत हैं। उद्देश्य (Aim) शारीरिक उत्तेजना तथा असन्तुलन को दूर करता है। पदार्थ (Object) से तात्पर्य उन विशिष्ट वस्तुओं और व्यवहारों से है, जिनसे उद्देश्य की प्राप्ति होती है तथा मूल प्रवृत्ति की प्रबलता या शक्ति ही गतिशक्ति (Impetus) है।

जीवन भर शरीर में मूल प्रवृत्तियों का स्रोत और उद्देश्य स्थिर रहता है। केवल शारीरिक परिपक्वता के कारण जब मूल प्रवृत्तियों के स्रोत में परिवर्तन होता है तभी मूल प्रवृत्तियों के उद्देश्यों में भी परिवर्तन हो जाता है। फ्रायड के अनुसार मूल प्रवृत्तियों का स्वरूप तनाव-निवारण का होता है। शारीरिक असन्तुलन प्रारम्भ होते ही मूल प्रवृत्तियों का कार्य प्रारम्भ होता है और जैसे ही शारीरिक सन्तुलन स्थापित होता है मूल प्रवृत्ति का कार्य समाप्त हो जाता है। इस प्रकार मूल प्रवृत्ति संरक्षीकरण का भी कार्य करती है क्योंकि इसका उद्देश्य प्राणी को सन्तुलित बनाए रखना है। अतः मूलप्रवृत्ति वह प्रक्रिया है, जिसकी पुनरावृत्ति होती रहती है। मूल प्रवृत्ति के इस पक्ष को फ्रायड ने पुनरावृत्ति बाध्यता कहा है,[2] जिसका अर्थ होता है कि व्यक्तित्व, शारीरिक अभाव के कारण उत्पन्न उत्तेजना से लेकर सन्तुष्टि तक के क्रम की बार-बार पुनरावृत्ति के लिए बाध्य है।

फ्रायड के अनुसार व्यक्ति की दो प्राथमिक मूलप्रवृत्तियाँ हैं प्रथम-जीवन मूलक प्रवृत्ति या Eros तथा द्वितीय मृत्यु-मूलक प्रवृत्ति या Thanatos.[3]

जीवन मूल प्रवृत्ति या Eros को फ्रायड ने Love instinct भी कहा है। यह मूल प्रवृत्ति जीवित रखने, प्रजनन करने तथा विभिन्न रचनात्मक कार्यों में व्यक्त होती है। जीवन मूलक प्रवृत्ति के दो स्तर होते हैं। अहं अन्तर्नोद या **Ego Drives** व्यक्ति के पोषण और आत्मपरिरक्षण **(Nutrition & Self Preservation)** सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। भूख, प्यास, निद्रा तथा विश्राम आदि अहं अन्तर्नोद या **Sex Drives** है। यह वास्तविकता के नियम **Nutrition & Self Preservation** से नियंत्रित होती है। काम अन्तर्नोद या **Sex Drives** सुख के नियम **(Pleasure Principle)** से नियंत्रित होती है जो आत्म-प्रेम **(Self Love)** दूसरों के प्रति प्रेम तथा सुख प्राप्ति के अन्य कार्यों के रूप में व्यक्त होती है। फ्रायड ने सेक्स शब्द का प्रयोग विस्तृत अर्थों में किया है। उसके द्वारा वर्णित सेक्स के अन्तर्गत भाई-बहन का स्नेह, मित्रों का पारस्परिक प्रेम, सन्तान के प्रति वात्सल्य, प्रेमियों का

1. Hall and Lindzey, *Theories of Personality*, p. 7
2. जयगोपाल त्रिपाठी, *असामान्य मनोविज्ञान*, पृ० 91
3. वही, पृ० 92

पवित्र प्रेम, पति-पत्नी का प्रेम आदि सभी कुछ सम्मिलित है। **Sex Drives** के कारण व्यक्ति अपने जीवन को सुखमय बनाता है तथा इसी कारण ही वह सम्बन्धियों, समाज और मानव-जाति की सेवा करके सुख की प्राप्ति करता है।

जीवन मूलक प्रवृत्ति से सम्बन्धित **मानसिक ऊर्जा** (Psychic-Energy) को **फ्रायड** ने **लिबिडो** (Libido) कहा है। यह जीवन मूलक प्रवृत्ति शारीरिक तथा मानसिक दोनों पक्षों का प्रतिनिधित्व करती है। **लिबिडो** (Libido) सम्पूर्ण जीवन-शक्ति नहीं है वरन् जीवन-शक्ति (Life Force) का एक महत्वपूर्ण भाग है। **लिबिडो** के द्वारा व्यक्ति वांछित जीवन-लक्ष्यों की ओर अग्रसर होता है। **जे० एस० ब्राउन** ने **Psychodynamics of Abnormal Behaviour** में 1940 में फ्रायड के विचारों को पुष्ट किया तथा लिखा भी है कि, ''शारीरिक दृष्टि से जीवन मूलक प्रवृत्ति शरीर की रक्षा और विवृत्ति के रूप में अभिव्यक्त होती है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से **कामजनित आवेगों (Sexual Impulses) सुरक्षात्मक आवेगों (Preservative Impulses)** जैसे रोटी, कपड़ा तथा आवास तथा रचनात्मक क्रियाओं में जीवन मूलक प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति होती है अर्थात् सभी रचनात्मक एवं बौद्धिक क्रियाओं का स्रोत भी यही जीवन मूलक प्रवृत्ति है।[1]

मृत्यु मूल प्रवृत्ति को **फ्रायड** ने **Hate instinct** भी कहा है। इस मूल प्रवृत्ति का सम्बन्ध घृणा, बरबादी और ध्वंस करने सम्बन्धी प्रवृत्ति और व्यवहार से है। कालान्तर **फ्रायड** ने यह अनुभव किया था कि व्यक्ति प्रेम तथा निर्माण के कार्य नहीं करता वरन् उसमें घृणा, बरबादी या ध्वंस (destruction) करने की भी प्रवृत्ति है। इसके पूर्व **फ्रायड** केवल एक ही मूल प्रवृत्ति 'जीवन मूल प्रवृत्ति' मानता था। निरीक्षण करने पर उसने पाया कि जहाँ एक ओर मानव दूसरों से प्रेम करने तथा प्रसन्न रखने की क्रियाएँ करता है वहाँ दूसरी ओर वह उनसे घृणा करने तथा उन्हें नष्ट करने के कार्यों में भी व्यस्त रहता है। यही नहीं, जहाँ वह अपनी रक्षा करना चाहता है वहीं वह आत्महत्या की भी इच्छा रखता है। इस प्रकार मनुष्य अचेतन स्तर पर मरने की इच्छा रखता है।[2] मनोवैज्ञानिक दृष्टि से व्यक्ति के आक्रामक व्यवहार, स्वयं तथा जाति को नष्ट करने के कार्य, अनेक ध्वंसात्मक **बौद्धिक** क्रियाएं आलोचना, व्यंग्य आदि इस मृत्यु मूलक प्रवृत्ति का ही परिणाम हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से यह मूल प्रवृत्ति मनुष्य को **Hostele** तथा **Aggressive** बनाती है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि दोनों मूल प्रवृत्तियाँ शक्ति की मूल स्रोत हैं, जिनके आधार पर ही समस्त रचनात्मक तथा ध्वंसात्मक कार्य सम्पादित होते हैं। यह दोनों मूल प्रवृत्तियाँ साथ-साथ मिलकर कार्य भी करती हैं। ये दोनों मूल प्रवृत्तियाँ जीवन-पर्यन्त चलती रहती हैं। समस्त जीवन इन दोनों मूल प्रवृत्तियों से आपसी संघर्ष व सहयोग का परिणाम है। मनुष्य का समस्त व्यवहार इनके द्वारा उत्पन्न चिन्ता तथा तनाव को दूर करने का प्रयास है। इस प्रकार व्यक्ति में एक पदार्थ के प्रति प्रेम तथा घृणा दोनों की ही भावना हो सकती है। एक पदार्थ के प्रति प्रेम व घृणा की भावना को **फ्रायड** ने उभयात्मकता (Ambivalence) कहा है। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि हम अपनी इच्छानुसार जिससे प्रेम करना

---

1. J. F. Brown *(Psychodynamics & Abnormal Behaviour)*, जयगोपाल त्रिपाठी, *असामान्य मनोविज्ञान,* पृ० 93
2. Hall and Lindzey, *Theories of Personality*, p. 40

चाहते हैं, प्रत्येक स्थिति में उससे न तो प्रेम ही कर सकते हैं और न ही प्रत्येक इच्छित वस्तु का निर्माण ही कर सकते हैं। इसी भाँति जिस चीज़ से हम घृणा करते हैं प्रत्येक स्थिति में उसे ध्वंस भी नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में हमारी प्रेम तथा घृणा की मूल प्रवृत्तियाँ विभिन्न पदार्थों तथा व्यक्तियों के साथ जुड़ती जाती हैं। जिस प्रक्रिया के द्वारा प्रेम तथा घृणा की मूल प्रवृत्ति बाह्य रूप से वातावरण के **पदार्थों के साथ या आन्तरिक रूप से स्वयं के साथ जुड़ जाती है, उसे फ्रायड** ने Cathexis का नाम **दिया है। दूसरे पदार्थों के साथ प्रेम तथा घृणा करने को** Object cathexis **तथा स्वयं को प्रेम तथा घृणा करने को** Narcessistic cathexis कहा जाता है।[1]

जीवन एवं मृत्यु मूल प्रवृत्तियों के अतिरिक्त **फ्रायड** ने कुछ अन्य प्रवृत्तियाँ जैसे सक्रियता-निष्क्रियता, पुरुषत्व-स्त्रीत्व, सुख तथा यथार्थ का नियम तथा वस्तुनिष्ठा-विषयनिष्ठता का उल्लेख किया है।

परस्पर विरोधी शक्तियाँ या प्रवृत्तियाँ मानव व्यक्तित्व में अन्तर्द्वन्द्व को उत्पन्न करती हैं। अन्तर्द्वन्द्व का अर्थ है ऐसी दो परस्पर इच्छाओं की एक साथ उपस्थिति जिसमें एक की पूर्ति दूसरे को अतृप्त रखती है। अन्तर्द्वन्द्व में दो या दो से अधिक परस्पर विरोधी इच्छाएँ एक साथ उपस्थित होती हैं, जिसमें से एक की पूर्ति पर व्यक्ति को दूसरी अन्य इच्छाओं से वंचित रहना पड़ता है। जीवन भर व्यक्ति ऐसे अन्तर्द्वन्द्वों का सामना करता है। व्यक्ति का व्यक्तित्व बहुत कुछ इन्हीं अन्तर्द्वन्द्वों पर निर्भर करता है। यह अन्तर्द्वन्द्व चेतन और अचेतन दोनों ही स्तरों पर हो सकते हैं वरन् पर्याप्त मात्रा में अन्तर्द्वन्द्व अचेतन होते हैं, जो हमारे जागृत जीवन को पर्याप्त रूप से प्रभावित करते हैं। इन सभी अन्तर्द्वन्द्वों का ज्ञान व्यक्ति को नहीं होता। इड, इगो और सुपरइगो में से किन्हीं दो या तीनों में ही अन्तर्द्वन्द्व हो सकता है। जब इड, इगो तथा सुपरइगो में से कोई एक अधिक प्रभावशाली होता है तब इन तीनों अंगों में सन्तुलन नहीं रहता है। फलस्वरूप अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इन तीन अंगों में से यदि एक अंग अन्य की अपेक्षा दुर्बल होता है तो भी अंगों में सन्तुलन नहीं होता और अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

फ्रायड समस्त मूल प्रवृत्तियों को अन्तर्द्वन्द्व का स्रोत मानता है। इन्हीं अन्तर्द्वन्द्व के कारण ही जीवन चलता है। **फ्रायड** के अनुसार- (Life is made series of conflict situations)[2] अतः इन अन्तर्द्वन्द्वों का व्यक्तित्व से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब इगो इन अन्तर्द्वन्द्वों का सामना करता है और समाधान ढूँढता है तो वह समाधान ढूँढने और सामना करने के परिणामस्वरूप धीरे-धीरे निपुण, व्यवहार-कुशल और चतुर हो जाता है। फलस्वरूप व्यक्ति का व्यक्तित्व धीरे-धीरे विकसित होता है और सुदृढ़ होता है।

इदम् **सुखवाद-सिद्धान्त** (Pleasure Principle) से संचालित होता है यह पशुओं की भाँति Life & Death instinct तथा अनैतिक इच्छाओं की सन्तुष्टि चाहता है। इसका मुख्य कार्य सुखात्मक इच्छाओं को उत्पन्न करना है। इनसे अधिकतर इच्छाएँ अनैतिक और कामुक होती हैं। यह इच्छाएँ चेतन स्तर पर पहुँचकर सन्तुष्टि चाहती हैं परन्तु चेतन स्तर पर पहुँचने से पहले इन इच्छाओं को इगो

---

1. J. F. Brown *(Psychodynamics of Abnormal Behaviour)* P. 160
2. डॉ० डी० एन० श्रीवास्तव, *आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान,* पृ० 118

चाहते हैं, प्रत्येक स्थिति में उससे न तो प्रेम ही कर सकते हैं और न ही प्रत्येक इच्छित वस्तु का निर्माण ही कर सकते हैं। इसी भाँति जिस चीज़ से हम घृणा करते हैं प्रत्येक स्थिति में उसे ध्वंस भी नहीं कर पाते। ऐसी स्थिति में हमारी प्रेम तथा घृणा की मूल प्रवृत्तियाँ विभिन्न पदार्थों तथा व्यक्तियों के साथ जुड़ती जाती हैं। जिस प्रक्रिया के द्वारा प्रेम तथा घृणा की मूल प्रवृत्ति बाह्य रूप से वातावरण के पदार्थों के साथ या आन्तरिक रूप से स्वयं के साथ जुड़ जाती है, उसे **फ्रायड** ने Cathexis का नाम दिया है। दूसरे पदार्थों के साथ प्रेम तथा घृणा करने को Object cathexis तथा स्वयं को प्रेम तथा घृणा करने को Narcessistic cathexis कहा जाता है।[1]

जीवन एवं मृत्यु मूल प्रवृत्तियों के अतिरिक्त **फ्रायड** ने कुछ अन्य प्रवृत्तियाँ जैसे सक्रियता-निष्क्रियता, पुरुषत्व-स्त्रीत्व, सुख तथा यथार्थ का नियम तथा वस्तुनिष्ठा-विषयनिष्ठता का उल्लेख किया है।

परस्पर विरोधी शक्तियाँ या प्रवृत्तियाँ मानव व्यक्तित्व में अन्तर्द्वन्द्व को उत्पन्न करती हैं। अन्तर्द्वन्द्व का अर्थ है ऐसी दो परस्पर इच्छाओं की एक साथ उपस्थिति जिसमें एक की पूर्ति दूसरे को अतृप्त रखती है। अन्तर्द्वन्द्व में दो या दो से अधिक परस्पर विरोधी इच्छाएँ एक साथ उपस्थित होती हैं, जिसमें से एक की पूर्ति पर व्यक्ति को दूसरी अन्य इच्छाओं से वंचित रहना पड़ता है। जीवन भर व्यक्ति ऐसे अन्तर्द्वन्द्वों का सामना करता है। व्यक्ति का व्यक्तित्व बहुत कुछ इन्हीं अन्तर्द्वन्द्वों पर निर्भर करता है। यह अन्तर्द्वन्द्व चेतन और अचेतन दोनों ही स्तरों पर हो सकते हैं वरन् पर्याप्त मात्रा में अन्तर्द्वन्द्व अचेतन होते हैं, जो हमारे जागृत जीवन को पर्याप्त रूप से प्रभावित करते हैं। इन सभी अन्तर्द्वन्द्वों का ज्ञान व्यक्ति को नहीं होता। इड, इगो और सुपरइगो में से किन्हीं दो या तीनों में ही अन्तर्द्वन्द्व हो सकता है। जब इड, इगो तथा सुपरइगो में से कोई एक अधिक प्रभावशाली होता है तब इन तीनों अंगों में सन्तुलन नहीं रहता है। फलस्वरूप अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इन तीन अंगों में से यदि एक अंग अन्य की अपेक्षा दुर्बल होता है तो भी अंगों में सन्तुलन नहीं होता और अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

फ्रायड समस्त मूल प्रवृत्तियों को अन्तर्द्वन्द्व का स्रोत मानता है। इन्हीं अन्तर्द्वन्द्व के कारण ही जीवन चलता है। **फ्रायड** के अनुसार- (Life is made series of conflict situations)[2] अतः इन अन्तर्द्वन्द्वों का व्यक्तित्व से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जब इगो इन अन्तर्द्वन्द्वों का सामना करता है और समाधान ढूँढता है तो वह समाधान ढूँढने और सामना करने के परिणामस्वरूप धीरे-धीरे निपुण, व्यवहार-कुशल और चतुर हो जाता है। फलस्वरूप व्यक्ति का व्यक्तित्व धीरे-धीरे विकसित होता है और सुदृढ़ होता है।

इदम् **सुखवाद-सिद्धान्त** (Pleasure Principle) से संचालित होता है यह पशुओं की भाँति Life & Death instinct तथा अनैतिक इच्छाओं की सन्तुष्टि चाहता है। इसका मुख्य कार्य सुखात्मक इच्छाओं को उत्पन्न करना है। इनसे अधिकतर इच्छाएँ अनैतिक और कामुक होती हैं। यह इच्छाएँ चेतन स्तर पर पहुँचकर सन्तुष्टि चाहती हैं परन्तु चेतन स्तर पर पहुँचने से पहले इन इच्छाओं को इगो

---

1. J. F. Brown *(Psychodynamics of Abnormal Behaviour)* P. 160
2. डॉ० डी० एन० श्रीवास्तव, *आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान,* पृ० 118

तथा सुपर इगो सेन्सर करते हैं। यह सेंसर अन्तः मानसिक सेन्सर (Endo Psychic Censor) कहलाता है। इगो को पर्यावरण की वास्तविकता का ज्ञान होता है। इगो इड द्वारा प्रेषित इच्छाओं के सेन्सर में यह देखता है कि इच्छा की सन्तुष्टि पर्यावरण की वास्तविकताओं के अनुसार सम्भव है या नहीं। यदि पर्यावरण की वास्तविकताओं के अनुसार इच्छा की पूर्ति हो सकती है तो इगो इड की इच्छाओं को चेतन में जाने की अनुमति प्रदान कर देता है। यदि पर्यावरण की इच्छाओं के अनुसार इच्छाओं की पूर्ति नहीं हो सकती तो इगो इड की इच्छाओं को चेतन में जाने की अनुमति प्रदान नहीं कर सकता और इस प्रकार इच्छाओं को अचेतन की ओर ढकेल देता है। यह प्रक्रिया **दमन-प्रक्रिया** (Respression Process) कहलाती है।

जब इगो इड की इच्छाओं को अनुमति प्रदान करता है तो सुपर इगो की सेन्सरशिप प्रारम्भ होती है। इगो द्वारा अनुमति प्राप्त इच्छाएँ यदि सामाजिक दृष्टि से निन्दनीय और अनैतिक होती हैं तो सुपर इगो इनको सेंसर कर देता है। इगो और सुपर इगो द्वारा दमित इच्छाएँ अचेतन मन में जातीहैं। यह दमित इच्छाएँ अचेतन मन में शान्त नहीं रहती हैं बल्कि सन्तुष्टि के लिए प्रयत्नशील और गतिशील रहती हैं। कई बार यह अपना रूप बदलकर स्वप्न तथा अभिव्यक्ति बनकर सन्तुष्टि प्राप्त करती हैं। मस्तिष्क के विभिन्न अंगों की प्रक्रिया का स्थान मन है। **फ्रायड** ने मन के दो पक्ष बताये हैं।

1. **मन का गत्यात्मक पक्ष (Dynamic Aspect of Mind) :**
   मन के इस पक्ष के अन्तर्गत इड, इगो तथा सुपर इगो तीन संघटक हैं।
2. **मन का स्थलाकृतिक पक्ष (Topological Aspect of Mind):**
   मन के इस पक्ष के चेतन, अर्धचेतन तथा अचेतन तीन संघटक हैं।

फ्रायड के अनुसार व्यक्तित्व की संरचना इड, इगो तथा सुपर इगो से होती है। सामान्यतः मानव व्यवहार इन तीनों की अन्तःर्क्रिया का परिणाम है। एक संघटक शेष दो संघटकों के बिना पृथक् रूप से कार्य नहीं करता है। इनके पृथक् कार्यों एवं प्रभावों का मानव-व्यवहार के निर्धारण में सापेक्षित योगदान का निश्चित मूल्यांकन करना अत्यधिक कठिन है। संक्षेप में इनका वर्णन इस प्रकार है।

इदम् (इद)

इदम् जीवन और मृत्यु दोनों ही मूल प्रवृत्तियों का केंद्र है। यह समान मनोजैविक शक्ति का मूल स्रोत है। इड व्यक्तित्व का अत्यन्त स्पष्ट, अगम्य और अव्यवस्थित भाव है।[1] इड मानसिक तथा आन्तरिक जगत् दोनों का प्रतिनिधित्व करता है। बाह्य वास्तविकता का ज्ञान इसको नहीं होता है। बाह्य जगत् से इसका सम्पर्क सीधे न होकर शारीरिक प्रक्रियाओं के माध्यम से होता है।

फ्रायड ने इड को मानसिक प्रत्यय माना है जैविक नहीं। **फ्रायड** ने इड को Tru Psychic reality माना है। इड, इगो और सुपर इगो के विकास का आधार है। यहीं से इगो और सुपर इगो विकसित होते हैं और अपने कार्यों के लिए शक्ति ग्रहण करते हैं।

इड सबसे पुरातन मानसिक प्रणाली है। जो कुछ भी जन्मजात तथा वंशानुगत है, जो कुछ भी शारीरिक संरचना में निहित है तथा जो कुछ भी जन्म के समय उपस्थित होता है वह सब इड ही है। विभिन्न पीढ़ियों में जो भी अनुभव प्रगाढ़ रूप से दोहराए जाते हैं वे इड में एकत्रित हो जाते हैं और

---

1. Hall and Lindzey, *Hand book of Social Psychology*, P. 148

आनेवाली पीढ़ियों के लिए वंशानुगत कार्य करते हैं। यही कारण है कि **फ्रायड** ने इड को असंख्य पूर्वजों की स्मृति अवशेषों का भण्डार माना है। **फ्रायड** पूर्वजों की अर्जित विशेषताओं के वंशानुक्रम को इड के निर्माण का आधार मानता है। जन्म के समय मानव शिशु का मन पूर्ण रूप से इड है अतः इड जन्मजात और वंशानुगत है।

तात्कालिक सन्तुष्टि की इच्छाएँ तथा विचार इड की विषय-सामग्री हैं। इड की समस्त इच्छाएँ तथा विचार आत्मगत वास्तविकता (Subjective Reality) से सम्बन्धित होते हैं। इड का वातावरण की वास्तविकता से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता है। यह केवल इच्छाओं को समाहित किये हुए हैंन। इड की समस्त शक्ति इच्छाओं में प्रयुक्त होती है। अतः यह केवल एक ही कार्य करती है वह है 'इच्छा करने का'। इड का नैतिकता, तार्किकता, समय, स्थान और मूल्यों से कोई सम्बन्ध नहीं होता अतः इसमें एक ही साथ बिल्कुल दो विरोधी इच्छाएँ उपस्थित हो सकती हैं। इड की शक्ति व्यक्तित्व के किसी अल्प संघटक की अपेक्षा चलयमान होती है। वह जल्दी-जल्दी इधर-उधर चलती फिरती रहती है किसी स्थान पर आसानी से नहीं जमती। इड में प्रेम तथा घृणा की इच्छाएँ अपनी तृप्ति का प्रयास करती रहती हैं। अतः स्पष्ट है कि इड की विषय-सामग्री अनश्वर है तथा सत्यगत प्रभावों से मुक्त है।[1]

इड का प्रमुख शारीरिक कार्य इच्छाओं की संतुष्टि है। तात्कालिक तनाव निवारण ही इड का प्रमुख कार्य है। वह प्रक्रिया (Pleasure Principle) पर आधारित होती है। वह अपने उद्देश्यों की पूर्ति सुखवाद-नियम के आधार पर करता है। इड का एकमात्र मनोवैज्ञानिक कार्य इच्छा उत्पन्न करना है।[2]

अहं (इगो)

फ्रायड ने Ego का तात्पर्य (Self) या चेतन बुद्धि (Conscious intelligence) से माना है। Ego हमारे व्यक्तित्व का वह अंश है जो बाह्य वास्तविकता से सम्पर्क रखता है। यह बाह्य वातावरण के साथ सम्पर्क स्थापित करने का एक मात्र साधन है। यह व्यक्तित्व का व्यवस्थित उपांश है। इगो व्यक्तित्व का केंद्र है जो इड आवेगों तथा बाह्य जगत, सुपर इगो तथा बाह्य जगत्, इड तथा सुपर इगो के मध्य संयोजन का कार्य करता है। यह प्रजातन्त्र के मुखिया की भाँति व्यक्तित्व के दूसरे संघटकों को नियंत्रित करता है और उनसे नियंत्रित भी होता है। प्रत्यक्षीकरण, सीखने, स्मरण, तर्क एवं विचार के आधार पर **अहं** (Ego) व्यवहार को इस प्रकार निर्देशित करता है जिससे इड आवेगों की पूर्ति बाह्य वास्तविकता के अनुरूप हो सके।

बाह्य वातावरण के प्रभाव के परिणामस्वरूप इड का एक अंश विशिष्ट रूप से विकसित होता है, जिससे वह इड तथा बाह्य जगत् के बीच मध्यस्थ का कार्य कर सके। इसी विकसित अंश को **फ्रायड** ने 'अहं' की संज्ञा दी है। अतः इगो, इड का ही एक विशिष्ट अंश है। इड वंशानुगत होता है। वंशानुगत पदार्थों पर वातावरण के प्रभावों के फलस्वरूप इगो का विकास होता है। इड के माध्यम से ही वंशानुक्रम अहं को प्रभावित करता है। अतः अहं के अस्तित्व में आने से पहले ही इसके विकास

---

1. Hall and Lindzey. *Hand book of Social Psychology*. P. 149
2. जे० एफ० ब्राउन, डॉ० डी० एन० श्रीवास्तव, *आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान,* पृ० 123 उद्धृत।

की रूपरेखा तथा क्रियाएँ वंशानुक्रम द्वारा निर्धारित होती हैं। अतः इगो की उत्पत्ति अनुभव द्वारा ही नहीं होती वरन् प्राणी में पहले से तैयार इस मूल पदार्थ पर अनुभव द्वारा डाले जानेवाले प्रभाव के परिणामस्वरूप अहं का उद्‌भव होता है।

इड का सम्बन्ध Subjective Reality से होता है और इगो मन और बाह्य जगत् में उपस्थित वस्तुओं में अन्तर करता है। इगो इड का ही विकसित रूप है और उसी से शक्ति भी प्राप्त करता है। इगो में अपनी कोई शक्ति नहीं होती। इगो का उद्‌देश्य इड की इच्छाओं की पूर्ति करना है न कि बाधा उत्पन्न करना। इगो का इड से अलग कोई अस्तित्व नहीं है क्योंकि इगो इड का ही एक विकसित अंश है, व्यक्तित्व का केंद्र है, जो इड और बाह्य वातावरण के मध्य तथा इड और सुपरइगो के मध्य संयोजन का कार्य करता है।

(Ego) में बाह्य जगत् का ज्ञान एकत्रित होता है। इगो (Ego) की ही यह जिम्मेदारी है कि वह बाह्य जगत् से ज्ञान का आदान-प्रदान करता रहे।

इगो तर्क संगत होता है और Space-time के सम्बन्ध को जानता है अतः अहं का मूल उद्‌देश्य व्यक्ति के जीवन की बाह्य जगत् के खतरों से रक्षा करना होता है। इगो अपने उद्देश्यों की पूर्ति नियम व संतुष्टि से Secondary Process के आधार पर करता है। इसका अर्थ यह नहीं कि सुखवाद के नियम का विरोधी है वरन् उपर्युक्त स्थिति में यह तात्कालिक तृप्ति में भी सहायक होता है। इगो व्यक्तित्व का बौद्धिक पक्ष है। संक्षेप में अहं के प्रमुख कार्य हैं- शरीरवर्द्धन तथा सुरक्षा की आवश्यकता पूरी करना (2) 'इड' के आवेगों को वास्तविकता के अनुरूप अभिव्यक्ति देना, (3) 'इड' तथा सुपर इगो के विरोधी इच्छाओं में सामंजस्य उत्पन्न करना, (4) बाधा के उपस्थित होने पर अपनी उपयुक्तता की रक्षा तथा चिन्ता के बचाव Defence mechanism का प्रयोग करना। अवदमन, प्रतिगमन, प्रतिकरण, रूपान्तर तथा फैंटेसी आदि अचेतन प्रयासों का प्रयोग करना जो अहं द्वारा अहं के लिए ही प्रयुक्त होते हैं।

सुपर इगो (Super Ego)

सुपर इगो व्यक्तित्व का नैतिक पक्ष है यह अंश मानव व्यक्तित्व में सबसे बाद में विकसित होता है। यह वह मुख्य शक्ति होती है जो व्यक्ति का समाजीकरण करती है। माता-पिता, गुरुजन तथा समाज के नैतिक मूल्यों एवं आदर्शों की अभिव्यक्ति सुपर इगो के रूप में होती है। यह वास्तविकता के स्थान पर आदर्श को व्यक्त करती है और इसका उद्देश्य सुख की प्राप्ति न होकर पूर्णता की प्राप्ति है।

सुपर इगो, इगो का ही एक विशिष्ट रूप है। यह बाल्यावस्था में इगो से ही विकसित होती है। यह तादात्म्य और अन्तर्निवेश की मानसिक मनोरचनाओं की सहायता से सम्पादित होती है। माता-पिता के गुणों को प्रारम्भिक आयु में बच्चा अपने में आत्मसात् कर लेता है जो सुपर इगो के रूप में विकसित होते हैं।

सुपर इगो के दो पक्ष हैं : (1) आदर्श अहं (Ego Ideal) तथा (2) अन्तरात्मा (Conscience)। माता-पिता के दण्ड देनेवाले गुण उसकी अन्तरात्मा तथा पुरस्कार देनेवाले गुण 'आदर्श अहं' (Ego Ideal) का रूप धारण करते हैं।[1] जब अहं, आदर्श अहं की आशा के अनुरूप व्यवहार नहीं करता

1. जयगोपाल त्रिपाठी, *असामान्य मनोविज्ञान,* पृ० 102

तो अन्तरात्मा अहं के अपराध की भावना उत्पन्न करती है और जब अहं सुपर इगो के आदर्शों के अनुरूप चलता है तो उसमें गर्व की भावना उत्पन्न होती है।[1] आदर्श अहं सुपर इगो का धनात्मक तथा अन्तरात्मा ऋणात्मक पक्ष होता है। सामान्यतः माता-पिता बच्चों के पालन-पोषण करने में, उन्हें आज्ञा देने में, उन पर दोषारोपण करने, भय दिखाने तथा समझाने में अपनी 'सुपर इगो' द्वारा नियंत्रित होते हैं। इस कारण बच्चे की सुपर इगो में माता-पिता के व्यवहार का प्रतिबिम्ब न होकर वास्तव में उनकी सुपर इगो की प्रतिच्छाया होती है। इस प्रकार समाज की परम्परागत मान्यताएँ तथा आदर्श एक पीढ़ी तक आगे बढ़ते रहते हैं।

सुपर इगो के कार्य इड तथा इगो की अपेक्षा भिन्न हैंन। यह इगो का ही विकसित रूप है, जो सामाजिकता तथा नैतिकता का प्रतिनिधित्व करता है। सुपरइगो, इगो के उन सभी कार्यों पर रोक लगाती है जो सामाजिक तथा नैतिक नहीं हैं। वस्तुतः सुपर इगो मूल प्रवृत्तियों की संतुष्टि पर रोक लगाती है। सुपर इगो की यह कार्य-प्रक्रिया वास्तविकतावाद के नियमों पर आधारित न होकर पूर्णतावाद तथा प्राप्त न हो सकनेवाले उच्च आदर्शों एवं प्रमाणों पर आधारित होता है। सुपरइगो का इगो के प्रति कार्य और व्यवहार लगभग वैसा ही होता है जैसा एक बच्चे के प्रति माता-पिता का व्यवहार। सुपरइगो के प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं : (1) इड के अनैतिक असामाजिक और कामुक आवेगों पर रोक लगाना क्योंकि इनकी अभिव्यक्ति समाज में सबसे निन्दनीय है। (2) इगो के लक्षणों को यथार्थ के स्थान पर नैतिक और सामाजिक लक्ष्यों की ओर ले जाना। (3) पूर्ण सामाजिक और आदर्श प्राणी बनाने हेतु प्रयास करना तथा (4) पूर्णत्व की प्राप्ति हेतु प्रयास करना।

इड तथा सुपर इगो में समानता भी है और विरोध भी। समानता इस बात में कि दोनों ही तर्क का आश्रय नहीं लेती तथा वे व्यक्ति पर भूतकालों का प्रतिनिधित्व करती हैं। यह भूतकाल इड में जैविक वंशानुक्रम के रूप में और सुपरइगो में सामाजिक परम्पराओं तथा आदर्शों के रूप में विद्यमान रहता है। सुपर इगो तथा इड में विरोध भी है। इड केवल सुख के नियम द्वारा नियंत्रित होती है।

सुपर इगो व अहं में समानता भी है और विरोध भी। यह इगो की भाँति मूलप्रवृत्तियों के संतुष्टीकरण पर रोक तो लगाती है किन्तु इगो की तरह इस सन्तुष्टीकरण को थोड़ी देर के लिए रोक देने तथा अनुकूल समय एवं परिस्थिति के उपस्थित होने पर उन्हें संतुष्ट करने के स्थान पर उनकी सन्तुष्टि पर सदैव के लिए रोक लगाने की चेष्टा करती है।

इड, इगो तथा सुपर इगो से ही व्यक्तित्व की संरचना होती है। इड इगो तथा सुपर इगो स्थिर इकाइयाँ नहीं हैं वरन् वे गतिशील हैं। इनमें आपस में खींचतान मची रहती है तथा अन्तर्द्वन्द्व मचा रहता है। 'इड' पूर्ण रूप से सुख के नियम से, इगो वास्तविकता के नियम से तथा सुपरइगो नैतिकता से अर्थात् निरपेक्ष नियोग के नियम से नियमित-प्रेरित होती है। अतः इन तीनों में आपस में विरोध और सामंजस्य बना रहता है। इगो एक ओर तो 'इड' के आदेशों की संतुष्टि का प्रयास करता है तो दूसरी ओर सुपर इगो को भी सन्तुष्ट रखता है। अहं की हालत एक ऐसे सेवक की भाँति है, जिसे दो प्रबल विरोधी मालिकों की आज्ञा का पालन करना पड़ता है। इसी कारण इन तीनों के मध्य सतत्

---

1. जयगोपाल त्रिपाठी, *असमान्य मनोविज्ञान,* पृ० 102

संघर्ष चलता रहता है। इड, इगो तथा सुपर इगो के मध्य अन्तर्द्वन्द्व चेतन तथा अचेतन दोनों स्तरों पर हो सकता है। सामान्य व्यक्तित्व में इन तीनों अंगों में सामंजस्य होता है। फ्रायड ने व्यक्तित्व के इन तीनों संघटकों को एक-दूसरे से पृथक् नहीं माना है। यदि इन तीनों संघटकों में से कोई भी एक या दो संघटक अधिक प्रभावशाली हो जाते हैं तो सामंजस्य और समन्वय बिगड़ जाता है और व्यक्तित्व असामान्य हो जाता है। इगो व्यक्तित्व का केंद्रक है यह इड, सुपर इगो और वातावरण की वास्तविकताओं के मध्य समन्वय और सामंजस्य बनाकर क्रिया का व्यवहार करता है। निम्न चित्र द्वारा यह अधिक स्पष्ट हो जायेगा।[1]
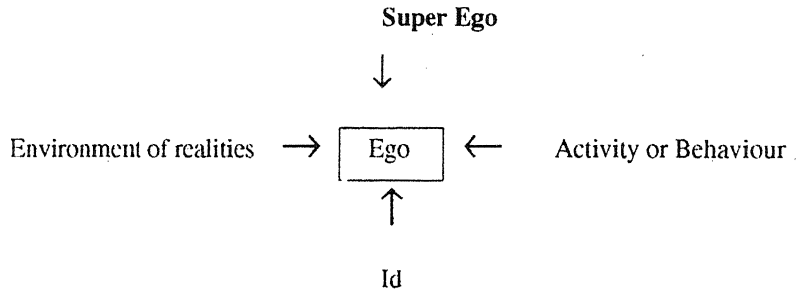
इड, सुपर इगो और वातावरण की वास्तविकताओं के मध्य इगो में जितना अधिक सामंजस्य करने की समझ होगी व्यक्ति का व्यक्तित्व उतना ही स्थायी होगा। **फ्रायड** सामान्य व्यक्तित्व की इकाई के इन तीनों संघटकों को एक-दूसरे से पृथक् नहीं मानता तीनों संघटकों के मध्य कोई सीमांकन रेखा नहीं है वरन् रंग के उन तीनों क्षेत्रों के समान है, जिनमें एक ही रंग के तीन शेड इस प्रकार आपस में मिले हुए हैं कि यह निर्धारित करना होगा कि कौन सा शेड किस सीमा से शुरू होता है और कहाँ समाप्त हुआ, अत्यन्त कठिन है।[2] अतः व्यक्तित्व इड, इगो तथा सुपर इगो का समन्वय और सामंजस्य है।

फ्रायड ने मानसिक क्रियाओं को तीन स्तरों चेतन, अर्धचेतन तथा अचेतन में विभाजित किया है। **फ्रायड** ने मन की तुलना आइसवर्ग से की है जिसका 9/10 भाग पानी में तथा 1/10 भाग पानी से ऊपर रहता है। **फ्रायड** का विचार है कि पानी के अन्दर वाला भाग अचेतन तथा पानी के बाहर वाला भाग चेतन है तथा जो भाग पानी की ऊपरी सतह को छूता है वह अर्धचेतन या अवचेतन कहलाता है। इस प्रकार मानसिक क्रियाएँ निम्न तीन स्तरों पर सम्पादित होती हैं:

1. चेतन 2. अर्धचेतन तथा 3. अचेतन

चेतन : (Conscious)

फ्रायड ने चेतन को मन का वह भाग कहा है जिसका सम्बन्ध तुरन्त ज्ञान से होता है। वस्तुतः चेतन स्तर पर वह सभी मानसिक एवं शारीरिक क्रियाएँ आती हैं, जिनके प्रति हम जागरूक हैं तथा जिनका सरलता से प्रत्याह्वान किया जा सकता है। इनका प्रयोग वातावरण को समझने में किया जाता है। वास्तव में चेतन का अर्थ ज्ञान से है जैसे कोई व्यक्ति पढ़ रहा है तो उसे पढ़ने की चेतना होती

---

1. डॉ० डी० एन० श्रीवास्तव, *आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान,* पृ० 126
2. जयगोपाल त्रिपाठी, *असामान्य मनोविज्ञान,* पृ० 103

है, जो लिख रहा है, उसे लिखने की चेतना होती है इसी प्रकार जो देख रहा है, उसे देखने की चेतना होती है अर्थात् व्यक्ति जिन शारीरिक और मानसिक क्रियाओं के प्रति जागरूक होता है वह चेतन स्तर पर घटित होती है। चेतन स्तर पर घटित होनेवाली प्रत्येक क्रियाओं-प्रति-क्रियाओं की जानकारियाँ चेतना शक्ति को रहती है। यद्यपि चेतना में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं परन्तु चेतना में निरन्तरता होती है अर्थात् चेतना कभी लुप्त नहीं होती।

अर्धचेतन (Preconscious or Foreconscious) :

अर्धचेतन मन का वह भाग होता है, जिसकी स्मृतियों को कभी भी याद किया जा सकता है।[1] किन्तु स्मृतियों व विषय सामग्री के प्रत्याह्वान करने के लिए व्यक्ति को प्रत्यत्न करना पड़ता है। व्यक्ति जिन अनुभवों व स्मृतियों को याद करके अपने चेतन मन में लाता है, वह अनुभव मन के इसी भाग में पड़े रहते हैं। सीखने और आदतों से सम्बन्धित सामग्री मन के इसी भाग में एकत्रित रहती है। अर्धचेतन की विषय-सामग्री वास्तविकता से संगति रखती है।

अचेतन (Unconscious) :

अचेतन के अन्तर्गत वह समस्त विषय-सामग्री आती है, जिसकी न तो हमें जानकारी होती है और न जिस पर हमारा ऐच्छिक नियंत्रण ही होता है। उसके सम्बन्ध में हमें सामान्य ढंग से उस समय तक जानकारी नहीं हो सकती जब तक किसी विशेष ढंग जैसे-सम्मोहन, मुक्त-साहचर्य प्रोजेक्टिव टेक्नीक आदि का सहारा न लिया जाय। अचेतन, तर्क, समय, स्थान के प्रभाव से परे हैं। सम्मोहन तथा सम्मोहनेत्तर स्थिति, स्वप्न, दिन-प्रतिदिन की भूलें, नशे की स्थिति का प्रलाप, मानसिक रोग आदि अचेतन को प्रमाणित करते हैं।

फ्रायड के अनुसार, "अचेतन मन, मन का वह भाग है, जिसमें ऐसी विषय सामग्री होती है, जिसे व्यक्ति इच्छानुसार याद करके चेतना में लाना चाहे तो नहीं ला सकता है।"[2] अचेतन में मानव के विचार, इच्छाएँ तथा संवेग दमित होते हैं। मन का यह भाग चेतन तथा अवचेतन की भाँति एक प्रकार का स्टोर है, जिसमें इच्छाएँ तथा विचार स्टोर कर दिये जाते हैं। जो अचेतन मन में आने का प्रयास करती रहती हैं और कई बार रूप बदल-बदलकर चेतन मन में प्रवेश भी कर जाती हैं।

अचेतन हमारे मन का एक बड़ा अंश है। अचेतन की तुलना (Iceberg) आइसबर्ग से की जा सकती है। जिस प्रकार Iceberg का 1/10 भाग पानी के ऊपर तथा शेष 9/10 पानी के अन्दर रहता है उसी प्रकार हमारी मानसिक क्रियाओं का 9/10 भाग अचेतन है तथा शेष 1/10 चेतन।

हमारे जीवन के दुःखद तथा अमान्य विचार जो पहले चेतन होते हैं repression की प्रक्रिया द्वारा अचेतन में दमित कर दिये जाते हैं और वे अचेतन का अंश बन जाते हैं। उसी प्रकार इड की अनेक इच्छाएँ तथा आवेग जो कभी चेतन थीं ही नहीं, अचेतन होती हैं तथा उसका ही अंश होती हैं। अचेतन मन की तुलना एक कूप से भी की जा सकती है, जिसमें ऊपर से तो कुछ दिखाई नहीं पड़ता कि पानी में क्या क्या है? किन्तु पानी के भीतर तरह-तरह के जीव-जन्तु छिपे रहते हैं।

---

1. डॉ० डी० एन० श्रीवास्तव, *आधुनिक असमान्य मनोविज्ञान,* पृ० 120 Foreconscious is that segment of the mind which is concerned with reality recallable material : S. Freud.
2. वही, पृ ०120
(Unconscious is that segment of the mind which is concerned with which we can not recall at will : S. Freud.

अचेतन मन लिबिडो का स्टोर हाउस कहा जाता है। अचेतन में इगो और सुपर इगो के द्वारा सेन्सर और दमित की हुई काम भावनाएँ, इच्छाएँ, विचार, भावनाएँ, प्रेरणाएँ व संवेग इत्यादि स्टोर किये होती हैं ज़ो सदैव गत्यात्मक होती हैं। इनकी अभिव्यक्ति स्वप्नों में होती है। अचेतन सभी अतृप्त इच्छाओं को स्वीकार कर लेता है। अचेतन मन मानव व्यवहार को महत्त्वपूर्ण ढंग से प्रभावित करता है। अचेतन मन की विषय-सामग्री का रूप सेक्सुअल होता है, इसमें तर्क और नैतिकता का कोई स्थान नहीं होता। यह सुखवाद के नियम से नियमित होती है।

इड, इगो और सुपर इगो का चेतन, अर्धचेतन और अचेतन से घनिष्ठ सम्बन्ध है। चेतन-अचेतन तथा अर्धचेतन एक प्रकार से मन के स्टोर हाउस हैं, जहाँ पर इच्छाएँ, भावनाएँ, विचार तथा कामनाएँ आदि दमित होती हैं। इड, इगो और सुपर इगो मानसिक प्रक्रिया के इन तीनों स्तरों को ही अपना कार्य-क्षेत्र बनाते हैं। इड आवेग अचेतन तथा अवचतेन होता है। अतः इड का कार्यक्षेत्र अचेतन मन है। अहं अधिकांश चेतन स्तर पर कार्य करता है लेकिन अहं का कुछ कार्य अचेतन और अर्धचेतन स्तर पर भी होता है अतः इगो का कार्यक्षेत्र अधिकांशतः तो चेतन है किन्तु कुछ अंश तक अर्धचेतन और अचेतन भी है। सुपर इगो तीनों स्तरों पर कार्य करती है अतः सुपर इगो का कार्यक्षेत्र अवचेतन तथा अचेतन अधिक है- चेतन कम। ये समस्त स्तर व्यक्तित्व के भौगोलिक पक्ष हैं, जिसमें इड, इगो तथा सुपर इगो के मध्य अन्तर्द्वन्द्व छिड़ा रहता है। हमारा समस्त व्यवहार इन चेतन, अवचेतन तथा अचेतन के निराकरण के ढंगों का परिणाम है।

अचेतन **फ्रायड** का मौलिक विचार नहीं है अपितु **फ्रायड** ने अचेतन को वैज्ञानिक रूप दिया है और मानव व्यवहार में अचेतन की महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रतिपादित की।

इस प्रकार स्पष्ट है कि व्यक्तित्व के विकास और मानव-व्यवहार में जहाँ एक ओर इड, इगो तथा सुपर इगो अपना महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं, वहीं दूसरी ओर चेतन, अर्धचेतन तथा अचेतन, इड, इगो तथा सुपर इगो का कार्य-क्षेत्र बन मानव-व्यवहार को प्रभावित करते हैं।

काव्य-सर्जना में कवि का व्यक्तित्व एवं मानसिकता दृष्टिगोचर होती है। कवि तथा लेखक सर्जन करते समय अपने पूर्ण मस्तिष्क से साधनारत होते हैं। व्यक्तित्व के प्रत्येक व्यवहार का कोई-न-कोई कारण अवश्य होता है अतः प्रत्येक काव्य-सर्जना के पीछे भी कोई-न-कोई कारण या घटना अवश्य होती है। अतः काव्य-सर्जना में **फ्रायड** के सिद्धान्त Psychic Determinism का हाथ होता है। काव्य-क्षेत्र में जब कवि-प्रवृत्ति के व्यक्ति का किसी वस्तु अथवा घटना से साक्षात्कार होता है तो वह पूर्णतः उसमें रम जाता है। अतः कवि की सर्जना के पीछे कोई भी वस्तु अथवा घटना का साक्षात्कार ही मूल आधार है।

प्रत्येक कवि-प्रकृति व्यक्ति में कुछ प्राथमिक प्रेरणाएँ होती हैं, जो जन्मजात और अनर्जित हैं। वह जो भी सृजन कार्य करता है, उसके पीछे शक्ति का स्रोत यही मूल प्रवृत्तियाँ हैं, यही काव्य-सृजन का संचालन और दिशा निर्धारित करती हैं। काव्य-सर्जना का व्यवहार कवि व्यक्तित्व संरचना के माध्यम से वातावरण में सम्पादित होता है। जीवन के अनुभव के साथ कवि भी अनुभव प्राप्त करता है। कवि के अनुभव के साथ-साथ उसकी मूल प्रवृत्तियों में भी परिवर्तन होता जाता है। इस प्रकार कवि के व्यक्तित्व की गतिशीलता की ये प्रवृत्तियाँ एक प्रमुख स्रोत बन जाती हैं। यही मूल प्रवृत्तियाँ

कवि की मानसिक शक्ति का भी स्रोत हैं। प्रत्येक मानव-व्यक्तित्व की भाँति कवि-प्रकृति व्यक्तित्व में दो प्रकार की मूल प्रवृत्तियाँ होती हैं। प्रथम जीवन मूलक प्रवृत्ति तथा द्वितीय मृत्यु मूलक प्रवृत्ति। यही मूल प्रवृत्ति कवि-प्रकृति व्यक्ति को संरचनात्मक कार्यों के लिए प्रेरित करती है। यह प्रवृत्ति सुखवाद के सिद्धान्त से नियमित होती है। अतः आत्मप्रेम, दूसरे के प्रति प्रेम तथा सुख-प्राप्ति के अन्य साधन जैसे रोमांटिकता आदि के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। फलतः यहाँ रोमांस केवल प्रेमी, प्रेमिका या पति-पत्नी के मध्य ही नहीं वरन् विस्तृत रूप से अभिव्यक्त होता है। इसके अन्तर्गत भाई-बहन का प्रेम, मित्रों का पारस्परिक प्रेम, संतान के प्रति प्रेम, देश-प्रेम, प्रकृति-प्रेम, मानवता के प्रति प्रेम इत्यादि सभी कुछ सम्मिलित हैं। Sex Drives के कारण ही कवि मानव, समाज तथा प्रकृति की सेवा करके सुख की प्राप्ति कर, सन्तुष्टि प्राप्त करता है और परम सुख को प्राप्त कर अपना जीवन सुखमय बनाता है। कवि की जीवन मूल-प्रवृत्ति से सम्बन्धित यह मानसिक ऊर्जा **लिबिडो** कहलाती है। अतः कवि लिबिडो के कारण ही स्वान्तः सुखाय और बहुजनहिताय दोनों ही प्रकार की रचनाओं की सर्जना करता है क्योंकि लिबिडो कवि की जीवन-शक्ति का एक महत्तवपूर्ण भाग है। **फ्रायड** का विचार है कि मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से कामजनित आवेगों, सुरक्षात्मक आवेगों तथा रचनात्मक एवं बौद्धिक क्रियाओं में जीवन मूलक प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति होती है अतः कवि की सभी रचनात्मक एवं बौद्धिक क्रियाओं का स्रोत यही जीवन मूलक प्रवृत्ति है।

मृत्युमूलक प्रवृत्ति का सम्बन्ध घृणा और ध्वंस करने सम्बन्धी प्रवृत्ति और व्यवहार से होता है। नवस्वच्छन्दतावादी काव्य-सर्जना के मूल में कवि की यह मूल प्रवृत्ति सक्रिय रहती है। क्रान्ति और परम्परा का विद्रोह, रूढ़ियों को तोड़ना, शोषण के प्रति घृणा तथा सम्पूर्ण सामाजिक-व्यवस्था को पूर्णतया बदल देना और उसके स्थान पर एक नवीन व्यवस्था की कल्पना इन सभी प्रेरणाओं के मूल में कवि की मृत्युमूलक प्रवृत्तियाँ ही अभिव्यक्त होती हैं। कवि मन जहाँ एक ओर मानव-प्रकृति तथा समाज से प्रेम करता है वहीं दूसरी ओर मानव-प्रकृति तथा सामाजिक नियम व व्यवस्था के प्रति घृणा व विध्वंस के भाव भी रखता है। आलोचना तथा व्यंग्य के भाव इस मृत्यु मूल-प्रवृत्ति की ही अभिव्यक्ति हैं। कवि का आक्रामक व्यवहार, ध्वंसात्मक बौद्धिक व रचनात्मक कार्य कवि की मृत्यु-मूलक प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति का परिणाम है। नवस्वच्छन्दतावादी काव्य-सर्जना जीवन तथा मृत्यु दोनों मूल प्रवृत्तियों को अभिव्यक्ति देती है। अतः नवस्वच्छन्दतावादी कवि के काव्य में रोमांटिकता तथा क्रांति दोनों ही प्रवृत्तियाँ दिखायी देती हैं। इस प्रकार नवस्वच्छन्दतावादी काव्य के मूल में ये दोनों प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। समस्त काव्य इन दोनों मूल वृत्तियों के संघर्ष तथा सहयोग का परिणाम है।

'इड' जीवन और मृत्यु दोनों ही मूल प्रवृत्तियों का केंद्र होता है। 'इड' मानसिक तथा आन्तरिक जगत् दोनों का प्रतिनिधित्व करता है। बाह्य परिवेश से इसका कोई सम्बन्ध नहीं होता और न ही बाह्य वास्तविकता का इसको कोई ज्ञान होता है। यह केवल इच्छाओं को अपने में समाहित किये हुए है। यह सुखवाद के नियम पर आधारित होता है अतः केवल सुख भोगना इसका मुख्य उद्देश्य है। अतः सैक्सुअल इम्पलसेस के कारण यह रोमांटिकता को जन्म देता है। इड गत्यात्मक होता है। इनमें दो विरोधी इच्छाएँ एक साथ उपस्थित हो सकती हैं। इड कवि मन में इच्छाएँ उत्पन्न करके रोमांटिकता को बढ़ावा देता है।

इगो का सम्बन्ध बाह्य वास्तविकता से होता है। इगो का विकास बाह्य परिवेश में होता है। 'इड' पर बाह्य परिवेश तथा वातावरण का प्रभाव पड़ता है तो वह अधिक विकसित होकर 'इगो' बन जाता है। इगो यथार्थ के सिद्धान्त पर आधारित होता है। यथार्थ के नियमानुसार नियमित होने के कारण इगो परिवेशगत यथार्थ से भलीभाँति परिचित होता है और परिवेशगत यथार्थ के सम्पर्क में रहता है। इगो ही मन तथा बाह्य जगत् में उपस्थित वस्तुओं में अन्तर करता है तथा इगो में ही बाह्य जगत् का ज्ञान भी एकत्रित रहता है। इगो का ही यह उत्तरदायित्व है कि वह बाह्य जगत् से ज्ञान का आदान-प्रदान करता रहे। नवस्वच्छन्दतावादी कवि का इगो सक्रिय रहता है। वह 'इड' का विरोध तो नहीं करता वरन् उसकी तात्कालिक तृप्ति में सहायक ही होता है।

'इड' में उत्पन्न रोमांटिकता को इगो बौद्धिकता के साथ समन्वित करता है और तनाव निराकरण के लिए फैंटेसी आदि अचेतन प्रयास भी इगो द्वारा ही कार्यान्वित किये जाते हैं। इस प्रकार नवस्वच्छन्दतावादी कवि रोमांटिकता के बौद्धिक पक्ष को फैंटेसी आदि अचेतन क्रियाओं के मध्य परिवेशगत यथार्थ के परिप्रेक्ष्य में अभिव्यक्ति प्रदान करता है। इस प्रकार नवस्वच्छन्दतावादी कवि अपने अन्तः तथा बाह्य की अभिव्यंजना अपने उत्कृष्ट सृजन में सहजता से करता है। इगो 'इड' तथा बाह्य जगत् और 'इड' तथा सुपर इगो में सामंजस्य पैदा करता है।

सुपर इगो भी बाह्य परिवेश में विकसित होता है। यह नैतिकता के नियम से नियमित होता है। सुपर इगो व्यक्ति का समाजीकरण करती है। माता-पिता, गुरुजन तथा समाज के नैतिक आदर्शों एवं मूल्यों की अभिव्यक्ति सुपर इगो के रूप में होती है। वास्तविकता के स्थान पर आदर्श की अभिव्यंजना सुपर इगो का ही कार्य है। सुपर इगो का उद्देश्य सुख की प्राप्ति न होकर पूर्णता की प्राप्ति है, समाज की परम्परागत मान्यताएँ तथा आदर्श एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक सुपर इगो के कारण ही आगे बढ़ते रहते हैं। लोक-परिवेश, लोक-संस्कृति, लोक-गीत तथा लोक-चेतना सुपर इगो के कारण ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आगे बढ़ते रहते हैं। सुपर इगो ही मानव को नव-मानव बना देती है। सामाजिकता तथा नैतिकता का प्रतिनिधित्व करने के कारण सुपर इगो, इगो के उन सभी कार्यों पर रोक लगा देती है जो सामाजिक तथा नैतिक दृष्टि से हेय हैं। सुपर इगो बाल्यकाल से ही विकसित होती है। यही कारण है कि बालक बचपन से ही माता-पिता के गुणों, व्यवहार, संस्कृति, पारिवारिक रीति-रिवाजो तथा लोक-परिवेश एवं लोक-चेतना व लोक-गीत को आत्मसात् कर लेता है। सुपर इगो इड के अनैतिक, असामाजिक तथा कामुक आवेगों पर रोक लगाती है। यही कारण है कि स्वच्छन्दतावाद तथा नवस्वच्छन्दतावाद दोनों में ही कामुक एवं वासनात्मक प्रेमाभिव्यक्ति न होकर निश्चल तथा शाश्वत 'प्रेमाभिव्यक्ति' होती है। वासनामय तथा कामुक प्रेमाभिव्यक्ति अनैतिक तथा समाज में निन्दनीय है।

काव्य-सर्जना में मानसिक क्रियाओं के तीनों स्तरों चेतन, अर्धचेतन तथा अचेतन का प्रमुख योगदान है। कवि की सर्जना में चेतन-अचेतन का समन्वित रूप दिखायी पड़ता है तथा मानव-जीवन की अभिव्यंजना में चेतन-अचेतन दोनों की अभिव्यंजना भी स्वाभाविक ढंग से होती है और ऐसा काव्य निश्चित रूप से उत्कृष्ट एवं मानव-जीवन की अभिव्यंजना से पूर्ण होता है। वस्तुतः मानव जीवन अचेतन शक्तियों से परिचालित होता है, अचेतन अतृप्त प्रेरणाओं का भण्डार है। बचपन की समस्त दमित अतृप्त इच्छाएँ अचेतन में चली जाती हैं और वहीं से अभिव्यंजना के लिए अवसर ढूँढ़ती हैं।

यही अतिरिक्त काम इच्छाएँ मनुष्य के कार्यों का कारण भी होती हैं। इस कार्य-शक्ति को लिबिडो कहा जाता है। लिबिडो ही मानव की सृजनात्मक प्रेरक शक्ति है। मानव में चेतन-अचेतन की बराबर क्रिया-प्रतिक्रिया होती रहती है क्योंकि चेतन-अचेतन की सीमाएँ कठोर नहीं हैं। मानव में चेतन-अचेतन गत्यात्मकतापूर्ण होता है। चेतन-अचेतन की गति संयुक्त पूर्ण है अतः काव्य-सर्जना में कवि अपनी मानसिकता के साथ साधनारत होते हैं तभी एक उत्कृष्ट साहित्य की सर्जना कवि व्यक्तित्व द्वारा सम्भव होती है। काव्भ-सर्जना चेतन स्तर पर होती है। कवि को काव्य-सर्जना करते समय सर्जना की चेतना होती है। कवि की काव्य-सर्जन की चेतना में निरन्तर परिवर्तन अपेक्षित है किन्तु सर्जन की चेतना कभी लुप्त नहीं होती।

अर्ध-चेतन मानव का स्मृति-पटल है, इसे कभी भी याद किया जा सकता है। व्यक्ति जिन अनुभवों व स्मृतियों को याद करके अपने चेतन मन में लाता है वह अनुभव मन के इसी भाग में पड़े रहते हैं। काव्य-सर्जना में अर्धचेतना भी प्रमुख कार्य करती है। जब कवि मन किसी वस्तु या दृश्य अथवा घटना से साक्षात्कार करता है तो वह वस्तु, दृश्य अथवा घटना कवि की अर्धचेतना में कहीं लुप्त रहती है जो वातावरण की अनुरूपता अथवा मिलती-जुलती घटना के बाद पुनः सम्पर्क में आते ही कवि के स्मृति-पटल पर अंकित होकर कवि की चेतना में प्रवेश कर जाती है। कल्पना के समस्त व्यापार भी कवि मन की अर्ध-चेतना में ही होते हैं। अतः नवस्वच्छन्दतावादी काव्य की जननी कल्पना भी अर्धचेतना से होती हुई कवि की सकारात्मक चेतना बन जाती है। अर्धचेतन 'सुपर इगो' का कार्यक्षेत्र है अतः नैतिकता तथा यथार्थवादी चेतना का उत्पत्ति-स्थल भी यही है। यहीं से काव्य में यथार्थवादी चेतना प्रवेश करती है।

मन का एक बहुत बड़ा भाग अचेतन है। मन के इस भाग को चेतना में नहीं लाया जा सकता है। अचेतन दमित इच्छाओं व संवेगों का स्टोर है। इसमें सक्रिय दमित इच्छाएँ स्टोर होती हैं जो सदैव क्रियाशील रहकर या रूप बदलकर मानव-चेतना में आने के लिए प्रयासरत रहती हैं।

अचेतन लिबिडो का भी स्टोर-हाउस है। अचेतन सभी अतृप्त इच्छाओं को स्वीकार कर लेता है। अचेतन की विषय-सामाग्री सेक्सुअल होती है। अचेतन का काव्य-सर्जना में महत्त्वपूर्ण योगदान होता है। अचेतन **'लिबिडो'** का कार्यक्षेत्र है, जो काव्य की प्रेरणा होती है। अचेतन में दमित इच्छाएँ, भावनाएँ तथा घटनाएँ काव्य-सर्जना की प्रेरणा बनते हैं। अचेतन इड का भी कार्यक्षेत्र है और 'इड' का कार्यक्षेत्र होने के कारण यह सुखवाद के नियम से संचालित होता है। 'इगो' का कुछ कार्य अचेतन स्तर पर भी होता है किन्तु 'सुपर इगो' का अधिकांश कार्य अचेतन स्तर पर होता है। अतः एक उत्कृष्ट काव्य की सृजना अचेतन और 'सुपर इगो' दोनों मिलकर करते हैं क्योंकि 'सुपर इगो' का उद्देश्य पूर्णत्व की प्राप्ति है। अतः काव्य पूर्णत्व को अचेतन स्तर पर ही प्राप्त करता है। 'सुपर इगो' की सामाजिक चेतना व नैतिकता काव्य को उत्कृष्ट रूप प्रदान करती है। सामाजिक परिवेश और अन्तःमन के संघात से ही उच्चकोटि के काव्य की अभिव्यंजना होती है। नवस्वच्छन्दतावादी काव्य सर्जना को इदम्, अहम् तथा अतिअहम् (सुपर इगो) के परिप्रेक्ष्य में चेतन, अर्द्धचेतन तथा अचेतन तीनों स्तरों पर मनोवैज्ञानिक सन्दर्भ में कला इस प्रकार अभिव्यंजित हो सकती है। यही कला की समकालीनता के साथ साहचर्य के सह सम्बन्ध का विस्तार है।
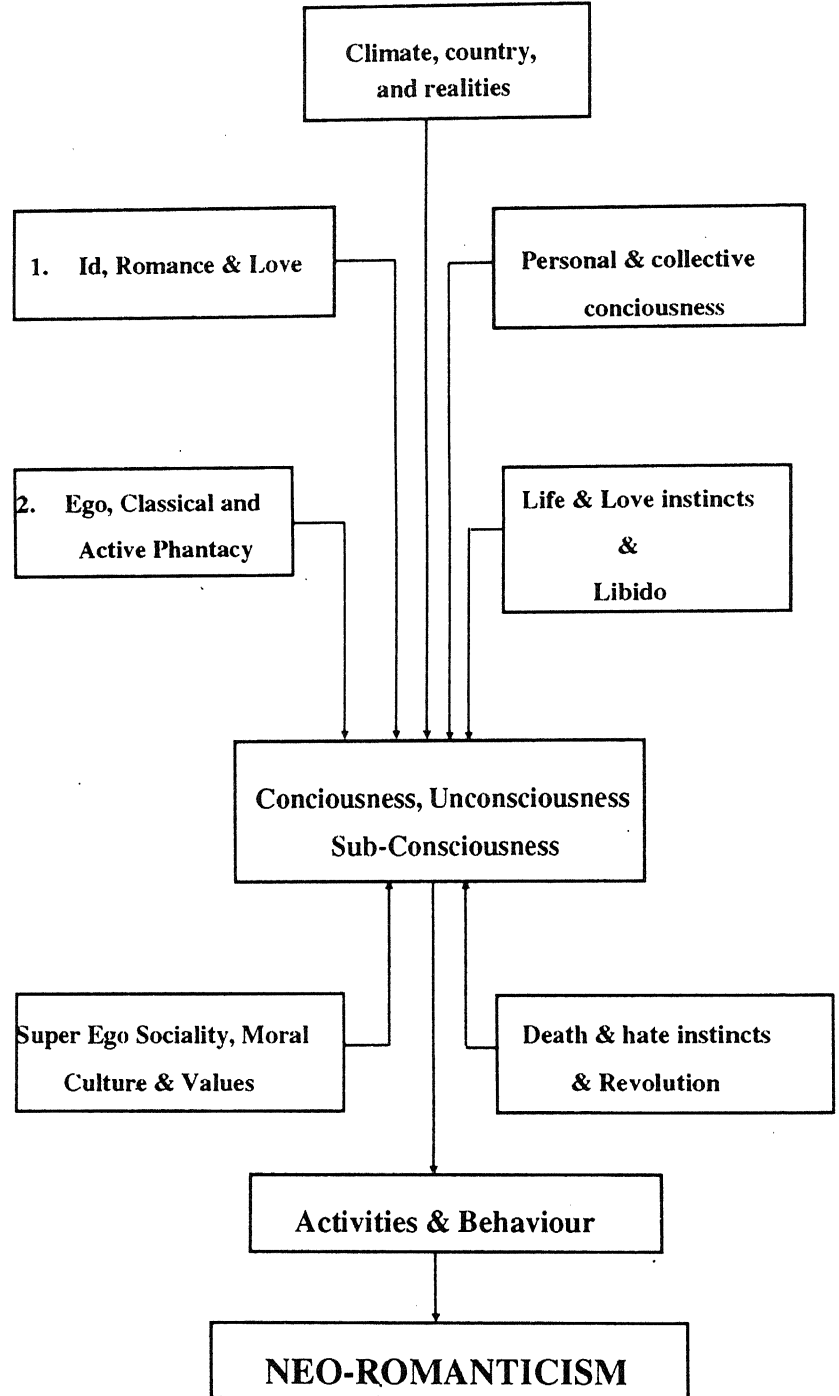
Climate, country,
and realities
1. Id, Romance & Love
Personal & collective
conciousness
2. Ego, Classical and
Active Phantacy
Life & Love instincts
&
Libido
Conciousness, Unconsciousness
Sub-Consciousness
Super Ego Sociality, Moral
Culture & Values
Death & hate instincts
& Revolution
Activities & Behaviour
NEO-ROMANTICISM

उपर्युक्त रेखाचित्र के माध्यम से नवस्वच्छन्दतावादी काव्यसर्जना में मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्तों का योगदान स्पष्ट होता है। मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में जीवनमूलक-प्रवृत्ति एवं मृत्युमूलक प्रवृत्ति, इड में उत्पन्न रोमांटिकता, इगो, क्लासिकल एवं सक्रिय कल्पना का योग, सुपर इगो, सामाजिकता, नैतिकता तथा सांस्कृतिक मूल्य, देशकाल, वातावरण तथा यथार्थ, व्यक्तिगत एवं सामूहिक अचेतन सभी कलाकार अथवा स्रष्टा के व्यक्तित्व को चेतन, अर्द्धचेतन तथा अचेतन तीनों स्तरों पर प्रभावित कर मानसिक व्यापार में संलग्न होते हैं तथा कलाकार अथवा स्रष्टा के कार्य एवं व्यवहार का संचालन और दिशा निर्धारित करते हैं । इस प्रकार स्रष्टा के व्यक्तित्व के माध्यम से जो कार्य एवं व्यवहार वातावरण में सम्पादित होता है वह साहित्य जगत में 'नवस्वच्छन्दतावाद' का रूप लेता है।

कार्ल युंग का सामूहिक अचेतन

युंग ने व्यक्तित्व के सिद्धान्त को प्रतिपादन करते हुए सामूहिक अचेतन के अर्थ को स्पष्ट किया है। व्यक्तित्व-सिद्धान्त प्रतिपादन के क्रम में **युंग** ने 'लिबिडो, अचेतन, पर्सोना, एनिमस' तथा 'शैडो' को विश्लेषित करते हुए व्यक्तित्व के प्रकार का भी विश्लेषण किया है। संक्षेप में **युंग** के व्यक्तित्व-सिद्धान्त के प्रमुख तत्त्वों के क्रमानुसार इस प्रकार विश्लेषित किया जा सकता है।

लिबिडो (Libido)

युंग ने लिबिडो को केवल शारीरिक काम-भावना की काम शक्ति के रूप में ही विश्लेषित नहीं किया वरन् वह 'लिबिडो' को मानव की समस्त जीवन-शक्ति का केंद्र मानता है जो मनुष्य के समस्त व्यवहारों को शक्ति प्रदान करती है। यह समस्त सामाजिक सम्पर्कों का मूल स्रोत भी है। 'लिबिडो' को **युंग** ने जीवन की सामान्य ऊर्जा ही माना है, जिसका उपयोग जैविक आवश्यकताओं की पूर्ति में सर्वप्रथम किया जाता है। जन्म से लेकर 5 वर्ष की आयु तक 'लिबिडो' बालक का अस्तित्व बनाये रखने के लिए आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। 5 वर्ष की आयु से किशोरावस्था तक कामुक लक्ष्यों का निर्देश करती है। 35 वर्ष की आयु से 'लिबिडो' आध्यात्मिक और दार्शनिक लक्ष्यों की ओर निर्देशित होती है। इस प्रकार **युंग** ने 'लिबिडो' के अर्थ का व्यापक वर्णन किया है।

अचेतन (Unconscious)

युंग ने अचेतन के दो स्तरों का वर्णन किया है :

1. व्यक्तिगत अचेतन (Personal Unconscious)
2. सामूहिक अथवा जातीय अचेतन (Collective or Racial unconcisous)

व्यक्तिगत अचेतन, अचेतन की सबसे ऊपरी सतह है, जिसका निर्माण व्यक्ति द्वारा अवदमित, विस्तृत तथा अचेतन रूप से सीखी गयी विषय-सामग्री से होता है। जिन अनुभवों को या तो व्यक्ति भूल चुका है या उनका दमन अथवा शमन हो चुका है, व्यक्तिगत अचेतन की सम्पत्ति है। व्यक्तिगत अचेतन में कल्पनाओं के साथ-साथ अस्पष्ट अनुभव भी होते हैं। Personal Conscious में अनेक मनोग्रंथियाँ अर्थात् complexes होते हैं जो दमित विचारों, भावनाओं और अभिवृत्तियों के समूह का जटिल रूप होती है। यही मनोग्रंथियाँ व्यक्ति के अनुभवों से गहरी सतह Racial या collective unconscious कहलाती हैं। **सामूहिक अचेतन** मानव-जाति के एकत्रित अनुभव हैं जो वंशानुक्रम के आधार पर हमें परम्परागत रूप में अपने माता-पिता से प्राप्त होते हैं। सामूहिक अचेतन का अस्तित्व

केवल आनुवंशिकता से है। अतः सामूहिक अचेतन का निर्माण अनिवार्यतः आद्यरूपों से होता है।[1] वस्तुतः मानव-जाति के एकत्रित अनुभवों का भण्डार ही सामूहिक-अचेतन कहलाता है। जिस प्रकार हमें जैविक गुण अपने पूर्वजों से परम्परागत एवं वंशानुक्रम में मिलते हैं या जिस प्रकार जैविक गुण परम्परागत होते हैं, जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक आदिम हैं और रहेंगे उसी प्रकार सामूहिक अचेतन भी परम्परागत अनुभव हैं जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी से आदिम हैं और रहेंगे। पूर्वजों के अनुभव या जातीय अनुभव मूलवृत्तियों, आद्यबिम्बों, प्रतीकों एवं मिथकों या फैंटेसी या आदिम प्रतिमाओं के रूप में मस्तिष्क संचरना में वंशानुक्रम अथवा परम्परा द्वारा प्राप्त होती है। **युंग** के सामूहिक अचेतन में मूल प्रवृत्तियों के साथ आद्य प्रारूप भी निहित है। मूल प्रवृत्तियाँ कार्य करने का आदिम ढंग हैं, जबकि आद्य प्रारूप चिन्तन करने का आदिम ढंग है। यह एक प्रकार का सार्वभौमिक विचार का रूप है, जिसमें संवेग अधिक मात्रा में निहित होता है।[2] वह अनुभव जो कई पीढ़ियों से लगातार दोहराया जाता रहा है मन में स्थायी रूप से एकत्र हो जाता है उसे **युंग** ने आद्य प्रारूप या Archetypes की संज्ञा दी है। उदाहरणार्थ मानव की असंख्य पीढ़ियों ने सूर्य को निकलते देखा है। इस अनुभव की निरन्तर पुनरावृत्ति के कारण यह अनुभव सामूहिक अचेतन में सूर्य-देवता के Archetype के रूप में स्थित हो गया है।

कुछ अन्य Archetype भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं जो व्यक्तित्व की पृथक् व्यवस्थाओं के रूप में विश्लेषित किये जा सकते हैं। ये हैं : पर्सोना, एनिमा, एनिमस तथा छाया।

पर्सोना

पर्सोना का शाब्दिक अर्थ 'नकाब' है। **युंग** ने पर्सोना एक सामाजिक 'नकाब' को कहा है जो एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के समक्ष ओढ़े रहता है। व्यक्ति की वह सामाजिक भूमिका जो वह समाज के अन्य सदस्यों के साथ अदा करता है, पर्सोना कहलाता है। वस्तुतः पर्सोना के साथ व्यक्ति की इगो तादात्म्य स्थापित करती है और इगो व्यक्ति की वह भूमिकाएँ अदा करती है जो समाज के अनुरूप होती है। इन भूमिकाओं का व्यक्ति के वास्तविक व्यक्तित्व से कोई समझौता नहीं होता है क्योंकि वह समस्त भूमिकाएँ व्यक्ति एवं समाज के मध्य समझौता होती हैं। इस प्रकार पर्सोना व्यक्ति का सामाजिक परिस्थितियों से प्राप्त ज्ञान है। यह व्यक्ति की चेतन स्थिति है।

एनिमा (Anima) और एनिमस (Aniums)

युंग ने प्रत्येक व्यक्ति को उभयलिंगी माना है[3] अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति स्त्रीत्व एवं पुरुषत्व दोनों से युक्त होता है। व्यक्ति की आत्मा के बिम्ब में यह तत्त्व होते हैं क्योंकि मानव-व्यक्तित्व इन तत्त्वों के संगठन से निर्मित हुआ है, जिसकी चेतना अचेतन में होती है। Anima, Archetype पुरुष की Psyche में तथा Animus, Archetype स्त्री की Psyche में होता है। Archetype पुरुष में स्त्रीत्व का प्रतिनिधित्व करता है, जबकि Animus स्त्री में पुरुषत्व का प्रतिनिधित्व करता है। ये प्रवृत्तियाँ कामुक होती हैं तथा इन्हीं प्रवृत्तियों के कारण स्त्री-पुरुष एक-दूसरे की ओर आकृष्ट भी होते हैं। नारी की एनिमस नारी को पुरुषों की ओर आकृष्ट करती है तथा पुरुष चेतना की एनीमा नारी की ओर

---

1. सं० डॉ० रतनकुमार पाण्डेय, *साहित्य सौन्दर्य एवं संस्कृति में डॉ० कृष्ण मुरारी मिश्र का आलेख साहित्यालोचन मनोवैज्ञानिक दृष्टियाँ,* पृ० 43
2. Hall and Lindzey, *Hand book of Social Psychology*, P. 82
3. डॉ० डी० एन० श्रीवास्तव, *आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान,* पृ० 144

पुरुषों को आकृष्ट करती है। स्त्री तथा पुरुष सदियों से साथ-साथ रहते आगे हैं। अतः प्रजातीय अनुभवों के आधार पर एनीमा और एनिमस Archetype का विकास हुआ। पुरुषों की Anima का ज्ञान स्त्रियों को समझने, उनसे सम्बन्ध जोड़ने तथा सृजनात्मक बनने में सहायक है। इसी प्रकार नारियों की Animus पुरुषों को समझने, उनसे सम्बन्ध जोड़ने तथा सृजनात्मक बनाने में सहायक है।

छाया (Shadow)

शैडो (Shadow) उच्चतम व्यक्तिगत सर्जना है जो अचेतन का प्रतिनिधित्व करती है। ये वैयक्तिक आदिम मानवीय अनुभूतियों को सांसारिक मानव अनुभूतियों की ओर अभिव्यक्त करती हैं। इस प्रकार छाया (Shadow) वैयक्तिकता और सामाजिकता दोनों तत्त्वों की उपस्थिति मानव-व्यक्तित्व में स्वीकार करते हैं। काव्य-सर्जना में इन दोनों तत्त्वों को कवि स्वाभाविक एवं सहज रूप में ही अपनी चेतना में ले आता है। छाया भी एक Archetype है। इस Archetype को मानव ने अपने पूर्वजों से प्राप्त किया था। अचेतन का प्रतिनिधित्व करने के कारण यह पाशविक मूल प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करती है। छाया से वह इच्छाएँ व भावनाएँ उत्पन्न होती हैं, जो सामाजिक रूप से निन्दनीय होती हैं।

ये 'सामूहिक अचेतन' आदिम स्मृतियों के मूल रूप होते हैं। सभी समाजों में प्रचलित आदिम युग की दन्त कथाएँ, लोक-गीतों, लोक-चेतना, लोक-संस्कृति, लोक-कथाएँ आदि अन्य प्रवाद जातीय 'सामूहिक अचेतन' के अस्तित्व के प्रमाण हैं। ये सभी प्रमाण मान्नव-जाति के प्रारम्भ से लेकर अब तक विरासत के रूप में प्रत्येक मानव में विद्यमान हैं।

युंग के समस्त व्यापार को चेतन-अचेतन का समन्वित रूप कहा है। चेतन-अचेतन दोनों एक दूसरे के पूरक हैं और साथ-साथ चलते है। हम जो अचेतन में हैं चेतन रूप में वह नहीं है। यदि हम चेतन रूप से बहुमुखी हैं तो अचेतन रूप से अन्तर्मुखी। यदि अचेतन में कोई व्यक्ति भावनाप्रधान है तो चेतन में वह विचारक प्रधान हो सकता हैं। अतः समस्त मानसिक व्यापार तथा क्रियाएँ चेतन और अचेतन में ही विद्यमान होती हैं।

'लिबिडो' व्यक्तित्व में बाह्य-जगत् और अन्तर्जगत् दोनों की ओर उन्मुख होती है। जिन व्यक्तियों की 'लिबिडो' बाह्य जगत् की ओर उन्मुख होती है, वह बहिर्मुखी तथा जिनकी लिबिडो स्वयं की ओर उन्मुख होती है वह अन्तर्मुखी कही जाती है। व्यक्तित्व में बहिर्मुखता का अभाव तथा बहिर्मुखी व्यक्तित्व में अन्तर्मुखता का पूर्ण अभाव है। इस संदर्भ में **युंग** का मत है कि जो व्यक्ति चेतन रूप से अन्तर्मुखी है वह अचेतन रूप से बहिर्मुखी होता है तथा जो व्यक्ति चेतन रूप से बहिर्मुखी होता है वह अचेतन रूप से अन्तर्मुखी होता है।

युंग ने अपने सिद्धान्त में सामूहिक अचेतन की व्याख्या प्राचीन कथाओं एवं आधुनिक काल्पनिक कथाओं, प्राचीन जीवन व आधुनिक सभ्यता, पूर्व और पश्चिम के धर्मों, ज्योतिष, इतिहास, साहित्य एवं कला, स्वप्न एवं सामान्य दृश्यों, शब्द साहचर्य, स्वप्न-शृंखला, सक्रिय कल्पना, पौराणिक कथाओं, धर्मों एवं जादू-टोना के तुलनात्मक अध्ययन आदि के माध्यम से की है। इस प्रकार **युंग** अचेतन के द्वारा वैयक्तिकता तथा सामाजिक्ता दोनों तत्त्वों की उपस्थिति मानव-व्यक्तित्व के लिए आवश्यक स्वीकार करता है। सर्जनात्मक चेतना के समय यह कवि मन की सहजता एवं स्वभाविकता है।

डॉ० अजब सिंह के अनुसार, ''युंग अपने सैद्धान्तिक विश्लेषण के क्रम में स्वप्न एवं प्रतीक-निर्माण

की व्याख्या करते समय स्व्त्व-विश्लेषण और सामूहिक अचेतन के क्रम में सामाजिक चेतना के घटक के रूप में मूल वृत्तियाँ, आद्य बिम्ब, प्रतीक, मिथक एवं फैंटेसी को विश्लेषित करते हैं। लेकिन ये मानव-वृत्तियाँ, ये घटक सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों को अपने ढंग से प्रस्तुति देते हैं।"[1]

समस्त मूल वृत्तियाँ शाश्वत तथा भावना से जुड़ी होती हैं। मूल वृत्तियाँ मानवीय चरित्र, धर्म, सामाजिक रीति-रिवाज में अपना प्रमुख स्थान रखती हैं, इसके साथ-साथ साहित्य तथा कला में भी इनका महत्त्वपूर्ण स्थान है। मानव का समस्त व्यवहार मूल-वृत्तियों से प्रेरित होता है क्योंकि मूल-वृत्तियाँ हैं नैसर्गिक एवं जनित होती हैं और प्राणियों में न्यूनाधिक मात्रा में पायी जाती हैं।

युंग ने आद्य बिम्ब को, सामूहिक अचेतन की व्याख्या करते समय सामूहिक अचेतन के एक अंश के रूप में स्वीकारारा है। आद्य बिम्ब स्वचलित होते हैं। कल्पना आद्य-बिम्ब की जननी है। अचेतन मस्तिष्क इसका कार्यक्षेत्र है। अतः ये चेतन मस्तिक के नियंत्रण से परे होते हैं। मानवीय चित्ति में आद्य-बिम्ब अपना उच्चतम स्थान रखते हैं। आद्य बिम्ब देवी-देवताओं के रूप में दिखायी पड़ते हैं। मूल प्रवृत्तियाँ तथा आद्य-बिम्ब दोनों का कार्य-क्षेत्र अचेतन है अन्तर यह है कि मूल वृत्तियाँ अचेतन के शारीरिक रूप में गठित होती हैं, जबकि आद्य बिम्ब आध्यात्मिक रूप में।

फैंटेसी या 'कल्पना' चेतन व अचेतन मस्तिष्क की क्रिया है। फैंटेसी मस्तिष्क की वह क्रिया है जो आत्मिक तथा काम-भावना दोनों से ही युक्त होती है किन्तु मूलरूप से फैंटेसी का सम्बन्ध आत्मिक-प्रक्रिया से संग्रथन के है। **डॉ० अजब सिंह** के अनुसार, "कल्पनात्मक अनुभूति की काव्यात्मक अभिव्यंजना फैंटेसी है। वस्तुतः फैंटेसी विरोधी तर्कों के लिए एक प्रकार की शक्ति है।"[2]

युंग ने निष्क्रिय फैंटेसी (Passive Phantasy) तथा सक्रिय फैंटेसी (Active Phantasy) के माध्यम से फैंटेसी का विश्लेषण किया है।

निष्क्रिय फैंटेसी वस्तुतः अचेतन मस्तिष्क का क्रिया-कलाप है, जिसके निर्माण में चेतन मस्तिष्क का कोई योगदान नहीं होता। निष्क्रिय फैंटेसी विशुद्धतः मन का एक स्वाभाविक सहज एवं काल्पनिक प्रवाह है, जिसकी सहज अभिव्यक्ति कवि के काव्य में अभिव्यंजित होती है। किन्तु इस प्रकार का काव्य युग-सापेक्षता की उत्कृष्टता तक नहीं पहुँच सकता है। निष्क्रिय फैंटेसी एक प्रकार से अचेतन की सच्ची अभिव्यंजना है जो आदिम तथा मूल प्रवृत्तियों से जुड़ी होती है।

सक्रिय फैंटेसी निष्क्रिय फैंटेसी से एकदम सकारात्मक चेतना का अंश है जो आत्मिक चेतना की क्रिया से समझी जाती है। यह कल्पनात्मक मानसिकता का एक सैद्धान्तिक तत्त्व है, जिसमें वैयक्तिकता एवं सामाजिकता, अत्त्व-बाह्य तथा चेतन-अचेतन का सहज मिलाप होता है। यह संकेतों एवं प्रतीकों से निर्मित होती है। **युंग** ने सक्रिय फैंटेसी को 'इन्सटीटीव' कहा है। **युंग** के अनुसार, "यह सीधे अचेतन भाव की अनुमति एवं दृष्टिकोणात्मक प्रवृत्ति है। इस संयोग के फलस्वरूप लिबिडो अचेतन से शीघ्र ही चेतन स्तर पर आकर निश्चित तरीके से चेतन मस्तिष्क से जुड़ता है।"[3]

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 152
2. वही, पृ० 153
3. वही, पृ० 154

"इस तरह सक्रिय फैंटेसी पूर्ण व्यक्तित्व की रचनात्मक अभिव्यंजना है तथा व्यक्ति संगठन की उदात्त अभिव्यक्ति है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि सक्रिय फैंटेसी पूर्णतया सर्जनात्मक अभिव्यंजना है।"[1]

शब्द साहचर्य फैंटेसी की भाषा को समृद्धशाली एवं सम्पन्न बनाती है। दूसरी ओर फैंटेसी भी भाव को समृद्ध बनाने के साथ-साथ उसे नवीन अर्थ देती है, नवीन चित्र व दिशा प्रदान करती है जो कवि को भाषा का निर्माण एवं विकास करने में योगदान देती है।

डॉ० अजब सिंह के अनुसार, "भाषा परम्परागत रूप में फैंटेसी की मूल चेतना को फैलाती है, उस फैंटेसी में संशोधन की उपस्थिति करती जाती है और ऐसी स्थिति में कवि के अन्तःमन में भाषा एवं भाव के द्वन्द्व की स्थिति बनी रहती है। यह द्वन्द्व अपनी अभिव्यक्ति के लिए भाषा पर दबाव डालता है। उसके शब्दों एवं मुहावरों में नयी अर्थमत्ता, नयी अर्थक्षमता एवं नयी अभिव्यक्ति भर देती है।"[3]

अतः स्पष्ट है कि मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त एक उच्चकोटि के काव्य-सृजन में प्रमुख भूमिका अदा करते हैं। कविता चेतन तथा अचेतन की भावात्मक अभिव्यंजना है। कवि का अन्तर्जगत् बाह्य जगत् के साथ जुड़कर अभिव्यंजित होता है। मनोवैज्ञानिक कवि होने के कारण आज का कवि अपनी रचना में प्रेरणाओं का सुसंगत और संतुलित समन्वय करता है, अनुभूत मानसिक प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करने के लिए आदेश एवं व्याकुलता को नियंत्रित करके, अपनी मानसिक प्रतिक्रियाओं को ज्ञानात्मक संवेदना या संवेदनात्मक ज्ञान के रूप में अभिव्यक्त करता है। इस प्रकार नवस्वच्छन्दतावादी कविताओं में मनोवैज्ञानिक चित्रण सहज रूप से आवश्यक हो जाता है। आधुनिक समीक्षा ने काव्य में मनोवैज्ञानिक तत्त्वों की अभिव्यंजना पर बल दिया और काव्य का विश्लेषण सौन्दर्यात्मक दृष्टि से किया। सौन्दर्य वृत्ति के कारण साहित्यकारों ने कलाकृति को संजीवनी प्रदान की। किसी भी कलाकृति की वास्तविकता कोई प्रत्यक्ष वास्तविकता नहीं होती। अतः काव्य के मूल्यांकन के संदर्भ में मनोवैज्ञानिक घटकों का विश्लेषण अत्यन्त आवश्यक है। अवधारणात्मक घटकों या मनोवैज्ञानिक घटकों की व्याख्या के आधार पर ही किसी भी काव्य का मूल्यांकन-विश्लेषण सही दिशा में होगा तथा पूर्णत्व को प्राप्त होगा। नवस्वच्छन्दतावाद में विषयीगत सौन्दर्य वैयक्तिकता एवं सामाजिकता से भिगोकर कलात्मक एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। इसी कारण नवस्वच्छन्दतावादी काव्य में नवीन काल्पनिक विचारों, नूतन शब्दावली तथा नवीन प्रकार की कलात्मक अभिव्यक्ति अभिव्यंजित होती है। मनोवैज्ञानिक संदर्भों के परिप्रेक्ष्य में नवस्वच्छन्दतावादी काव्य अत्यधिक आधुनिक एवं उत्कृष्ट कलात्मक अभिव्यक्ति है।

---

1. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद, पृ०* 154
2. वही, पृ० 155

स्वच्छन्दतावाद : लोक-संस्कृति एवं लोक-चेतना

'संस्कृति' का शाब्दिक अर्थ 'साफ करना' एवं परिष्कृत करना है। वस्तुतः संस्कृति का मूल सम्बन्ध आत्मा से है। अन्तःमन से है। यह आत्मा के अभ्युत्थान की प्रदर्शिका है तथा मनुष्य की आन्तरिक और मानसिक कठिनाइयों पर काबू पाने में सहायक सिद्ध होती है। इस प्रकार संस्कृति मानवीय जीवन के उन सब तत्त्वों के समाहार का नाम है जो धर्म और दर्शन से प्रारम्भ होकर कला-कौशल, समाज तथा व्यवहार इत्यादि में अन्त होते हैं। **डॉ० धीरेन्द्र वर्मा** संस्कृति को सामाजिक प्रथा का पर्याय मानते हैं।[1] सामाजिक प्राणी होने के कारण मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास सामूहिक रूप से समाज में रहकर ही होता है। अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए वह समूह के रूप में निवास करता है तथा अपने साथ दूसरे व्यक्तियों से सम्पर्क बनाये रखता है। वस्तुतः सामूहिक जीवन की आवश्यकताओं ने ही मानव को विचार-विमर्श करने के लिए बाध्य किया। भौतिक संतुष्टि के साथ-साथ मानव को बौद्धिक तुष्टि की भी आवश्यकता होती है अर्थात् मानव को रोटी, कपड़ा और मकान के साथ-साथ संगीत, कला तथा साहित्य की भी प्यास होती है। मानसिक विकास के लिए वह कुछ सांस्कृतिक-कार्य भी करता है। वस्तुतः बौद्धिक संतुष्टि के लिए जो कार्य किये जाते हैं वह सांस्कृतिक कार्य कहलाते हैं। अतः मनुष्य अपनी बुद्धि का प्रयोग कर विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन करता है उसी को 'संस्कृति' कहते हैं। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। अतः मानव संस्कृति का विकास भी सामूहिक विकास में ही होता है। मानव संस्कृति किसी एक व्यक्ति के व्यक्तिगत प्रयत्नों से निर्मित तथा विकसित नहीं होती है। इस प्रकार संस्कृति विभिन्न व्यक्तियों द्वारा बौद्धिक क्षेत्र में किये गये प्रयत्नों का परिणाम है। किसी भी देश की संस्कृति एकदम विकसित नहीं होती वरन् इसका विकास धीरे-धीरे होता है। इस प्रकार किसी समाज, जाति अथवा राष्ट्र के समस्त व्यक्तियों के उदात्त संस्कारों के पुंज ही उस समाज, जाति अथवा राष्ट्र की संस्कृति के रूप में जाने जाते हैं। संस्कृति हमारी वह मानसिक प्रकृति तथा अवस्था है, जिसका उद्देश्य जीवन-लक्ष्य की प्राप्ति के लिए अपने जीवन को परिष्कृत, पवित्र तथा शुद्ध बनाना है। इस प्रकार जीवन के प्रति हमारा दृष्टिकोण ही 'संस्कृति' है। वस्तुतः मन तथा आत्मा को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न ही 'संस्कृति' है। संस्कृति ही मानव के आध्यात्मिक क्षेत्र में उन्नति व विकास का इतिहास है। 'संस्कृति' अभ्यन्तर है तथा इसे अपनाने में समय लगता है। **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने 'संस्कृति' की व्याख्या करते हुए कहा है, "संस्कृति मनुष्य की विविध साधनाओं की सर्वोत्तम परिणति है। धर्म के समान वह भी अविरोधी वस्तु है। वह समस्त दृश्यमान विरोधों में सामंजस्य स्थापित करती है।"[2] **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने संस्कृति को व्यक्ति के अन्तर का विकास माना है। सभ्यता के आन्तरिक प्रभाव को वे 'संस्कृति' का नाम देते हैं। इस प्रकार "मनुष्य की श्रेष्ठ साधनाएँ संस्कृति हैं।"[3] इसी संदर्भ में **डॉ० द्विवेदी** का कथन है कि, "आर्थिक व्यवस्था, राजनीतिक संघटन, नैतिक परम्परा और सौन्दर्य-बोध को तीव्रतर करने की

---

1. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : *(सं०) साहित्य साहित्य कोश,* पृ० 868
2. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी *ग्रन्थावली-भाग* 1. पृ० 213
3. वही, पृ० 200

योजना में सभ्यता के चार स्तंभ है। इन सबके सम्मिलित प्रभाव से संस्कृति बनती है। सभ्यता मनुष्य के बाह्य प्रयोजनों को सहज लभ्य करने का विधान है और संस्कृति प्रयोजनातीत अन्तर आनन्द की अभिव्यक्ति।[1] **डॉ० रामधारी सिंह दिनकर** ने अपनी पुस्तक **संस्कृति के चार अध्याय** में संस्कृति को विश्लेषित करते हुए कहा है, ''असत्य में संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका सदियों से जमा होकर उस समय में छाया रहता है, जिसमें हम जन्म लेते हैं। इसलिए जिस समाज में हम पैदा हुए हैं अथवा जिस समाज से मिलकर हम जी रहे हैं उसकी संस्कृति हमारी संस्कृति है।''[2] इसी संदर्भ में ने सभ्यता तथा संस्कृति का अन्तर भी स्पष्ट किया है। उनके अनुसार, ''सभ्यता वह चीज है जो हमारे पास है, संस्कृति वह गुण है, जो हममें व्याप्त है। मोटर, महल, सड़क, हवाई-जहाज पोशाक और अच्छा भोजन ये तथा इनके सामान सारी अन्य स्थूल वस्तुएँ संस्कृति नहीं हैं सभ्यता के समान है। मगर पोशाक पहनने तथा भोजन करने की जो कला है, वह संस्कृति की चीज है।''[3]

संस्कृति का निर्माण एवं विकास आदान-प्रदान की प्रक्रिया से होता है। आदान-प्रदान की प्रक्रिया ही संस्कृति को जीवित भी रखती है। संस्कृति में जो कुछ विकास या प्रगति है वह मनोवैज्ञानिक स्तर पर चेतना का विस्तार है। अतः प्रगति सदैव वैयक्तिकरण के साथ आरम्भ होती है। वस्तुतः संस्कृति का निर्माण मानव द्वारा होता है। यह मनुष्य की ऊर्जा-शक्ति का पुंज है। इसमें सांस्कृतिक गतिविधियों का लेखा-जोखा होता है। इस तरह यह मानववाद एवं नवमानववाद भी है।[4]

सुप्रसिद्ध पाश्चात्य समीक्षक **टी०एस० इलियट** के अनुसार जीवन का सम्पूर्ण क्रिया-कलाप संस्कृति है। **टी० एस० इलियट** ने यह भी माना है कि जीवन के अधिकांश क्रिया-कलाप अचेतन होते हैं।[5] इस प्रकार संस्कृति की मूल चेतना मनोवैज्ञानिक तथा आन्तरिक है क्योंकि संस्कृति अचेतन क्रिया-कलाप की अभिव्यक्ति है। इस प्रकार संस्कृति में वैयक्तिक आन्तरिकता एवं बाह्य सामाजिकता दोनों की अभिव्यंजना है। **युंग** ने अचेतन को वैयक्तिकता एवं सामूहिक विस्तार कहा है। अतः संस्कृति अचेतन क्रिया-कलाप की अभिव्यंजना एवं विस्तार होने के कारण अपनी पहचान रोमांटिकता के रूप में कराती है और साथ ही साथ, सामूहिक अचेतन के विस्तार के कारण संस्कृति हमें आदिम वृत्तियाँ, आद्य बिम्ब, फैंटेसी, प्रतीक एवं मिथक की अवधारणाओं के रूप में मिलती है, जिसकी अभिव्यंजना स्वाभाविक, सहज एवं मनोवैज्ञानिक धरातल पर होती है। संस्कृति में मानव-व्यक्तित्व के चेतन एवं अचेतन दोनों मूल्यों के अधिष्ठान के रूप में मिलते हैं। अचेतन की बहुलता के कारण वैयक्तिक अचेतनता के साथ संस्कृति स्वयं को सामूहिक अचेतन के रूप में लोक-साहित्य अर्थात् लोक-चेतना, लोक-परिवेश एवं लोक-संस्कृति, लोक-कथाओं एवं लोकगीत इत्यादि से स्वयं को जोड़ती है।

संस्कृति एक पीढ़ी को सामाजिक विरासत के रूप में प्राप्त होती है और प्रत्येक पीढ़ी इसको परिवर्तित करती है।

कोई भी संस्कृति अपने सर्वाधिक वैज्ञानिक रूप में लोक-संस्कृति कहलाती है। लोक-संस्कृति

1. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : *ग्रन्थावली-भाग 1*, पृ० 204
2. डॉ० रामधारी सिंह दिनकर : *संस्कृति के चार अध्याय,* पृ० 653
3. वही, पृ० 651
4. डॉ० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 156
5. वही, पृ० 157

लोक-जीवन की गतिशील परम्पराओं एवं क्रिया-कलापों का समन्वित रूप है। इसमें मानव की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म प्रवृत्तियों एवं मनोदशाओं का नैसर्गिक अंकन होता है।

लोक-संस्कृति लोक-मानस के आधार पर ही संघटित एवं अभिव्यंजित होती है। इस प्रकार लोक-साहित्य, जन-चेतना से ही निर्मित होता है। लोक-चेतना सदैव समाज की परम्परा और परिस्थितियों पर आधारित होती है। लोक-साहित्य में जन-चेतना की अभिव्यंजना होती है। अतः लोक-साहित्य की चेतना रोमांटिक एवं मानवीय होती है। इस प्रकार लोक-साहित्य सीधे लोक-भावना से जुड़ा है, जिसकी आधारशिला लोक-मानस है। यही कारण है कि लोक-साहित्य में लोक-संस्कृति, लोक-चेतना एवं लोक-परिवेश की सहज स्वाभाविक, आकर्षणमयी एवं मनोहारी अभिव्यक्ति होती है। लोक-साहित्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन एवं मौखिक है। यह परम्परा उतनी ही प्राचीन है, जितनी स्वयं मानव जाति। यह परम्परा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को दाय के रूप में प्राप्त होती है। प्रत्येक पीढ़ी उनमें समयानुकूल एवं आवश्यकतानुसार सुधार कर नयी बातें भी जोड़ देती है। अतः यह परम्परा एक व्यक्ति के मानस की न होकर लोक-मानस की परम्परा होती है जिसमें वैयक्तिक अनुभूतियों के साथ-साथ लोकानुभूति भी उभरकर सामने आती है। इस प्रकार लोक-संस्कृति जीवन की संस्कृति बन जाती है।

लोक-साहित्य अंग्रेजी शब्द **फोक-लिटरेचर** का हिन्दी अनुवाद है। अंग्रेजी में 'लोक' शब्द सामान्यतः दो अर्थों में प्रयुक्त किया जाता है। प्रथम अर्थ में यह 'स्थान-विशेष' के लिए प्रयुक्त किया जाता है तथा द्वितीय अर्थ में 'जनसामान्य' के लिए। लोक शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के लोकृदर्शने धातु से हुई है जिसमें 'धस' प्रत्यय के संयोग से 'लोक' शब्द निर्मित होता है। 'लोकृदर्शने' धातु का अर्थ 'देखना' होता है। इस प्रकार 'लोक' शब्द का अर्थ भी 'देखने' से ही सम्बन्धित है। राहुल सांकृत्यायन ने 'लोक' का अर्थ बताते हुए कहा है, व 'वह समस्त जनसमुदाय जो इस कार्य (देखने के कार्य) को करता है 'लोक' कहलायेगा।"[1] किन्तु 'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में अभी तक कोई निश्चित मत उपलब्ध नहीं है अतः विद्वानों में भी इस सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है।

आज 'लोक' शब्द को संकुचित अर्थ में नहीं ग्रहण किया जाता है। आज 'लोक' के अर्थ का विस्तृत रूप मिलता है। उसके अपने शब्द, अपनी भाषा, लोकग्राही शैली में मिलती है। आज हम 'लोक' को परम्परा का सहेजक एवं अनुभूति की संवेदनापूर्ण अभिव्यक्ति के संवाहक के रूप में ग्रहण करते हैं, जिसका अपना एक सामूहिक व्यक्तित्व है जो जीवन से सम्बन्धित सभी उपकरणों को अपने में समाहित किये हुए है। **डॉ० श्याम परमार** ने 'लोक' की महत्ता को स्वीकार करते हुए कहा है, "जिसे संस्कृति की संज्ञा दी जाती है वह लोक से भिन्न नहीं है। उसका उत्स 'लोक' ही है। 'लोक' का महत्त्व सर्वकालीन है।"[2]

हिन्दी में प्रयुक्त 'लोक' शब्द अंग्रेजी के 'फोक' शब्द का हिन्दी अनुवाद है। कुछ विद्वान् 'फोक' का अर्थ 'ग्राम' से तथा कुछ 'जन' एवं 'जनपद' से लेते हैं।

---

1. राहुल सांकृत्यायन : *हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग*-16, पृ० 1, प्रस्तावना।
2. डॉ० श्याम परमार : *भारतीय लोक-साहित्य,* पृ० 10

पं० रामनरेश त्रिपाठी ने 'फोक' का हिन्दी अनुवाद 'ग्राम' किया है।[1] **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने 'लोक' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है, "लोक शब्द का अर्थ 'जनपद' या 'ग्राम' नहीं बल्कि, नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत रुचिसम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जानेवाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचिवाले लोगों को समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।"[2]

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने 'लोक' शब्द का अर्थ 'ग्राम' ही स्वीकार करते हुए कहा है, "लोकवार्ता की सामग्री का संचय करने के लिए प्रत्येक गाँव को एक खुली हुई पुस्तक समझनी चाहिए।"[3]

डॉ० श्याम परमार ने भी 'लोक' शब्द को जन-मानस का पर्यायवाची मानते हुए लिखा है लोक साधारण जन-समाज हैं, जिनमें भू-भाग पर फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित हैं। यह शब्द वर्ग-भेदरहित व्यापक एवं प्राचीन परम्पराओं की श्रेष्ठ राशि सहित अर्वाचीन सभ्यता-संस्कृति के कल्याणमय विवेचन का द्योतक है। भारतीय समाज में नागरिक एवं ग्रामीण दो भिन्न संस्कृतियों का प्रायः उल्लेख किया जाता है किन्तु 'लोक' दोनों संस्कृतियों में विद्यमान है। वही समाज का गतिशील अंग है।"[4]

डॉ० सत्येन्द्र ने 'लोक' को परिभाषित करते हुए लिखा है, "लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीय और पाण्डित्य चेतना और पाण्डित्य अहंकार से शून्य है जो एक परम्परा के प्रवाह में 'जीवित' रहता है।"[5]

डॉ० सत्येन्द्र ने 'लोक' की व्याख्या करते हुए उसे दृष्टि प्रधान कहा है। यह 'लोक' आधुनिक सभ्यता और शिक्षा से वंचित रहते हुए भी प्राचीन विश्वासों तथा अनुष्ठानों को सुरक्षित रखता है, यही कारण है कि इसमें स्वच्छन्दतावादी चेतना प्रधान रहती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि 'लोक' शब्द के अन्तर्गत शिक्षित-अशिक्षित, साधारण-असाधारण सभी प्रकार के कृषक वर्ग, गाँवों एवं नगरों में रहनेवाले अल्पसंस्कृत-एक पूरा जनसमुदाय का आभास होता है। इस प्रकार विभिन्न सांस्कृतिक तथा आर्थिक इकाइयों से समन्वित रूप को 'लोक' के अन्तर्गत माना जा सकता है।

लोक-साहित्य के लिए एक अन्य शब्द 'लोकवार्ता' का भी प्रचलन है। लोकसाहित्य लोक-वार्ता वस्तुतः आदिम मनुष्य की मनोवैज्ञानिक अभिव्यंजना है। लोकवार्ता में लोकमानस शुद्ध अवस्था में

---

1. पं० रामनरेश त्रिपाठी : *कविता कौमुदी, उपशीर्षक ग्राम गीत,* पृ० 3
2. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : *जनपद, अंक* 1. वर्ष1। पृ०, 65
3. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल : *पृथिवी पुत्र,* पृ० 85
4. डॉ० श्याम परमार : *भारतीय लोक-साहित्य,* पृ० 10
5. डॉ० सत्येन्द्र : *लोक-साहित्य विज्ञान,* पृ० 30

प्रतिबिम्बित होता है और सुरक्षित रहता है। लोकवार्ता में लोकमानस के प्राचीन रूप का यथार्थवादी चित्रण मिलता है। साहित्य का आन्तरिक विधान जिन बोलियों पर बना है उसकी मौलिक व्याख्या लोकवार्ता के निकट है। लोकवार्ता विविध सभ्यताओं, संस्कृतियों और समाज-निर्माण के धरातलों का यथार्थवादी चित्रण प्रस्तुत करता है। 'लोकवार्ता' शब्द अंग्रेजी के 'फोकलोर' का हिन्दी अनुवाद है। कुछ विद्वानों ने 'फोकलोर' के हिन्दी पर्याय के रूप में 'लोक-संस्कृति' ही स्वीकार किया है। लोक-संस्कृति की सीमा-रेखा में जन-जीवन से सम्बद्ध आचार-विचार, विधि-निषेध, विश्वास, प्रथा, परम्परा, धर्मगूढ़ाग्रह, अनुष्ठान आदि का समष्टि रूप आदि सभी आते हैं।[1] **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** भी 'फोकलोर' को 'लोक-संस्कृति' के रूप में स्वीकार करते हैं। इस प्रकार जो जन-संस्कृति है, वही लोक-संस्कृति है। एक ही समाज में रहनेवाले लोगों का रहन-सहन, रीति-रिवाज, विश्वास, परम्परा तथा परिवेश से प्रसूत जन-चेतना ही लोक-संस्कृति का रूप लेती है। इस प्रकार लोक-संस्कृति के निर्धारण में अचेतन की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती है। यह अचेतन सामूहिक रूप से पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलता रहता है और संस्कृति को निर्धारित करता है। इस प्रकार लोक-संस्कृति में लोक-चेतना की ही अभिव्यंजना होती है क्योंकि सम्पूर्ण-साहित्य की आधार-शिला 'लोकमानस' ही है। 'लोक-साहित्य' में मानवीय अनुभूतियों तथा मानव-जीवन की व्याख्या होती है। मानव-जीवन के अधिक निकट होने के कारण लोक-साहित्य की मूल चेतना रोमांटिक होती है। वस्तुतः स्वाभाविकता, स्वच्छन्दता एवं सहजता ही लोक साहित्य का प्रधान गुण है। लोक-साहित्य अपने काल की सामाजिक चेतना का यथार्थ प्रतिबिम्ब होता है।

सम्पूर्ण लोक-साहित्य हमें लोक-गीतों, लोक-गाथा, लोक-कथा, लोक-नाट्य तथा लोकोक्तियों के रूप में मिलता है। इस प्रकार, भारतीय लोक-संस्कृति, लोक-गीतों, लोक-कथाओं, लोक-नाट्यों तथा लोकोक्तियों के माध्यम से आदान-प्रदान की प्रक्रिया के द्वारा आज भी स्वयं को जीवित रखे हुए है।

लोक-गीत, लोक-संस्कृति का ही एक अंश है। लोकगीत से लोक-संस्कृति का स्वरूप प्रदर्शित होता है। लोक-गीत लोक-संस्कृति के विविध रूप दर्शाता है। लोक-गीत में केवल सौन्दर्यानुभूति ही नहीं वरन् उसका सम्बन्ध जीवन, मानवीय अनुभूतियों, लोक-भावना तथा सामूहिक चेतना से होता है। लोक-गीत में जन-जीवन तथा सामूहिक रूप से लोक-व्यक्तित्व की अभिव्यंजना होती है। सामूहिकता ही लोक-गीत का प्राण है। इस प्रकार लोक-गीत के तत्त्व-निर्धारण से सामूहिक अचेतन की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। लोक-गीत मिलकर ही गाये जाते हैं। लोक-गीत के समवेत स्वरों के माध्यम से मन की आन्तरिक चेतना आदिम लोक-चेतना सभी के मन में समायी साफ-साफ झलकती है। वस्तुतः लायी-गीत में लोक-जीवन और लोक-मानस की अभिव्यंजना होती है। अंतश्चेतना तथा प्राथमिक भावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम लोक-गीत ही है। गहरी मार्मिकता का उन्मुक्त उद्‌गार लोक-गीत की चेतना है। लोक-गीत की परिभाषा देते हुए पाश्चात्य विचारक **पर्सी** ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा है, "आदि-मानव के उल्लासमय संगीत को ही लोक-गीत कहते हैं।"[2]

---

1. डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय : *राहुल सांकृत्यायन, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास,* पृ० 11
2. This Primitive Spontaneous music has been called *Folk songs - Percey, Encyclopaedia Britanica, Vol. IX*, Page 448

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने लोक गीतों को लोक-संस्कृति का प्रतिरूप मान उसको व्याख्यायित करते हुए कहा है -"लोक-गीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं।"[1]

पं ० रामनरे श त्रिपाठी 'लो क-गीत' को 'ग्र ाम-गीत' की सं ज्ञा दे ते हु ए इस प्रकार परिभाषित किया है - "ग्र ाम-गीत प्रकृ ति के उद् गार हैं । इनमें अलं कार नहीं के वल रस है । छन्द नहीं के वल लय है। लालित्य नहीं केवल माधुर्य है। ग्रामीण मनुष्य के, स्त्री-पुरुषों के मध्य में हृदय नामक आसन पर बैठकर प्रकृति गान करती है। प्रकृति के वे गान ग्राम-गीत हैं।"[2]

डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय के अनुसार, "सामान्य लोक-जीवन की पार्श्वभूमि में अचिन्त्यरूप से अनायास ही फूट पड़नेवाले मनोभावों की लयात्मक अभिव्यक्ति 'लोकगीत' कहलाती है।"[3]

बाबू गुलाबराय के अनुसार, "लोकगीतों के निर्माता प्रायः अपना नाम अव्यक्त रखते हैं और कुछ में वह व्यक्त भी रहता है। वे लोक-भावना में अपने भाव मिला देते हैं। लोकगीतों में होता तो निजीपन ही है किन्तु उनमें साधारणीकरण एवं लोक-भावना सामान्यतया कुछ अधिक रहती है।"[3]

डॉ० सत्येन्द्र ने लोक-साहित्य विज्ञान में लिखा है कि "लोक-गीत में संगीत की भाँति स्वर को कृत्रिम आरोह-अवरोह, सरगम और स्वर ग्राम तथा लयताल में नहीं बाँधा जाता, लोक-गीत का ताल और लय, आरोह-अवरोह, संवृति, विवृति, समस्त बंधन स्वाभाविक मनोवेगों के अनुकूल ढलते हैं।"[5] **डॉ० सत्येन्द्र** ने यह भी माना है कि लोक-गीत मानवीय कृतित्व की वह सामान्य धरोहर है जो विश्व-मानव की भूमि पर प्राप्त हुई है।"[6]

'लोक-संस्कृति' लोक-विश्वास एवं लोक-परम्परा की रक्षा एवं निर्वाह करते हुए, लोक-जीवन रागात्मक-प्रवृत्तियों की तत्स्फूर्त लयात्मक अभिव्यक्ति जिस माध्यम से करता है, उसे लोक-गीत कहते हैं।[7]

लोक-गीतों का कोई विशेष रचयिता नहीं होता क्योंकि लोक-गीत की रचना सामूहिक रूप से होती है। लोक-गीत के रूप में परिवर्तन होता रहता है। लोक-गीत को 'श्रुति' कहा जाता है क्योंकि उसका कोई लिखित रूप नहीं होता है। लोकलय तथा संगीत के बिना लोक-गीत अधूरा है। लोक-गीत की शैली सहज स्वाभाविक एवं स्वच्छन्द होती है। लोक-गीत किसी बंधन में बँधे हुए नहीं होते हैं ये रीतिमुक्त होते हैं। लोक-गीतों की आधारशिला सामूहिक चेतना और लोक भावना है अतः लोक-गीतों के लिए छन्द आदि की परम्परा का निर्वाह अत्यन्त कठिन है। लोक-गीतों की लोक-भावना सभ्यता तथा आडम्बरयुक्त बन्धनों को तोड़ देती है और स्वच्छन्द अभिव्यक्ति के लिए तत्पर रहती है अतः लोक-गीत की चेतना एवं प्रवृत्ति स्वच्छन्दतावादी तथा नवस्वच्छन्दतावादी होती है। सहजता से परिपूर्ण

---

1. डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल : *आजकल, नवम्बर १६५१*
2. पं० रामनरेश त्रिपाठी : *कविता कौमुदी (भाग-५) प्रस्तावना,* पृ० 1-2
3. डॉ० चिन्तामणि उपाध्याय, *लोकायन,* पृ० 16
4. बाबू गुलाब राय : *काव्य के रूप,* पृ० 123
5. डॉ० सत्येन्द्र : *लोक साहित्य विज्ञान,* पृ० 393
6. डॉ० सत्येन्द्र : *घड़ौती लोक-गीत-प्राक्कथन, विज्ञान,* पृ० 1-2
7. डॉ० कुन्दनलाल उप्रेती, *लोक-साहित्य के प्रतिमान,* पृ० 46

और कृत्रिमता से परे लोक-गीतों में यथार्थ अपने स्वाभाविक रूप से वर्णित होता है। सामूहिक चेतना और लोक-भावना पर आधारित लोक-गीतों की अभिव्यक्ति सरलता एवं सहजता पर ही आधारित हो सकती है। लोकगीत सामान्य लोक-व्यवहार के उपयोग में आते है। अतः यहाँ शास्त्रीय नियमों का अंकुश होता ही नहीं है। इस सम्बन्ध में सदाशिव फड़के ने सत्य ही कहा है- ''शास्त्रीय नियमों की विशेष परवाह न करके सामान्य लोक-व्यवहार के उपयोग में लाने के लिए मानव अपने आनन्द'' तरंग में जो छन्दोबद्ध वाणी सहज उद्भूत करता है, वही लोक-गीत है।''[1]

लोक-गीत मानव-जीवन के मूल भावों को सरलतम रूप में अभिव्यक्ति प्रदान करता है। लोक-गीत स्वतः स्फूर्त प्राकृतिक काव्य-रचना है। इसमें लोक-हृदय की अनुभूतिपरक अभिव्यंजना होती है। इस कारण लोक-गीतों का जन-जीवन से शाश्वत सम्बन्ध है। इस प्रकार लोक-गीत लोक-जीवन के मंत्र हैं। वस्तुतः लोक-चेतना की उत्कृष्टतम गतिशील और मधुर अभिव्यक्ति लोकगीत ही है। लोकगीतों में लोक-मानस के मनोभावों तथा विश्वास की स्वाभाविक अभिव्यक्ति नितान्त स्वाभाविक शैली में होती है। लोक-गीतों में आदिम मनोवृत्ति की स्पष्ट झलक दिखायी पड़ती है। आदिम मानव का विश्वास, आदिम मनोवृत्ति तथा समस्त रागात्मक वृत्तियों का यथार्थ चित्रण उपस्थित करता है। इसी कारण लोक-मानस के मनोविज्ञान के अध्ययन का क्षेत्र लोकगीत ही हो सकते हैं। लोक-मानस के कई मानसिक धरातलों की प्राप्ति हमें लोकगीतों के माध्यम से ही होती है। लोकगीतों में लोक-मानस सामूहिक मनोभावों तथा मनोवृत्तियों की अभिव्यंजना होती है।

लोकगीतों में लोक-जीवन का चित्रण होने के कारण सामाजिक जीवन की सहज एवं स्वाभाविक चित्रण की अभिव्यक्ति हुई है। लोक-गीतों के माध्यम से ही यथार्थवादी सामाजिक परिस्थितियों का ज्ञान होता है। जन्म, विवाह तथा मृत्यु इन सभी संस्कारों से सम्बन्धित अनेक लोकगीत तथा विभिन्न संस्कारों से सम्बन्धित लोकाचारों तथा अनुष्ठानों का विधिवत् उल्लेख भी लोकगीतों में होता है। 'लोक-मानस, लोक की सम्पूर्ण आस्थाओं, विश्वासों एवं मान्यताओं का आगार होता है।''[2]

'लोकमानस' का आर्थिक एवं राजनीतिक समस्याओं से शाश्वत सम्बन्ध होने के कारण लोकगीतों में दीनता-निर्धनता के भी चित्रण व हृदय विदारक वर्णन मिलते हैं। ग्रामीण जीवन की निर्धनता के वर्णन में निर्धन किसानों के जीवन से सम्बन्धित अनेक संघर्षों एवं कष्टों का वर्णन भी लोकगीतों में मिलता है।

बदलती राजनीतिक परिस्थितियों का पूरा प्रभाव लोकगीतों पर पड़ा है और उनसे एक नवीन क्रांतिकारी चेतना उत्पन्न हुई है। स्वाधीनता संग्राम के कारण उत्पन्न भारतीय विद्रोह स्वर, अंग्रेजी शासन के विरुद्ध विद्रोह की भावना और स्वतंत्र भारत की कल्पना, खादी प्रेम तथा औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप सामाजिक परिवर्तन की सशक्त अभिव्यंजना लोक, गीतों के माध्यम से हुई है। वस्तुतः लोक-साहित्य में राष्ट्रीय भावना, प्रणव गीतों एवं गाथाओं की एक व्यापक परम्परा है, जो लोक-संस्कृति का जीवन है।[3]

---

1. डॉ० सदाशिव फड़के : *सम्मेलन-पत्रिका, लोक-संस्कृति विशेषांक,* पृ० 250
2. प्रो० शिवकुमार शाण्डिल्य, : *कौरवी लोकोक्तियाँ, भूमिका,* पृ०36
3. कला कुमार : *लोक साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि (लेख) लोक साहित्य,* पृ० 112

धार्मिक जीवन की स्वाभाविक एवं सहजाभिव्यक्ति लोक-गीतों में मिलती है। आज के वैज्ञानिक एवं भौतिक युग में भी लोक-मानस के प्रत्येक कार्य में मूल में कही-न-कहीं धर्म का बीज छिपा रहता है। युगों से परिस्थितियाँ बदलने के बाद भी लोक-मानस की धार्मिक भावनाएँ नहीं बदलती हैं और वह युगों-युगों से लोकगीतों के माध्यम से अभिव्यक्ति को प्राप्त होती हैं। अर्चन-पूजन, भजन-कीर्तन, देवी के गीत, त्यौहार, व्रत आदि के समय गाये गये लोकगीत आज भी लोक-संस्कृति की धरोहर हैं।

लोक-गीतों की एक विशेषता यह भी है कि इनमें वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना की अभिव्यंजना हुई है। 'सर्वजन हिताय सर्वभूत हिताय' की भावना के आदर्शों से प्रेरित लोक-गीत शिवमंगल की उदात्त भावना और लोक-संस्कृति की आत्मा है। लोक-गीतों की इसी उदात्त-दिव्यभावना-विभूति के प्रसादस्वरूप लोक-संस्कृति सहस्रों वर्षों से आज तक अक्षुण्ण है। लोक-गीतों में वर्णित वसुधैव कुटुम्बकम् की सभी भावनाएँ हमारी मानवीय संस्कृति का सजीव-चित्रण प्रस्तुत करती हैं।

वास्तव में लोक-साहित्य ऐसे लोक की अभिव्यक्ति है, जो आभिजात्य संस्कारों से दूर ज्ञान, बौद्धिक चेतना, आधुनिक सभ्यता एवं संस्कृति से दूर एक ऐसा मानव समुदाय है जो आदिम प्रवृत्तियों एवं परम्पराओं से आबद्ध सहजावस्था में अकृत्रिम जीवन व्यतीत करता है। इस साहित्य का आधार परम्परा है और लोक-मानस की भाषा ही इसकी अभिव्यंजना का माध्यम है। यह साहित्य अभिलिखित एवं मौखिक होता है अतः श्रुति और स्मृति के द्वारा ही यह जन-जीवन में संचित और सुरक्षित रहता है। इस साहित्य के माध्यम से लोक-मानव के नैसर्गिक उद्‌गारों को सहज, स्वाभाविक तथा मौखिक अभिव्यक्ति मिलती है। सभी कृत्रिम विधि-विधानों से मुक्त रहने के कारण यह साहित्य सहज रूप से ही संवेद्य और बोधगम्य होता है। यह साहित्य स्वच्छन्द प्रवाहयुक्त होता है और अबाध गति से निरन्तर अग्रसर होता रहता है। ''यथार्थतः यह साहित्य उतना ही स्वाभाविक होता है जितना जंगल में खिलनेवाला फूल, उतना ही स्वच्छन्द, जितना आकाश में विचरनेवाला पक्षी तथा उतना ही सरल तथा पवित्र जितनी गंगा की निर्मल धारा।''[1]

इस प्रकार लोक-साहित्य में लोक-मानस अथवा आदिम मानस प्राधान्य होता है, जबकि शिष्ट साहित्य में चेतन मानस क्योंकि लोक-साहित्य कोई सुनियोजित रचना नहीं होती। लोक-साहित्य के रचनाकार अज्ञात होते हैं क्योंकि लोक-साहित्य की रचना सामूहिक रूप से होती है। इसमें यदि एक पंक्ति कोई रचता है तो अगली पंक्ति की रचना किसी अन्य मानव के द्वारा होती है। एक के बाद एक पंक्तियाँ लोक-मानस की प्रधानता के फलस्वरूप जुड़ती जाती हैं, जबकि शिष्ट साहित्य सुनियोजित रचना है। अतः चेतन-मानस शिष्ट साहित्य में प्राधान्य होता है।

मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्त के अनुसार मस्तिष्क के चेतन, अवचेतन तथा अचेतन तीन स्तर होते हैं। लोक-साहित्य में एक नवीन मानसिक स्थिति का भी वर्णन किया गया है। **डॉ० सत्येन्द्र** के अनुसार यह मानसिक स्थिति आदिमकालीन, प्राकृतिक तथा उत्तराधिकृत होती है जो आदिम मानस या लोक-मानस कहलाती है।

फ्रायड ने अवचेतन मानस से कुण्ठा के स्वरूप को स्वीकार करते हुए प्राणिशास्त्र के उत्तराधिकरण सिद्धान्त को भी माना था। इस सिद्धान्त के अनुसार हमारी जितनी भी मूल वृत्तियाँ हैं, वह हमें जन्म

1. डॉ० सत्येन्द्र : *लोक-साहित्य विज्ञान,* पृ० 32

से ही प्राप्त हैं, जो एक प्रकार से हमें दाय रूप में पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्राप्त होती हैं, इनका स्थान अवचेतन मानस है न कि चेतन मानस। इस प्रकार **फ्रायड** ने अवचेतन मानस को दो भागों में विभाजित किया प्रथम उपार्जित अवचेतन जो कि कुण्ठा और दमित वासनाओं का भण्डारगृह है और चेतना के सम्पर्क में रहता है। दूसरा उत्तराधिकारेय मानस या सहज मानस जो हमारा लोकमानस भी है तथा जिसमें जन्म के समय से ही आदिम अवस्था में प्राप्त वह उपलब्धियाँ आती हैं जो कालान्तर में मानस की मानवीय प्रकृति बन जाती हैं। यह सभी मानवीय वृत्तियाँ उत्तराधिकरण के रूप में, परम्परा के रूप में युगों से मानव में पीढ़ी-दर-पीढ़ी अवतरित होती चली जाती हैं। सभी आदिम वृत्तियों के रूप में अवचेतन के अन्तर्गत मानसिक प्रकृति के रूप में विद्यमान रहती हैं। डॉ० सत्येन्द्र के अनुसार, "आज भी हम किसी-न-किसी रूप में किसी-न-किसी प्रकार के ऐसे विश्वासों को प्रचलित पाते हैं जिनकी वैज्ञानिक व्याख्या नहीं हो सकती, जो बौद्धिकता के लिए सहज की अमान्य हैं। आज बीसवीं सदी के उत्कृष्टतम मनुष्य में भी जब हम यह रंगत देख पाते हैं जो स्पष्ट ही आदिम मानस की वृत्ति का अवशेष ही कहा जा सकता है तो लोक मानस की उपस्थिति स्वीकार ही करनी पड़ती है।"[1]

युंग ने भी अपने सामूहिक अचेतन के क्रम में भी इन्हीं बिन्दुओं को विश्लेषित किया है। **युंग** ने अवचेतन मानस मूल को दो कोटियों में विभाजित किया है-"प्रथमतः ऊहाएँ (स्वप्नों को मिलाकर) जो निजत्व के गुणों से युक्त होने के कारण निर्विवादेन विगत निजी अनुभवों से विस्मृत या दमित बातों से सम्बन्धित होती हैं और उनको व्यक्तिगत विस्मृति (Amnasis) से समझा जा सकता है। दूसरे, वे ऊहाएँ (स्वप्नों को मिलाकर) जो निर्वैयक्तिक प्रकृति की होती हैं, जिन्हें व्यक्ति के अपने विगतकालीन अनुभवों के रूप में परिणत नहीं किया जा सकता है और ऐसे ही जिन्हें व्यक्तिशः उपार्जित किसी वस्तु के रूप में नहीं समझा जा सकता। ये ऊहा-चित्र निर्विवादेन धर्मगायिक मानों से अपना निकटतम साम्य रखते हैं। अतः हमें यह मानना पड़ेगा कि ये सामान्य मानव मूल मानसिकता के किसी संगृहीत (और निजी नहीं) निर्माण तत्त्वों के समवायी हैं, और मानव शरीर के किसी निर्णायक तत्त्वों की भाँति उत्तराधिकरणगत। इसी को युंग महोदय ने संगृहीत अवचेतन (Collective unconsciousness) का नाम दिया है।"[2]

वस्तुतः **युंग** का सामूहिक अवचेतन अथवा संगृहीत मानस ही लोक-मानस या अवचेतन मानस अथवा उत्तराधिकारेय मानस रूप है और लोक साहित्य इसी संगृहीत मानस की सहज, स्वाभाविक, स्वच्छन्द एवं मनोवैज्ञानिक मौखिक अभिव्यक्ति है। इस प्रकार लोक-साहित्य लोक-मानस की रचना है, जिसमें लोक-चेतना की अभिव्यंजना होती है और इस अभिव्यक्ति में नवस्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति विद्यमान होती है। यह लोक-चेतना जीवन के यथार्थ स्पन्दनों से प्रेरणा ग्रहण करती है और अपनी अभिव्यक्ति की शैली में सहज रहती है। इसी बिन्दु पर आकर लोक-साहित्य का धरातल स्वच्छन्दतावादी हो जाता है जो यथार्थ के सम्पर्क में आकर एक नयी आधुनिक चेतना को जन्म देता है। यही नयी चेतना काव्य में नवस्वच्छन्दतावादी चेतना का प्रतिरूप है।

'लोक की भाषा' से लोक-साहित्य का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सम्बन्ध है। इस प्रकार लोक-साहित्य का सम्बन्ध क्षेत्र-विशेष की बोली से होता है। लोक-साहित्य की भाषा बोली के दोनों स्वरूपों से

---

1. डॉ० सत्येन्द्र : *लोक-साहित्य विज्ञान,* पृ० 32
2. वही, पृ० 48

सम्बन्धित है। क्षेत्र-विशेष के लोक-साहित्य के आधार पर क्षेत्रीय बोली से तथा जातिगत लोकगीतों तथा लोककथाओं के आधार पर जातीय बोली से। लोक-साहित्य में क्षेत्रीय-बोली अथवा जातीय-बोली का सीधा प्रतिनिधित्व होता है। इसी कारण लोक साहित्य, लोक-जीवन का प्रतिबिम्बित करता है। बोली में अमान्य और अस्वीकृत प्रयोगों के साथ-साथ मान्य एवं स्वीकृत प्रयोगों को स्वतंत्रता रहती है। इस प्रकार बोली उन्मुक्त होती है और इसमें निरन्तर नये प्रयोग होते रहते हैं। बोली का कोई नियम नहीं होता और वह एक व्यक्ति की इच्छानुसार नवीन प्रयोगों में भागीदारी करती है। बोली में गालियों एवं भद्दे शब्दों के प्रयोग का भी प्रचलन है। यह प्रयोग बोली की स्वाभाविकता को समेटे रहता है। लाका-साहित्य की सर्जना समाज के बीच रहनेवाले व्यक्तियों के छोटे-छोटे समूहों की प्रचलित बोलचाल की भाषा ही में प्रयुक्त होती है। इस प्रकार लोम-भाषा विज्ञान और लोक-साहित्य का घनिष्ठ सम्बन्ध है। लोक-भाषा में 'लोक-संस्कृति' की अभिव्यंजना ही लोक-साहित्य है। 'लोक-संस्कृति' लोकभाषा के माध्यम से ही मौखिक परम्परा के रूप में प्रवाहित होती रहती है क्योंकि गाँव का व्यक्ति न पढ़ना जानता है और न लिखना। अतः वह जो भी कुछ अपनी वाणी में अभिव्यक्त करता है वही उसकी भाषा होती है और उसकी भाषा ही लोक-संस्कृति को पीढ़ी-दर-पीढ़ी सामूहिक रूप से प्रवाहित करती है, निर्मित करती है तथा उसका संचयन करती है। वस्तुतः भाषा लोक-साहित्य की अभिव्यक्ति का माध्यम है। भाषा के बिना साहित्य का अस्तित्व असंभव है क्योंकि विकासात्मक प्रक्रिया में भाषा पहले निर्मित हुई है, साहित्य उसके पीछे।

लोक-साहित्य की सर्वप्रमुख विशेषता उसका मौखिक होना है और यह मौखिक परम्परा भी औपचारिक शिक्षा में पूर्णतः शून्य लोगों की होती है।[1] मिथक भी अपने मूल रूप में मौखिक ही होता है। यह अंग्रेजी के 'मिथ' के हिन्दी पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है। मिथक का स्वरूप मौखिक होने के कारण 'लोक-साहित्य' के बहुत निकट सिद्ध होता है और लोक-साहित्य का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण उपादान बन जाता है। इस प्रकार 'मिथक' तथा 'लोक-साहित्य' दोनों ही मौखिक परम्परा की मूलभूत विशेषता के कारण 'लोक-भाषा' की थातियाँ बन जाते हैं। **ई० ए० गार्डनर** ने 'मिथक' को व्याख्यायित करते हुए लिखा है, "वह प्रायः प्रत्यक्षतः या परोक्षतः कथा रूप में होता है। सामान्यतः कथा से अंशतः यह इस रूप में भिन्न है कि जिन मनुष्यों में यह कथा प्रथम बार प्रचारित होती है वे अवश्य ही उसे तत्वतः सत्य मानते हैं। इस प्रकार मिथक कथा नीति, कथा या अन्योक्ति में उसी प्रकार भिन्न से, जिस प्रकार रम्याख्यान या रोमांस से।"[2]

एनसाइक्लोपीडिया आफ सोशल साइंसेज़ में मिथक को 'लोक-साहित्य' के महत्त्वपूर्ण उपादान के रूप में स्वीकार करते हुए कहा है कि 'मिथक' लोक-साहित्य के समान जातीय आकांक्षाओं, धारणाओं आदर्शों का सुस्पष्ट माध्यम है।[3] जिस प्रकार लोक-साहित्य में लोक-मानस की भावनाओं को सहजाभिव्यक्ति का नाम दिया है, उसी प्रकार मिथक भी उस जाति या राष्ट्र की सहज कल्पना का नाम है, जिसको वह कथा के माध्यम से शाश्वत रूप प्रदान करना चाहता है। लोक-साहित्य के समान मिथक का रूप भी मौखिक होता है। इसका कोई लिखित रूप नहीं होता। मौखिक परम्परा के कारण

---

1. Encyclopaedia Britanica, Macropaedia, Vol. 7, P. 454
2. E. A. Gardner : *Encylopaedia of Religion & Ethics, Vol. 9,* P. 118
3. *Encyclopaedia of Social Sciences, V. 11,* P. 22

मिथक भी विकास की परम्परा से गुजरता है और प्रत्येक पीढ़ी की कल्पना के साथ परिवर्तित एवं संशोधित होता चलता है। लोक-साहित्य के समान मिथक का रचयिता भी अज्ञात होता है। मिथक का सृजन भी सामूहिक रूप में होता है। अनेक मिथक कथाओं में न जाने कितनी लोक-कथाएँ लोक-गीत आदि आते हैं। मिथक गाथात्मक अथवा कथात्मक रूप में मिलते हैं। मिथक के सृजन में आदिम मानस कार्य करता है क्योंकि मिथकों में आद्य-बिम्बों का रूप मिलता है। मिथक कथाएँ प्रतीकात्मक होती हैं, जिनका वातावरण अलौकिक तथा धार्मिक होता है।

मिथक लोक-साहित्य का आधार पाकर ही विकसित होता है। समय-समय पर अनेक कवियों ने अपने काव्यों में लोक-गीतों का मिथक में रूपान्तरण एक स्वाभाविक प्रक्रिया के तहत किया है। इस प्रकार भारतीय ही नहीं यूनानी, रोमन, जर्मन आदि समस्त मिथक कथाएँ लोक साहित्य का आधार पाकर ही विकसित हुई हैं।[1]

मिथक और लोक-साहित्य दोनों में ही लोक-समूह तथा लोक-समाज की भावनाओं तथा मनोवृत्तियों का अंकन होता है। मिथक और लोक-साहित्य जिस समूह अथवा समाज के निकट होते हैं, उसी में प्रचलित भी होते हैं। समूहगत विकास के कारण लोक-समाज सामूहिक रूप में इनके आनन्द का निर्वाह करता है। सामूहिक अवचेतन मस्तिष्क ही मिथक तथा लोक-साहित्य का सृजन करता है। प्रत्येक मनुष्य अपनी जाति एवं सामाजिक परम्पराओं को अनजाने में अपनी आत्मा में सँजोये रहता है। परम्पराओं को अनजाने ही आत्मसात् करने की प्रक्रियाओं का सामूहिक रूप से निर्वाह ही 'सामूहिक अवचेतन' है। **युंग** ने अपने सामूहिक अवचेतन की अभिव्यंजना मिथक तथा लोक-साहित्य के माध्यम से की है। इसी कारण इनसे व्यक्ति का व्यक्तिगत तादात्म्य अनुभव तथा निकटता होती है। मिथक कथाओं के जितने भी प्रकार हैं, वे सब लोक-साहित्य में प्राप्त होते हैं या इसे यूँ कहा जा सकता है कि समस्त मिथक कथाएँ किसी-न-किसी लोक-कथा का आधार लेकर खड़ी हुई हैं।[2]

लोक-साहित्य में बिम्ब सहज व स्वाभाविक रूप से देखे जा सकते हैं। लोक-गीतों तथा लोक गाथाओं में भी ये सहज ही मिलते हैं। लोक-भाषा अथवा बोली की विशेष स्थिति स्वर तथा व्यंजन दोनों के ही माध्यम से बिम्बों का निर्माण करते चलते हैं, जो ध्वनि-बिम्ब कहलाते हैं। लोक-गीतों में ताल-लय के उपयोग तथा छन्द के गठन और प्रवाह के कारण इन बिम्बों का सहज ही रूपायन होता है। कुछ बिम्ब परम्परागत या रूढ़ होते हैं, जबकि कुछ नवीन तथा रूढ़िगत होते हैं किन्तु लोक साहित्य में यह व्यवहार की बोली के प्रयोग द्वारा अपना स्थान बनाते हैं। लोक-साहित्य की परम्परा के परिवर्तन के कारण रूढ़ बिम्ब, नवीन बिम्बों के सम्पर्क में आकर प्रतीकों का निर्माण करते हैं। **फ्रायड** ने बिम्बों को उत्तम दिवास्वप्न का निदर्शन माना है, जिसे हम इच्छापूर्ति के रूप में जान सकते हैं। बिम्ब सर्जनात्मक कल्पना का व्यापार होता है और यह अलंकृत भाषा में नहीं वरन् बोलचाल की भाषा में पाया जाता है। अतः बिम्ब लोक-साहित्य के अत्यन्त निकट होता है। बिम्ब लोक-मन की भाषा का सार तथा लोक-साहित्य की सज्ञा का एक उपकरण है। बिम्ब एक काल्पनिक प्रत्तिछवि है और कल्पना से उदित होता है।

---

1. *Encyclopaedia Britanica, Macropaedia, Vol. 7,* P. 456
2. पुष्पपाल सिंह : *लोक-साहित्य का मिथकीय आयाम- लोक-साहित्य,* पृ० 88

बिम्ब जब बार-बार प्रयोग में आता है तो वह प्रतीक का रूप ले लेता है। लोक-साहित्य में प्रतीकों का प्रयोग दिखायी पड़ता है। लोक-गाथाओं और लोककथाओं में तो प्रतीकों का सर्वाधिक प्रयोग हुआ है। लोक-कथाओं में प्रयुक्त सभी देवी-देवताओं को, जगत् की सत्ता अतिमानवीय शक्ति का प्रतीक बना देती है। **फ्रायड** द्वारा विश्लेषित सभी यौन-प्रतीक लोक-साहित्य में सहज रूप से मिलते हैं। **युंग** ने अपने सामूहिक अवचेतन सिद्धान्त के क्रम में मिथकीय कथाओं के आधार पर लोक-कथाओं में अहं के विकास और संघर्ष के द्योतक प्रतीकों की व्यंजना सहज रूप में की है। प्रतीक अवचेतन की इच्छाओं की अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम होता है। **युंग** के अनुसार, ''बिम्ब-विधान एवं प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति केवल प्रेम एवं यौन दमित अनुभूतियाँ ही नहीं होतीं बल्कि कवि अपनी अभिव्यंजना में सांस्कृतिक एवं मिथकीय चेतना को भी प्रस्तुत करता है। फलतः काव्य-सर्जन में सामूहिक अचेतन की भावना भी उभरती है, धार्मिक, सांस्कृतिक एवं मिथकीय चेतना का भी विन्यास होता रहता है।[1] **युंग** का उपरोक्त कथन लोक-साहित्य में प्रतीक-योजना के संदर्भ में भी दिशा प्रदान करता है।

लोक-गीतों में लोक-छन्दों एवं लोक-धुनों का प्रयोग किया जाता है। लोक-गीतों के अपने छन्द, लोक-छन्द कहलाते हैं। ये छन्द हैं सोहर, बिरहा, आल्हा, लाटो इत्यादि। लोक-गीतों के इन छन्दों का कोई शास्त्रीय विधान नहीं है। प्राचीन एवं आधुनिक अनेक कवियों ने अपने काव्यों में इन लोक-छन्दों का प्रयोग किया है। लोक-गीत संगीतात्मक छन्द हैं, जिनकी प्रमुख चेतना गेयता है, जिसके कारण लोक-जीवन की सरस, मार्मिक, स्वाभाविक अभिव्यंजना करने में लोक-गीत सक्षम होते हैं। कोमल कोठारी के अनुसार, ''यदि स्पष्टतः देखा जायें तो प्रतीत होगा कि लोक-संगीत, लोक-सम्बन्धों के संगीतमय इतिहास में हमारी पीढ़ियों के मानवीय सम्बन्ध, रीति-रिवाज, धर्म व धारणाएँ, जीवन के मार्मिक अनुभव, प्रेम की मधुर कल्पना और समाज को एक सूत्र में पिरोने की लालसा का भावनात्मक प्रतिफलन रहता है।''[2]

अनेक साहित्यिक कवियों विशेषकर आधुनिक कवियों जैसे बच्चन, सुमन, माथुर, अज्ञेय, प्रकृति-कवि मूलतः लोक-कवि ही हैं। क्योंकि वस्तुतः सभी कवियों के काव्यों का मूल उत्स लोक-क्षेत्र ही तो है।[3]

आधुनिक हिन्दी कविता कल्पना के आकाश से यथार्थ की धरती पर उतरती है। ग्रामीण-जीवन, लोक-जीवन, लोक-परिवेश, लोक-संस्कृति, लोक-गीतात्मकता एवं लोक-भाषा की समीपता के कारण आधुनिक हिन्दी कविता में एक नयी चेतना जागृत होकर नवस्वच्छन्दतावादी चेतना के स्वरूप को ग्रहण करती है। वस्तुतः नवस्वच्छन्दतावादी चेतना का विकास एवं विस्तार लोक-चेतना के विस्तार के रूप में होता है। **निराला** से लेकर **धर्मवीर भारती** तक अनेक आधुनिक कवियों ने अपनी कविताओं में लोक-संस्कृति, लोक-भाषा, लोक-परिवेश तथा लोक-गीतात्मक शैली को अपनाया और लोक-संस्कृति तथा लोक-चेतना एवं लोक-गीतात्मकता का विकास नवस्वच्छन्दतावादी प्रवाह में हुआ। इन आधुनिक हिन्दी कवियों ने आलंकारिक भाषा का त्याग कर लोक-भाषा को अपनाया और इस प्रकार

---

1. डा० अजब सिंह : *नवस्वच्छन्दतावाद,* पृ० 192
2. कोमल कोठारी : *साहित्य, संगीत और कला,* पृ० 173
3. के० सी० त्यागी, : *लोक-छन्द एवं लोक-धुनें, लोक-साहित्य,* पृ० 120

नवस्वच्छन्दतावादी साहित्यकारों ने लोक-संस्कृति एवं लोक-परिवेश की अभिव्यंजना लोक साहित्य में 'लोक-गीतों' के माध्यम से प्रस्तुत की। हिन्दी साहित्य में लोक-साहित्य का नवस्वच्छन्दतावादी स्वरूप आधुनिक चेतना को ग्रहण करता हुआ विकास पथ पर निरन्तर अग्रसर है।

'हिन्दी-संस्कृति' शीर्षक विशेष लेख के द्वारा **प्रो० केसरी कुमार** ने लोक-संस्कृति एवं विश्व संस्कृति के द्वारा लोक-जीवन को नया संदर्भ दिया है। ये सारे रेखांकन कला के स्वच्छन्दतावादी नवस्वच्छन्दतावादी संदर्भ की प्रस्तुति में सहायक बनते हैं - ''हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दोंस्ताँ हमारा''- आज 'हम' हमारा सांस्कृतिक परिचय है। बौद्धिक स्वतंत्रता में जो संस्कृति साँस लेती है उसका नाम हिन्दी है और जहाँ ऐसी निर्द्वन्द्व स्वच्छन्दता में सांस लेती है उसका नाम हिन्दोस्तां है। यहां किसी **सुकरात** को जहर का प्याला नहीं पीना पड़ता, किसी ईसा को अपना स्लीव नहीं ढोना पड़ता, किसी मंसूर को सूली पर चढ़ना नहीं होता। विश्वामित्र, बुद्ध और चार्वाक सब एक साथ रह सकते हैं। **कबीर** और **तुलसी** में द्वन्द्व नहीं होता। यह बौद्धिक स्वतंत्रता हमारी पहली पहचान है।

दूसरी पहचान यह है कि हमारी एक आन्तरिक संस्कृति है एक समन्वयवाली संयुक्त संस्कृति। आन्तरिक संस्कृति उन विचारों से बनी हैं जो अन्यतम अनन्य मूल्य बनकर जीवन को शासित करते हैं:

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहिं पर बचन न जाई।।

मौखिक वचन की यह निष्ठा शताब्दियों से हमारे सामाजिक जीवन और साहित्य की देवप्रदत्त अनुलंघनीय गरिमा-सी रही है। इसी कारण विवाह देव-नियोजित जन्म-जन्मान्तरीय सम्बन्ध रहा है- जाने किस जीवन की सुधि ले, लहराती आयी मधुबयार, जिसमें रूप का नहीं, अलस दायित्व का अंगराग है। यह सम्बन्ध टूटनेवाला नहीं होताः

सोना लावन हे सखि, पिया गये परदेश।

सोना मिला न पिउ मिले, रूपा हो गये केश।।

हिन्दी-संस्कृति गीत-प्राण है। प्राती (प्रभाती) से लोरी तक, जागने से सोने तक, कोई हरकत गीत के बिना नहीं होती, होती तो सूनी और भयावह लगती है। यहाँ तक कि विवाह में जेवनार (सं० जेमन कहिं जेवना) के समय गारी (गाली) गायी जाती है तो इतनी मोहक होती है मानो छप्पन व्यंजन परोसे गये हों।

इस संस्कृति का दूसरा रूप समन्वयवाला है। कितनी जातियाँ यहाँ आयी और रस-बस गयीं कि उन्हें पहचानना तक असम्भव है। हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, पारसी का भी मूल बताना और आपस में परस्पर-गुम्फित उनके भेदों का रहस्य-भेदन करना दुष्कर है। सत्यपीर देवता इस एकीकरण का ही प्रतीक है। शादी में पहने जाते रहे जामा-जोड़ा, छकलिया और मौर कम-से-कम आदिम तो नहीं लगते। हमारे एक बुजुर्ग सम्बन्धी मरते वक्त तक तुर्की टोपी पहनते रहे। अब इंग्लिशतानी पोशाक दुनिया की तरह यहाँ भी छायी है। संगीत में ध्रुपद-धमार के साथ, ठुमरी और दादरी भी गाये जाते हैं और सबके लिए ब्रजभाषा के पद ही व्यवहृत होते हैं। भगवान शंकर के डमरू से प्रेरित एवं सप्तसिन्धु के तरंगित सप्तस्वर भारतीय संगीत की निधि हैं। वह अवश्य ही असंगीतज्ञ यूरोपियन रहा होगा जिसने

हिन्दुस्तानी संगीत (शास्त्रीय) को कसाईखाना कहा था। समूह-गायन और समूह-वादन की नयी कड़ी भारतीय संगीत को अद्यतन कर रही है।

संस्कृति सम्पूर्ण जीवन को परिचालित करनेवाली एक पद्धति है, स्वेच्छा से आदमी की अपनायी हुई है। सर्वप्रथम औद्योगिक क्रांति ने हमारे अनेक सांस्कृतिक प्रतिमानों को निरर्थक कर दिया और आर्थिक ढाँचे पर संस्कृति का नवनिर्माण होने लगा।

सत्ता के आईने में संस्कृति की तस्वीर देखने पर यह तथ्य बहुत साफ दृष्टिगोचर होता है कि सत्ता की संस्कृति एक विशेष प्रभामंडल लिये रहती है और उसमें शामिल होने की एक होड़-सी शासितों में लगी रहती है जिसका नतीजा है कि संस्कृति के दो हिस्से हो जाते हैं। शब्द और विचार वाले कलाविद् तो सबसे पहले बँट जाते हैं। मुस्लिम काल के लाल किले और चाँदनी चौक तथा अंग्रेजी काल के चौक और सिविल लाइन्स का भेद अब भी नयी शक्लों में चल रहा है। अर्थपक्ष का सम्बन्ध तो सत्ता और संस्कृति दोनों से है किन्तु दोनों के रूप और पहुँच में जमीन-आसमान का अन्तर है। 'अन्न का अनादर न करो' यह संस्कृति की आवाज है और अन्न बर्बाद न किया जाय', यह सत्ता की हिदायत है। वैसे संस्कृति प्रयोजनातीत होती है। खाना महत्त्वपूर्ण है। कैसे खायेंगे यह बहुत महत्त्व की बात नहीं। संस्कृति कोई जैविक आवश्यकता नहीं किन्तु जीने के बेहतर ढंग अपनाने के आनन्द की भी इयत्ता नहीं। आज प्वायंट तो आवश्यकतावश ऐच्छिक होकर भी, एक आन के लिए होते हैं वैसे ही हमारी कुछ सांस्कृतिक पद्धतियाँ हमारे अन्यतम निर्माण की आह्लाद कर चेतना लिये होती हैं। उनके बिना जीने में स्वाद नहीं आता।

आज तो दुनिया एक बस्ती हो रही है। बिजली के पहले की दुनिया और बिजली के बाद की दुनिया में कोई समानता ही नहीं। पहले पहाड़ों को छेदकर निकलने वाली सड़कों और अनुलंघ्य कहलानेवाली नदियों पर मनमाने पुल डालकर चलनेवाली रेलों ने दूरी क्या कम की संस्कृत के प्रभेदों और अजनबीपन को दूरकर 'परदेशिया' और 'गौना' के अन्यथा मर्मस्पर्शी स्वर को सदा के लिए चुप कर दिया। तब आयी मुनादी पीटती बिजली। अब तो सब कुछ उलट-पुलट हो गया। दूरी दूरी न रही। हवाई यातायात, आकाशवाणी, दूरदर्शन, परिकल्प आदि के कारण मुट्ठी में आ गयी है। बिजली की इस तेजी के सामने की कल्पना भी हतप्रभ है।

कला और कविता की कल्पनाएँ शिलीभूत हो गई। वे दीवारें जिन पर संस्कृति की लताएँ गदराती थीं स्वतः गिर गई। पनघट इतिहास बन गये। हमारे शहर के कदमकुआँ, अगमकुआँ, मखनियाँ कुआँ, राजाकुआँ अब मुहल्ले हैं और इसी प्रकार अभी मालदह आम और केवड़ा-गुलाब के लिए प्रसिद्ध कंकड़बो, गर्दनीबाग, लालबाग, गुलाबबाग, गुलजारबाग, छज्जूबाग, सब्जीबाग आदि। अब तो सिर्फ आदमियों की भनभनाहट है। आज यह कविता गलत हो गयी-भारत माता ग्रामवासिनी।

गाँव तस्करों, उचक्कों, हत्यारों, चरित्रहीनों के अड्डे हो रहे हैं, सब प्रकार से संकटपूर्ण और असुरक्षित। भारतमाता अब वहाँ नहीं बसती, न उसके भोले-भाले सपूत। गाँव खाली हो रहे हैं, लोग शहर की ओर भाग रहे हैं। नगर महानगर और सड़क पर के गाँव कस्बे हो रहे हैं। आसमान-छूती, महँगाई के कारण नये रोजगारों की आपाधापी मची हुई है। इस अप्रत्याशित भाग-दौड़ में संस्कृति के साज पर उँगलियाँ फेरने का समय निकालना तक दुःखदायी है। कभी जवानी में कालीन शुरू करते

थे और बुढ़ापे में समारोह खत्म करते थे। आज के लिए संगीत में एक जिन्दगी नाकाफी थी। इस इत्मीनान में जो संस्कृति परवान चढ़ी थी वह समय के अकाल में सूख गयी।

एक बस्ती-सी हुई इस दुनिया में अब तो एक विश्व-भाषा (स्प्राण्टो) की तरह विश्व-संस्कृति की चर्चा भी चल पड़ी है। तर्क यह है कि जब पूरे विश्व में व्यवसाय से जुड़े लोग, अपनी विशेष अर्थ-व्यवस्था बना सकते हैं और एक तकनीक का व्यवहार कर सकते हैं तब पूरी दुनिया में एक विश्व-संस्कृति क्यों नहीं चल सकती ?

संस्कृति का स्वर सामूहिक होता है। अपने व्यापक अर्थ में संस्कृति उस जीवन-पद्धति और व्यवहार की कला है जो आदमी अपनी सामाजिक परम्परा से सीखता है। इसलिए जब कोई आदमी सामाजिक मानवमूल्यों और अभिव्यक्ति की मर्यादा का तिरस्कार अपने व्यवहारों में करता है तब हम उसे अभद्र, असभ्य, असंस्कृत यानी एक असामाजिक प्राणी कहते हैं। लेकिन जब हम किसी व्यक्ति को सौम्य, सुजन, सज्ञन आदि कहें तब कहने का तात्पर्य यह होता है कि उस व्यक्ति में समाज के सामान्य सदस्यों की अपेक्षा, सांस्कृतिक चेतना अधिक प्रखर है, बल्कि ऐसे लोगों में समाज की सांस्कृतिक चेतना विकसित होकर समाज की जंग को छुड़ाती है, उसकी रूढ़ियों को धोती, उसे उद्‌बुद्ध और गतिशील रखती है। इस अर्थ में संस्कृति वैयक्तिक और सद्‌गुणों का द्योतक है। आज भी बहुत जोर देकर नहीं कहा जा सकता कि संस्कृति जन्मजात वैयक्तिक गुण है अथवा वंशपरम्परा का संस्कार अथवा सहजीवन या प्रशिक्षण से प्राप्त विकास का एक क्रम।

पर जैसा निवेदन किया गया, वस्तुतः संस्कृति का स्वर व्यापक अर्थ में सामूहिक ही होता है, जैसे हिन्दू संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति । कभी यह सुविस्तृत भूखण्ड का समूह होता है, जैसे पौर्वात्य संस्कृति, पाश्चात्य संस्कृति, भारतीय संस्कृति, यूरोपीय संस्कृति, कभी वह सामान्य इतिहास और सामान्य भूगोल से बनी मानसिकता का समूह होता है, जैसे आदिवासी संस्कृति, राजस्थानी संस्कृति, कभी वह भाषा-क्षेत्र का समूह होता है, जैसे भोजपुरी संस्कृति और कभी वह कालखण्ड का समूह होता है, जैसे प्राचीन संस्कृति, मध्यकालीन संस्कृति, खजुराहो संस्कृति पर अवश्य ही मूल जीवनमूल्यों के साथ जीवन-यापन की शैली और आचार-शिष्टाचार के आधार पर।

अतः विश्व धर्म की तरह विश्व-संस्कृति की भी चर्चा बराबर हो रही है। जहाँ तक भारत का सम्बन्ध है, उसकी संस्कृति तो सामासिक है ही। हमारा देश भारत नाना जातियों, सम्प्रदायों, दार्शनिक धाराओं, भाषाओं का महादेश है- एक ऐसी चिन्ता-धारा जिसमें नाना दृष्टियों का घर्षण होने दिया जाता है, फिर भी जिसकी मूलभूत एकता बनी रहती है। जो विदेशी यहाँ का पेचीदा तानाबाना भर देख पाते हैं, जो दैनन्दिन जीवन और आत्मा के रहस्य का, काव्य दर्शन का व्यंग्य और जीतितत्व का या सामाजिक विश्लेषण और व्यक्ति के आन्तरिक अनुसंधान का द्वन्द्व भर देख पाते हैं, वे अवरोधों से आक्रांत होकर रह जाते हैं और फलतः भारतीय जीवन-पद्धति की समूची रचनात्मक ऊर्जा को, जो भारत के सामासिक व्यक्तित्व की महिमा है, नहीं पहचान पाते। आध्यात्मिक संस्कार, जो हमारी परम्परा की धुरी है, धर्म से आती है, और समन्वय-पद्धति जो हमारे समाज की सामाजिक स्थिति का अनुशासन है- ये दो विशिष्टताएँ भारतीय साहित्य और संस्कृति की देन हैं।

भारतीय संस्कृति में इस आध्यात्मिक भनकार तथा आत्मा मुक्ति आदि की आवाज सुनकर जो

विज्ञान उसे व्यक्तिवादी तथा आत्मकेंद्रित मान लेते हैं, वे उसकी ध्वनि को ठीक-ठीक हृदयंगम नहीं कर पाते। भारतीय संस्कृति में आत्मकल्याण का निष्कर्ष समाज-कल्याण है, बल्कि व्यक्ति और समाज-निर्माण दोनों यहाँ योगपदिक है, व्यक्ति का निर्माण इसलिए कि सुन्दर व्यक्ति के सुन्दर समाज का निर्माण सम्भव है। भारतीय संस्कृति के केंद्र में रत साधक की चिन्ता में समग्र समाज, वह अखिल विश्व ही झूल रहा है वरन् उसी को उसने अपनी कसौटी बनायी है यानी वह मानता है कि उसकी साधना अभी पूरी होगी, तब वह संस्कृत होगा जब सभी प्राणी उसे अपने सर्ग में लगें- आत्मवत् सर्वभूतेषु, जब मन-वचन-कर्म से यह आचरण पवित्र कर लें और कोई ऐसा काम न करें जो उसे अच्छा नहीं लगता- आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।

संस्कृति और सभ्यता के ये दोनों शब्द एक-दूसरे के पर्यायवाची रूप में भी प्रयुक्त होते रहे हैं, किन्तु यह असावधानी का द्योतक है। सभ्यता है मनुष्य के विकास का महानगरीय रूप और संस्कृति है आदमी की सनातनता की ग्रामीण छवि। सभ्यता है भौतिक उत्थान की कसौटी और संस्कृति है आन्तरिक सौन्दर्य-चेतना का विग्रह। सभ्यता उपयोगितावादी होती है। उसका हर उपकरण उपयोगिता का उपकरण होता है किन्तु संस्कृति, विशुद्ध सौन्दर्यवादी होती है। वह उन चिन्ताओं और कला-अभिव्यक्तियों का समुच्चय होती है जो प्रत्यक्षतः उपयोगी न होकर भी आदमी की आन्तरिक आवश्यकता अर्थात् आन्तरिक मुक्ति, शान्ति और आह्लाद की पूर्ति करती है जिसके बिना जीवन भौतिक दृष्टि से समबद्ध और भरा-पूरा होकर भी अपूर्ण एवं अशान्त रहता है। सभ्यता सुख देती है, संस्कृति आनन्द देती है। आनन्द वृहत्तर अर्थात् कभी न खत्म होनेवाला सुख है, अनन्त सुख है। सभ्यता का सम्बन्ध राजनीति से है, संस्कृति का धर्म से।

धर्म से जुड़े रहने के कारण संसार के हर क्षेत्र में संस्कृति और उसे प्रतीकित करनेवाले साहित्य और कलाओं का आरम्भिक विकास धर्म की छाया में हुआ, विधियों में अनुपालन में, अनुष्ठान करते हुए अंग-संचालन में अनुशासन में, मन्त्रोच्चारण करते हुए स्वर के परिशोधन में, चित्रण में, मंडपादि की वास्तुकला में। हमारे अधिकांश पर्व-त्योहार, जिन्हें हम सांस्कृतिक पर्व-त्योहार मानते हैं, हमारी धार्मिक चेतना के सामूहिक समर्थन और उल्लास की यादगार हैं। हमारे देश में धर्म की उपासना, सत्य की साधना एकांत में होती रही है और अन्ततः सत्य की खोज की यात्रा केवल अपने द्वारा होती है, वह ऐसी कठिन एकाकी यात्रा है, जिसमें गुरू और ग्रंथ को भी छोड़ देना पड़ता है। किन्तु उपलब्धि की स्वीकृति सामूहिक होती रही है। हमारे धार्मिक पर्व-त्योहार सामूहिक स्वीकृति के समारोह है। राम नवमी, गंगा दशहरा, रथयात्रा, गुरु पूर्णिमा, नाग पंचमी, रक्षा-बंधन, कृष्णाष्टमी, गणेश चतुर्थी, महालया, दुर्गा-पूजा, विजयादशमी, धनतेरस, दीपावली, अक्षय नवमी, छठ, कार्तिक पूर्णिमा, श्री पंचमी, शिवरात्रि, होली, मकर संक्रांति सभी सामूहिक सांस्कृतिक समारोह हैं। कुछ त्योहार ऐसे हैं जो सिर्फ औरतें मनाती हैं पर उनका स्वान भी सामूहिक होता है। गण-गौर, वट-सावित्री, तीज, जीतिया, करवा चौथ, भैया दूज, जानकी नवमी ऐसे ही पर्व हैं। इनमें से एक व्रत भी ऐसा नहीं है जो एकांत में किया जाता हो। सब परिजन-पुरजन के साथ मनाये जाते हैं, सबके सामूहिक गीत हैं जो समवेत गाये जाते हैं। कुछ त्योहार कृषि-सम्बन्धी हैं, कुछ ऋतु सम्बन्धी। इनके तो सामूहिक गीत और राग हैं ही। हमारे यहाँ तो हर कर्म को शुभ मानकर मांगलिक काम ने उसे एक सांस्कृतिक परिवेश दे दिया है। रोपनी और जतसार के गीत इसके उदाहरण हैं। कुछ संस्कार तो हमने स्वेच्छा से अपना लिये हैं। जैसे जन्मोत्सव, उपनयन संस्कार, विवाहोत्सव आदि।

जिन कलाओं को हम अपनी सांस्कृतिक धरोहर मानते हैं उनमें भी वैयक्तिक रुचि की अपेक्षा सामूहिक स्वर ही प्रधान रहा है। नटराज की मूर्ति की भंगिमा सर्वत्र एक रही है। भगवान् बुद्ध की प्रतिमा की मुद्रा भी सभी कला-कालों में समान रही है। राम, कृष्ण और शंकर हमारे राष्ट्र के सांस्कृतिक मानस की विराट् जातीय परिकल्पना हैं। वे हमारी जातीय अवधारणा के तीन आयामों-मर्यादा, स्वच्छन्दता और आयाममुक्तता को प्रतीकित करते हैं और आज तक शायद ही किसी रचनाकार ने उसके साथ खिलवाड़ किया है। वे आज भी हमारे जीवन मूल्यों के चरम आदर्श हैं। जहां उनकी पुनर्व्याख्या हुई है, वहाँ भी हमारी यानी युग की सामूहिक चिन्ता ही बोलती रही है, किसी का प्रमाद नहीं। दरअसल वैयक्तिक प्रमाद के लिए संस्कृति में जगह होती नहीं हैं।[1]

डॉ० अजब सिंह ने अपने आलेख ''लोक-साहित्य का स्वच्छन्दतावादी आयाम'' में कहा है, ''लोक-साहित्य के माध्यम से कलात्मक या साहित्यिक अभिव्यंजना शिष्ट-साहित्य में मिथकीय अभिव्यंजना का रूप लेती है। निश्चित रूप से सर्जनात्मक साहित्य में मिथक की अभिव्यंजना होनी चाहिए। **रिचर्ड्स चेज** का कथन है कि हमारे सर्जनात्मक साहित्य को मिथक के नजदीक होना चाहिए। वे मिथक को ही साहित्य कहते हैं। मिथकीय चेतना के परिसर में धर्म, लोक-साहित्य, मानव विज्ञान, समाजशास्त्र, मनोविश्लेषण तथा ललित कलाएँ सब कुछ आ जाती हैं। सामान्यतः मिथक को आर्केटाइप की अभिव्यक्ति कहा गया है। वस्तुतः आदिरूप मिथक की पूर्व स्थिति है, जिसके आधार पर मिथक अस्तित्व ग्रहण करता है। आर्केटाइप के अभाव में मिथक निर्माण प्रायः असंभव है। इस प्रकार मिथक एक ऐसी परम्परागत कथा है, जिसका प्रतिपाद्य सांस्कृतिक मूल्यों को सम्प्रेषित करना है। अतः मिथक सांस्कृतिक अभिव्यंजना का प्राचीनतम माध्यम है तथा सदैव अपनी सांस्कृतिक चेतना से जुड़ा हुआ होता है। मिथक वस्तुतः आदिम मानव के समष्टि मन के द्वारा प्राकृतिक उपादानों एवं घटनाओं के मानवीकरण की अचेतन प्रक्रिया है। इसमें मुख्यतः आदिम विचारों की अभिव्यंजना होती है। इसका सम्बन्ध आदिम कल्पनाओं से भी है। मिथक वस्तुतः आत्मनिष्ठ एवं मनोवैज्ञानिक होता है और वह आध्यात्मिक एवं सांसारिक यथार्थ को मानवीय अनुभूतियों की शब्दावली में प्रस्तुत करता है। मिथक मनुष्य को एक सामाजिक प्राणी के रूप में प्रतिष्ठित करता है। मिथक सांस्कृतिक मूल्यों की प्रस्तुति सीधे नहीं करते। इसलिए इसका काल्पनिक होना भी आवश्यक है। मिथक जीवन-मूल्यों एवं कल्पनाशीलता के साथ जुड़ने से स्वच्छन्द प्रकृति का हो जाता है इस तरह मिथकों के द्वारा हम मानवता के पुरातन कथानकों का ऐतिहासिक एवं आधुनिक रूपायन करते हैं। इनके कई रूप हैं: आर्केटाइप, प्रतीक, फैंटेसी, रूपक एवं बिम्ब आदि। इस तरह मिथक बिम्ब भी है और संवेग भी। वे रूप और भाव, शब्द और अर्थ, बिम्ब और प्रतीक, भाव एवं कार्य के द्वन्द्व से बँधे हुए हैं। वस्तुतः मिथक एक ऐसी विचारधारा है जिसमें समाज के सभी सदस्यों की भावनाएँ सिक्त होती हैं और वह हमारे विचार-वैषम्य को समाप्त करके एकता की सृष्टि करता है। इसमें द्वन्द्वों को रूपायन करने की प्रवृत्ति होती है, जो स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति होती है। मिथकों का सर्जनात्मक कल्पना के द्वारा नूतन रूप में ढलाव साहित्यकार व कलाकार की स्वच्छन्द वृत्ति का ही काम है। वस्तुतः मिथक सांस्कृतिक एवं पौराणिक चेतना के संदर्भ में आविष्कार है। इसके द्वारा कवि या साहित्यकार एक नयी चेतना उभारता है। यह चेतना क्रांतिकारी होती है इसलिए रोमांटिक होती है।

---

1. नई धारा, त्रैमासिक,, पटना, फरवरी-मार्च 1997, पृ० 4, 5, 6, 9, 10, 11, 13

आज के साहित्य में मिथक एक प्रकार के **फैंटेसी** के रूप में दिखायी पड़ता है। **मुक्तिबोध** ने 'कामायनी' का स्वप्नकथा के रूप में इसी आधार पर विवेचन किया है। जीवन-मूल्य जिनकी प्रच्छन्न अभिव्यंजना मिथक करते हैं, मात्र मूल्यवान् हो सकते हैं, मानवीय हो सकते हैं, मिथ्या या सत्य नहीं हो सकते। आधुनिक साहित्य में मिथक प्रस्तुति का बहुत ऊँचा स्थान है। **डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी** का कथन है कि मिथक तत्त्व वस्तुतः भाषा का पूरक है। सारी भाषा ही उसके बल पर खड़ी है। आदिमानव के चित्र में संचित अनेक अनुभूतियाँ मिथक के रूप में प्रकट होने के लिए व्याकुल रहती हैं। वस्तुतः मिथक अपनी रचना-प्रक्रिया में संस्कृति, लोक-संस्कृति, लोक-परिवेश, लोक-चेतना एवं लोक भाषा से संबल ग्रहण करता है। इसका मूल उत्स लोक-साहित्य है।

मिथकीय अभिव्यंजना, मानव मस्तिष्क का आदिम स्वभाव है, इस तरह हम कह सकते हैं कि मिथकीय अभिव्यंजना गहरे रूप में लोक-साहित्य में विद्यमान रहती है। लोक-साहित्य वस्तुतः मनोवैज्ञानिकता, मानवीयता एवं आनुष्ठानिकता की मंजूषा है। इस प्रकार मिथकीय प्रस्तुति के लिए कवि या लेखक पौराणिक साहित्य, लोक-साहित्य से प्रेरणा ग्रहण करता है। मिथक सांस्कृतिक मूल्यों एवं पौराणिक कथा के समकालीन मूल्यों के संदर्भ में नवीकरण है। **कैबीरा** मिथक को विज्ञान, कला एवं भाषा से समन्वित प्रत्येक मानव-विचार का मूल रूप स्वीकार करता है। **युंग** व्यक्तिगत अचेतन के साथ सामूहिक अचेतन को व्याख्यायित करते हैं और इसी क्रम में बिम्ब, प्रतीक एवं मिथक की अभिव्यंजना भी करते हैं। **युंग** का सामूहिक अचेतन, सांस्कृतिक चेतना को बिम्बों, प्रतीकों एवं मिथकों को रूप में अभिव्यंजित करने की एक सहज स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि **युंगीय** मनोविज्ञान के विस्तार क्रम में सामूहिक अचेतन की प्रक्रिया में सांस्कृतिक मूल्यों को संप्रेषित करते हुए शिल्पगत वैशिष्ट्य के रूप में बिम्ब, प्रतीक एवं मिथक की प्रस्तुति साहित्यिक अभिव्यंजना में आवश्यक है। लोक-साहित्य लोक-मनोविज्ञान की अभिव्यंजना के लिए इन शिल्पगत रूपों में पौराणिक एवं सांस्कृतिक आख्यानों का नूतनता के साथ प्रस्तुत करता है। वस्तुतः मिथकीय चेतना दैवी भावना से मानवीय भावना की ओर प्रयाण है और इसमें मानवीय भावना के द्वारा समकालीन जीवन-बोध को कवि उजागर करता है। कवि या कलाकार समकालीन जीवय-चेतना की अभिव्यंजना जितनी बारीकी से करेगा, सांस्कृतिक एवं पौराणिक जीवन-मूल्यों को व्याख्यायित करने में वह उतनी सशक्त रचना होगी। यही वह बिन्दु है- जिसमें मिथकीय चेतना की स्थिति उभरती है और मिथक वस्तुतः कलात्मक मिथक एवं काव्य मिथक के रूप में प्रस्तुत होता है जिसे कवि अपनी सर्जनात्मक प्रतिभा से पौराणिक उत्स को नवीकरण के द्वारा समकालीनता का चोला पहनाता है। यही मिथकीय चेतना की स्वच्छन्दतावादी पहचान है। मिथकीय प्रस्तुति की मौलिकता, नूतनता एवं समकालीनता जीवन-बोध की चेतना के सम्मिलित रूपायन का यह रूप रोमांटिक है। यह कार्य कवि या कलाकार अपनी सर्जनात्मक एवं सक्रिय कल्पना से करता है। फलतः पौराणिक एवं सांस्कृतिक चेतना को वह एक नवीन व मौलिक रूप में रख देता है।

बिम्ब-निर्माण की प्रक्रिया वस्तुतः मानवीय धरातल पर अस्तित्व ग्रहण करती है। बिम्ब-विधान मुख्यतः सर्जनात्मक एवं सक्रिय कल्पना का व्यापार है। बिम्ब-विधान चेतन और अचेतन मस्तिष्क का विस्तार है। स्वच्छन्दतावादी बिम्ब-विधान जीवन की गतिशीलता से भी जुड़ा होता है। उसमें कलाकार व साहित्यकार अपने अनुभवों को मानवीय क्रियाओं के साथ चित्रित करता है। इसलिए बिम्ब-विधान की विशुद्ध स्थिति स्वच्छन्दतावादी स्थिति होती है। बिम्ब-योजना की सामग्री साहित्यकार व कलाकार

लोक-साहित्य से ग्रहण करता है। भोजपुरी के **भिखारी ठाकुर** कृत 'विदेशिया' नाटक के इस गीत में बिम्बों की छटा अवलोकनीय है। समाजी पूर्वी धुन का एक उदाहरण प्रस्तुत है:

"घरी रात गइले पहर रात गइले से,

दुआरा करेले ठाढ़ शोर रे बिदेशिया।

रोवेली सांवरिया रे धुनि-धुनि छतिया से

आइले महलिया में चोर रे बिदेशिया।"

प्यारी पूर्वी धुन की एक बानगी लीजिए:

सैंया जो रहिते त धई बाँन्हि मरते से,

केकरा से कहूँ कर जोर रे बिदेशिया।

सावन भदउवाँ के निशि अँधियरिया से,

सोई गइले टोलवा परोस रे बिदेशिया।।

हमरो अभागिन के फूटल करमवाँ से,

सहि नहि जाला ई कलेश रे बिदेशिया।

पइती कटरिया आपन जिया हतितो से,

मेटि जइते बारहु वियोग रे बिदेशिया।"

बिम्बात्मक चेतना पाँच इन्द्रियों का संयोग होती है। इसलिए इसकी चेतना मानवीय है। इस प्रकार यह कहना उपयुक्त है कि बिम्बात्मक चेतना रोमांटिक होती है। इसके द्वारा मानवीय भावनाओं को चित्रित किया जाता है। कवि शाश्वत संसार का निर्माण कल्पना के द्वारा करता है। बिम्ब कला सर्जन का आन्तरिक चक्षु है। इसी आन्तरिकता से बिम्बों का सृजन होता है। इस प्रकार कवि अपनी अनुभूति को बिम्ब के रूप में मूर्त करके शब्दार्थ के माध्यम से प्रस्तुत करता है। किन्तु आधुनिक अंग्रेजी कवि **डब्लू० वी० यीट्स** इस बात के इच्छुक थे कि दृष्टि-सृष्टि की सम्मिलित प्रक्रिया में कवि को अपनी बात कहने का अधिकार सुरक्षित रखना चाहिए। यह उसकी अपनी निजी अनुभूति होगी जो कि व्यथा का एक मात्र स्रोत है। कलाकार की समग्र परिस्थिति प्रासंगिक है। जहाँ तक कलाकार उसको भोगता है, वहाँ वह बिम्ब से सम्बद्ध है। यह भोग्य जैसा कि **इलियट** ने कहा है व्यक्तिगत बात है और पाठक से इसका कोई लगाव नहीं है। भोग्य के रूप कविता में नहीं आना चाहिए। किन्तु, प्रतीकात्मक बनकर यह कविता में आ सकती है। ऐसा **वर्ड्सवर्थ** में, **यीट्स** में पाया जाता है और बहुत-कुछ **इलियट** में भी।

प्रतीक का आदिम भाषा में सम्बन्ध है। अचेतन से उद्भूत होने के कारण 'प्रतीक' की भाषा स्वतः प्रकट होती है। यह मानवीय अभिव्यंजना का एक आन्तरिक स्वाभाविक मार्ग है। मिथक को भी प्रतीकात्मक कथ्यों द्वारा अभिव्यंजित किया जाता है। प्रतीक-विधान मिथकीय चेतना का विस्तार है। प्रतीकीकरण की प्रक्रिया अन्तःमन से झंकृत होती है। मनुष्य की सम्पूर्ण चेतना की प्रस्तुति

प्रतीक-विधान का खेल है। इसलिए इसमें चेतन-अचेतन के क्रिया-व्यापार की आँख-मिचौनी भी है। शिल्प तथा दृष्टिकोण दोनों में ही प्रतीक-विधान स्वच्छन्दतावाद का विस्तार है। **डॉ० सत्यप्रकाश सिंह** के शब्दों में प्रतीकीकरण एक प्रक्रिया है जिसमें मूल प्रवृत्यात्मक कथ्य को आद्य बिम्बात्मक रूप देते हैं।

वस्तुतः प्रतीकों में कवि या कलाकार की आन्तरिकता बोलती है। अचेतन की अभिव्यंजना के लिए 'प्रतीक' एक आवश्यक माध्यम के रूप में स्वीकृत है। इसमें अज्ञात मन की छिपी और दमित भावनाओं एवं इच्छाओं का स्रोत होता है। मूलतः प्रतीकीकरण की प्रक्रिया स्वतः परिचालित होती है। प्रत्येक प्रतीक का अपना एक इतिहास होता है। इसी क्रम में पुनः **डॉ० सत्यप्रकाश सिंह** का कथन है कि आत्मीकरण के अभाव में प्रतीक-योजना नहीं हो सकती। प्रस्तुत संदर्भ में **डॉ० अजब सिंह** का कथन है कि इसी बिन्दु पर प्रतीकात्मक अभिव्यंजना कला या साहित्य में स्वच्छन्दतावादी चेतना से जुड़ती है। मूलतः बिम्ब-विधान एवं प्रतीक-विधान में आन्तरिक चेतना अनिवार्य होती है। इसीलिए प्रतीकीकरण साहित्य या कला की रोमांटिक वृत्ति है। **गजानन माधव मुक्तिबोध** का अभिमत प्रस्तुत परिप्रेक्ष्य में उल्लेखनीय है कि प्रतीकों द्वारा हम अपने आपको प्रकट करते हैं। वस्तुतः प्रतीकीकरण की प्रक्रिया आज की कविता की केन्द्रीय प्रवृत्ति है। इसलिए आज की कविता प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है। इस प्रकार प्रतीकात्मक अभिव्यंजना के द्वारा आज भी स्वच्छन्दतावाद एक नये रूप में दिखायी पड़ता है। कुल मिलाकर यह कहना न्यायसंगत है कि प्रतीकात्मक अभिव्यंजना रोमांटिक होती है और इसलिए प्रत्येक युग में रोमांटिक प्रवृत्ति उभरती रहती है।

छायावादोत्तर हिन्दी कविता में लोकभाषा की प्रस्तुति प्रमुख रूप में हुई है। वस्तुतः लोकभाषा का ऐसा प्रयोग संत-भक्ति काव्य के बाद कभी नहीं दिखायी पड़ा था। लोक-परिवेश, लोक-संस्कृति तथा लोक-चेतना की एक लहर छायावाद के बाद ऐसी आयी जिसमें ग्रामीण परिवेश, लोक-संस्कृति, लोक-चेतना की झंकृति है। छायावादोत्तर युग की शायद ही कोई महत्त्वपूर्ण कविता ऐसी रही हो जिसमें धरती, किसान, मजदूर, मिट्टी, फसल एवं लोक-चेतना की चर्चा न हो। वस्तुतः छायावादोत्तर हिन्दी कविता में शिल्पगत विशेषता के रूप में लोकगीतात्मकता की काव्यात्मक अभिव्यंजना विपुल मात्रा में है जिसमें जीवन-रस की गगरी छलकती रही है। **प्रो० शिवकुमार शाण्डिल्य** के अनुसार- ''लोक-वार्ता में आदिम प्रवृत्तियों का उद्‌घाटन सहज भाषा, सहज अर्थात् प्रकृत भाषा में होता है।'[1]

नवस्वच्छन्दतावादी कवि **डॉ० शिवमंगल सिंह 'सुमन'** की कविता **'गुनिया का यौवन'** लोक-रस में पगी हुई है:

चुनरी लाल, नीला लहँगा

बिखरे कुन्तल, सहमे उरोज

किस चपल कन्हैया को उनकी

कजरारी आँखें रही खोज।

इसी तरह **नरेन्द्र शर्मा** की कविताओं में भी लोक-संस्कृति एवं लोक-परिवेश का चित्रण प्रचुर

---

1. प्रो० शिवकुमार शाण्डिल्य *कौरवी लोकोक्तियाँ,* पृ० 10

मात्रा में मिलता है। इसके लिए एक उदाहरण ही पर्याप्त होगा- उत्तर प्रदेश तथा बिहार के गाँवों में भोली-भाली अविवाहित कन्याएँ अपने भावी वर के विषय में अनेक कल्पनाएँ करती रहती हैं। वे कच्चे आम की गुठली को तोड़कर उसकी बिजुली को अपने सर से उछालती है और जिस दिशा में वह बिजुली उछलने के उपरान्त गिरती है वे मानती हैं कि उसी दिशा में उनका विवाह होगा। लोक-विश्वास की इस मधुर कल्पना को अपनी प्रेयसी के लिए प्रयोग करता है।

कौन देश से आवेंगे पिय?

हँस-हँस कहती होंगी सखियाँ,

घेर तुम्हें आँगन में बैठी,

आमी चीर उछाल बिजलियाँ।"

लोक-चेतना के साथ-साथ **नरेन्द्र शर्मा** की कविताओं में मिथकीय चेतना एवं सहजानुभूति की अच्छी अभिव्यंजना मिलती है:

चौमुख दिवला बार–

चौबारे पर आज

धरूँगी चौमुख दिवला बार।

जाने कौन दिशा से आवें

मेरे राजकुमार।

चौमुख दिवला बार।

इस प्रगीत के सभी शिल्पगत उपकरण लौकिक तथा जनसामान्य के समीप हैं। एक सहज भोली और सरल ग्रामीण प्रेयसी के रूप में कवि ने विरहिणी की सतत आकुल प्रतीक्षा का मार्मिक अंकन किया है। सारा गीत एक लोकगीत प्रतीत होता है। चौबारे पर दिवला बारकर धरना, चारों दिशाओं में एकटक निहारना, पवन के संदेश से दीप की लौ का सौ-सौ बल खाना और झाला देकर बुलाना, नायिका का उझक-उझककर बाट जोहना सभी कुछ सामान्य लोक-जीवन में घटित होनेवाला है। इसकी चेतना मिथकीय भी है। इतना ही नहीं, यही नायिका गगन में तारों का खिलना देखकर इस छलना को समझ लेती है। समय बीत रहा है और इसके साथ ही देह-दीप भी जीवन स्नेह से रीता हो रहा है। नायिका कहती है:

होता दीप स्नेह से रीता,

आशा में सब जीवन बीता,

मैं अनदेखे की परिणीता;

निर्मोही बन मोहे लेते

मेरे राजकुमार।

नरेन्द्र शर्मा के इस प्रगीत में सहानुभूति की अभिव्यंजना इतनी गहरी हुई है कि सहजाभास का अच्छा उदाहरण स्वच्छन्द नारी-प्रेम के रूप में देखा जा सकता है:-

आज न सोने दूँगी बालम,

मेरे अधिक निदारे बालम।

आज विश्व से छीन तुम्हें, मैं

निज वक्षस्थल में भर लूँगी,

मृदुल गोल गोरी बाँहों में

कम्पित अंगों में कस लूँगी,

फूलों के तन में भर लूँगी

अलि से रैन निदारे बालम।

वस्तुतः **नरेन्द्र शर्मा** के गीतों में लोक-चेतना, लोक-संस्कृति, मनोवैज्ञानिकता एवं सहजानुभूति की अच्छी प्रस्तुति अवलोकनीय है।

रमेश रंजक की कविताओं में लोक-लय की अच्छी अभिव्यंजना मिलती है। उनकी कविताओं में ब्रजक्षेत्र की लोक-संस्कृति चित्रित है:

"बैल भई रे, करतार।

उमरिया बैल भई।

सुबह थमावै, चाकी-चूल्ही, दुपहर गोबर ढेर

साँझ निगोड़ी ऐसे पीटे, जैसे लोह लुहार

उमरिया बैल भई।"

इसी तरह इनकी अनेक कविताओं में लोक-परिवेश, लोक-संस्कृति की अच्छी अभिव्यंजना हुई है। 'राज-मजूरिन की होली' बाल-विवाह का गीत 'बदरा पानी दे' चरवाहों का गीत, हरिजन महिला का गीत, मँहगाई का गीत, फसल बोवाई का गीत, धरती का गीत, अछूत कन्या की कजरी इत्यादि कविताओं में लोक-परिवेश एवं लोकलयता की अच्छी अभिव्यंजना हुई है। लोक-गीतात्मक शैली में लोक-चेतना की प्रस्तुति के रूप में **सर्वेश्वर दयाल सक्सेना** की यह कविता भी उल्लेखनीय है:

नीम की निबौली पकी,

सावन की ऋतु आई रे।

दादुर-मोर-पपीहा बोलें

बोले आँचर धानी रे

खन-खन-खन-खन चुरियाँ बोलें

रिमझिम-रिमझिम पानी रे,

डाल-डाल पर, पात-पात पर

कोइलिया बौरायी रे।

*** * ***

बेदरदी परदेश बसे हैं

हूक करेजवा छायी रे।

मनोवैज्ञानिकता, लोकलयता एवं वैयक्तिक अनुभूतियों की अच्छी अभिव्यंजना इस गीत में हुई है। इसी क्रम में लोक-लय एवं मनोवैज्ञानिकता के रस में भीगी हुई **नेमिचन्द्र जैन** की कविता 'मोरा कहीं बोला' में सहजता, मनोवैज्ञानिकता एवं लोक-लयता की त्रिधारा देखी जा सकती है:

रिमझिम-रिमझिम बरसै मेहा

और दिन-रात

छोह भरी तरसे सुहागन

अकेली

हिया काँपे

भरी बरसात

भरे सब रीते तालाब

छलक उठा नेहा

पूरबा के झोंकों से

सिहर के

नयी दुल्हन ने

चुपके से अपने हिये का भेद खोला।

मोरा कहीं बोला।

लोक-साहित्य में आन्तरिकता, वैयक्तिकता,.मनोवैज्ञानिकता एवं सामाजिक चेतना की अभिव्यंजना कथ्य एवं शिल्प के रूप में होती रही है और इस बिन्दु पर लोक-साहित्य आधुनिकता बोध के घेरे में आ जाता है। युंगीय मनोविज्ञान तथा लोक-कला की अभिव्यंजना का अपार भण्डार लोक-साहित्य से आज का साहित्यकार ग्रहण करता है। आन्तरिक, मनोवैज्ञानिक अभिव्यंजना की प्रेरणा को साहित्यकार लोक-साहित्य से ग्रहण करता है। मानवीय यथार्थता को भी लोक-साहित्य से ग्रहण किया जाता है। आज की आलोचना की एक कड़ी शैली-वैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसकी व्याख्या करने में शब्दों के मनोविज्ञान पकड़ने में लोक-साहित्य सहायक बनता है। वस्तुतः भाव-बोध के साथ-साथ शिल्पगत

प्रयोग में भी लोक-साहित्य, आधुनिकता बोध के कई रूपों को अपने में लिये हुए है। मिथक, बिम्ब, प्रतीक, प्रगीतात्मकता, लोक गीतात्मकता आदि शिल्पगत बुनावेष्ट लोक-साहित्य में स्वच्छन्दतावादी वैशिष्ट्य ही है।

लोक-साहित्य विविध रीति-रिवाजों एवं परिवेशगत छवियों की मनोहारी यात्रा है। इस प्रकार देश के किसी भी कोने से इसकी यात्रा शुरू की जा सकती है और बीच-बीच में इनके कई पड़ाव आते हैं, उनकी झाँकियाँ और परिवेशगत रूप-छवियों की प्रस्तुति लोक-मानस अपने आवेष्टन वैशिष्ट्य से करता चलता है, उससे प्रेरणा भी ग्रहण करता है। फलतः आधुनिकता भी एक प्रक्रिया है, वैचारिक यात्रा है। वस्तुतः इहलौकिकता, मनोवैज्ञानिकता, सहजता के कारण मानवी अनुभूतियों को चित्रित करना इसकी खास पहचान है। इस तरह हम कह सकते हैं कि लोक-साहित्य में इनकी ये छवियाँ गुंफित रहती हैं। उससे प्रेरणा लेकर आज का साहित्य अपनी कलात्मक अभिव्यंजना भी करता है। इस तरह संस्कृति तथा लोक-संस्कृति की कलात्मक अभिव्यंजना स्वच्छन्दतावादी चेतना का आयाम है।[1]

1. साहित्य धर्मिता : *चातुर्मासिक साहित्यिक पत्रिका दिसम्बर,* 1986, लोक साहित्य का स्वच्छन्दतावादी आयाम (आलेख डॉ० अजब सिंह), पृ० 435.

उपसंहार

'रोमांटिसिज़म'को हिन्दी समीक्षा-संसार में स्वच्छन्दतावाद के नाम से ही अभिहित किया गया है। स्वच्छन्दतावाद को समीक्षकों ने विभिन्न आयाम दिये और इसके विकास को सुनिश्चित किया।

'रोमांटिसिज़्म' को अंग्रेजी समीक्षा साहित्य में अनेक अर्थों में ग्रहण किया गया है किन्तु इसे विशिष्टार्थ में उस समय की कविता के लिए ग्रहण किया गया जो 1789 में विलियम ब्लेक के 'Song of Innocence' से लेकर **कीट्स** तथा **शेली** की मृत्यु के पश्चात् स्वयं भी अस्तित्वहीन हो गई थी। अंग्रेजी साहित्य में यह समय 'रोमांटिक युग' के नाम से जाना जाता है और उस समय की कविता 'रोमांटिक' कविता कहलायी, जिसके प्रमुख कवियों में **ब्लेक, कॉलरिज़, वर्ड्सवर्थ, शेली** तथा **कीट्स** हैं। इस प्रकार पाश्चात्य स्वच्छन्दतावाद 18वीं शताब्दी में अस्तित्व को प्राप्त हो चुका किन्तु अपने पूर्ण विकास को यह 9वीं शताब्दी तक ही प्राप्त हो सका था।

फ्रांस की राज्यक्रांति के साथ-साथ सामाजिक, राजनीतिक और व्यावसायिक क्रांति ने सम्पूर्ण यूरोप, फ्रांस तथा इंग्लैण्ड को अपने आगोश में ले लिया। इन सभी क्रांतियों ने विद्रोह के स्वर मुखरित किए जो साहित्य जगत् में भी अपनी पहुँच बना बैठे। 19वीं शताब्दी में अंग्रेजी साहित्य में **वर्ड्सवर्थ** तथा **कॉलरिज** के प्रयत्नों से एक नयी सर्जनात्मक आलोचनात्मक विचारधारा एवं चेतना की जागृति हुई जिसमें तत्कालीन परम्परा के प्रति विरोध एवं विद्रोह था तथा कल्पना, प्रतिभा, प्रेरणा और आविष्कार जैसे शब्दों का बोलबाला था। इसी नयी सर्जनात्मक चेतना ने स्वच्छन्दतावाद को एक नये आन्दोलन के रूप में प्रस्तुत किया। **वर्ड्सवर्थ** तथा **कॉलरिज** ने अपने युग की विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हुए **लिरिकल बैलेड्स** जैसी कृति के रूप में अपनी संस्कृति को साहित्य में प्रवाहित किया। **लिरिकल बैलेड्स** की भूमिका ने स्वच्छन्दतावादी काव्यान्दोलन के 'घोषणा-पत्र' के रूप में साहित्य-जगत् में पदापर्ण किया और साहित्य में 'रोमांटिक साहित्य' के नाम से एक नयी युग-सरिता को प्रवाहित किया। यही कारण है कि **'लिरिकल बैलेड्स'** की भूमिका को रोमांटिक-काव्य-शास्त्र का बाइबिल कहा जाता है। काव्य-जगत् से कृत्रिमता को दूर करने, उसे सामान्य जीवन से मिलाने तथा दैनिक जीवन को अलौकिकता प्रदान करने का यह सम्मिलित प्रयास था। इसमें कवियों की रुझान उपेक्षित घटनाओं, पात्रों, निम्न तथा ग्रामीण-जीवन, स्वाभाविक भाषा का प्रयोग, आलंकारिकता, कल्पनाशीलता, उन्मुक्तता तथा अनुभूति की स्वच्छन्द प्रकृति की ओर था। Back To The Nature का नारा बुलन्द करने के साथ रोमांटिक कवियों ने काव्य अभिव्यंजना में ग्रामों की ओर प्रस्थान किया, प्रकृति को प्रत्येक रूप में निहारकर उसका रसास्वादन भी किया।

फ्रांस की राज्यक्रांति के साथ-साथ वहाँ की औद्योगिक क्रान्ति ने भी स्वच्छन्दतावादी काव्यान्दोलन को प्रवाहित एवं निर्मित करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। वस्तुतः फ्रांस की क्रांति केवल आर्थिक, सामाजिक अथवा राजनीतिक परिवर्तन की क्रांति नहीं थी वरन् यह क्रांति मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के प्रत्येक पहलू में आयी आमूल परिवर्तन की चाह थी जिससे साहियी-जगत् भी अछूता न रह सका।

वैज्ञानिक आविष्कारों, साधनों एवं सभ्यता ने मानव-चिन्तन की दिशा बदल दी जिसने मनुष्य के बंधनों को तोड़ा और इस प्रकार अनायास ही परम्परा की कड़ियाँ टूटती चली गयीं। इस असीमित परिवर्तन ने मनुष्य में आत्म-प्रकाश उत्पन्न किया जिससे वैयक्तिक स्वतंत्रता को बल मिला। समाज में होने वाले आमूल परिवर्तनों और मानववादी दार्शनिक उद्भावनाओं के संयुक्त प्रभाव से ही स्वच्छन्दतावादी साहित्यिक दृष्टिकोण निर्मित हुआ।

स्वच्छन्दतावाद को पाश्चात्य समीक्षकों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से मूल्यांकित किया है। **स्टैढल** रोमांटिक कविता को 'कविता का एक प्रकार' कहकर 'कविता का तत्व' मानते हैं। **एफ० डब्ल्यू० वेट्सन** ने चेतन-अचेतन की समन्वयात्मक कड़ी प्रकृति-प्रतीक को स्वच्छन्दतावाद की मूल इकाई कहा है। **रीडर्स एनसाइक्लोपीडिया** में आन्तरिक भावनाओं और अनुभूतियों को स्वच्छन्दतावाद की प्रवृत्तियाँ कहा गया है। **जॉन हाल्सटड** द्वारा सम्पादित **रोमांटिसिज़्म** में स्वच्छन्दतावाद को अत्याधुनिक सुन्दराभिव्यक्ति कहकर विश्लेषित किया है। **फ्रायड, युंग तथा एडलर** ने मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में स्वच्छन्दतावाद को विश्लेषित किया है। **फ्रायड** ने 'लिबिडो' की प्रतिक्रिया को स्वच्छन्दतावाद की मूल व आत्मा कहकर परिभाषित किया है।

19वीं शताब्दी के वैज्ञानिक आविष्कारों एवं यातायात के साधनों तथा स्वेज नहर के पुल ने यूरोप तथा भारत के सम्बन्धों को अधिक प्रगाढ़ कर दिया। व्यापारिक सम्बन्धों के चलते विदेशी वस्तुओं ने भारतीय बाजार पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

इधर भारत पर अंग्रेजी साम्राज्य के कारण भारतीय अभावग्रस्त, संत्रस्त एवं कुंठित जीवन जीने को विवश थे। 19वीं सदी के गुजरात अकाल ने देश की आर्थिक स्थिति को और बिगाड़ दिया। विदेशी शासक भारतीयों की भलाई के स्थान पर उन पर अत्याचार करते और उनका शोषण कर अपने स्वार्थ की सिद्धि करते थे। बिगड़ी आर्थिक व्यवस्था के कारण उद्योग-धन्धे भी चौपट होने लगे जिससे सामन्ती व्यवस्था को बल मिला। समाज में अनेक सामाजिक एवं धार्मिक बुराइयाँ और कुप्रथाएँ बढ़ने लगीं। समाज से समस्त बुराइयों को दूर करने के लिए शिक्षा विशेषकर स्त्री-शिक्षा आवश्यक समझी गयी। सामाजिक एवं धार्मिक बुराइयों को दूर करने के लिए समाज-सुधारकों ने अनेक रीति-रिवाजों एवं परम्पराओं का विद्रोह कर उन्हें तोड़ा और अनेक सुधार-कार्यक्रम चलाये। कवि की वाणी युग के समवेत सम्यक् स्वर की कण्ठध्वनि होती है अतः साहित्यकारों ने भी अपना उत्तरदायित्व संभाला। मानवता के प्रति विस्तृत दृष्टिकोण अपनाते हुए उपेक्षित एवं शोषित के प्रति सहानुभूति अपने साहित्य के माध्यम से दिखायी। साहित्य एवं शिक्षा के प्रभाव ने जन-सामान्य की सोच में व्यापक परिवर्तन किया। परिवर्तित दृष्टिकोण के कारण पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोह ने जन्म लिया जिसने भारतीय राष्ट्रीय भावना को बढ़ाया। जब विदेशी शासन की विषमताएँ सीमा को पार कर गयी तो भारतीय वर्ग में भी नूतनता एवं परिवर्तन की ज्वाला धधक पड़ी। परिवर्तन की ज्वाला ने समस्त भारत को अपने बाहुपाश में ले लिया तो साहित्य-जगत् भी इसे अलग नहीं रह सका। सामाजिक प्राणी होने के कारण, कवि समाज की धड़कन व स्पन्दन की ध्वनि को स्पष्टतः सुन सकता है और उसे अपनी वैयक्तिक अनुभूति के माध्यम से साहित्य में अभिव्यंजित भी करता है। युग की आत्मा की

आवाज कवि-हृदय को अपनी अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम साधन बनाती है और कवि अपने छोटे से व्यक्तित्व में युग की आत्मा का भार लिये फिरता है। अनेक क्रान्तियों तथा आन्दोलनों तक की यात्रा इस बात का प्रमाण है कि आमूल परिवर्तन की चाह व्यक्ति की वैयक्तिक अनुभूति और समाज की आत्मा के समवेत कण्ठस्वर की ध्वनि ही है। इस प्रकार परिस्थिति और वातावरण के साथ-साथ पर्याप्त संदेश पाकर भारतीय कवि की वाणी भी मुखरित हो उठी और फिर जन्म हुआ स्वच्छन्दतावादी साहित्य का। भारतीय रोमांटिक साहित्य को पाश्चात्य साहित्य का प्रतिरूप माना जाता है किन्तु मेरे स्वयं के विचार से ऐसा नहीं है। भारतीय साहित्यकारों ने फ्रांस की क्रान्ति तथा पाश्चात्य साहित्यिक प्रतिमानों से प्रेरणा तो अवश्य ग्रहण की थी किन्तु वे पूर्णतया परोक्ष रूप से पाश्चात्य साहित्य की नकल करते हुए नहीं दिखायी देते। यह सत्य है कि यूरोपीय कवि और वहाँ के साहित्यिक विचार भारतीय साहित्यकारों के समक्ष एक आदर्श व प्रेरणा रूप थे किन्तु भारतीय साहित्यकारों ने उन्हें अपने ढंग से अभिव्यक्ति की शैली प्रदान की। अतः रोमांटिक कविता की उत्पत्ति के प्रेरणास्रोत भारतीय परिवेश एवं परिस्थितियों के साथ ही परिवर्तन की वह चाह भी थी जिसके लिए भारतीय मन सदियों से प्रतीक्षारत था। वास्तव में रोमांटिक कविता का मूलाधार भारतीय मन की भावुकता थी जो वर्तमान से असन्तुष्ट हो गयी थी और अपने अतीत के गौरव को जगाना चाहती थी। इस प्रकार रोमांटिक साहित्य शनैः-शनैः क्रमशः विकसित होते हुए आज एक विकसित रूप को प्राप्त है।

वस्तुतः स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों की रेखा भारतेन्दु-युग, से पूर्व ही रीतिकाल में **बोधा, ठाकुर,** और **घनानन्द** के काव्यों में उभरती दिखायी देती है। **राजा लक्ष्मण प्रसाद** के हिन्दी अनुवाद 'शकुन्तला' एवं **'मेघदूत'**, प्रेमघन की **'कजलियाँ'** एवं **'लावनियाँ'** आदि में भी स्वच्छन्दतावाद के अंकुर स्पष्टतः दृष्टिगोचर होते हैं। इस युग में स्वच्छन्दतावादी कवि कहलाने का श्रेय **जगमोहन सिंह** को जाता है। किन्तु भाषा, छन्द आदि के सम्बन्ध में आप परम्परागत ही दिखायी देते हैं।

यद्यपि स्वच्छन्दतावादी काव्य के अंकुर भारतेन्दु-युग में ही फूट पड़े थे किन्तु स्वच्छन्दतावादी चेतना का कोई स्पष्ट रूप इस युग में नहीं मिलता। केवल भाषा, छन्द एवं भाव के क्षेत्र में कुछ नवीनता अवश्य आयी जिसने रीतिकालीन रूढ़िवादिता को समाप्त करने की चेष्टा की थी। रीतिकालीन रूढ़ियों के विरुद्ध स्वच्छन्दतावादी काव्यान्दोलन का श्रीगणेश **पं० श्रीधर पाठक** से ही माना जाता है, जिसमें पंडित श्रीधर पाठक का साथ दिया **पं० रामनरेश त्रिपाठी, पं० रूपनारायण पाण्डेय** तथा **पं० मुकुटधर पाण्डेय** ने। इन कवियों के काव्यों में सीधी सरल भाषा वनवैभव, एकान्त-प्रणय, सौन्दर्य-प्रियता, अतीत-प्रेम और देश-प्रेम आदि स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति उन्मुक्त भाव लिये मिलती है। वैयक्तिक विद्रोह भाव का इन काव्यों में अभाव है क्योंकि यह कालान्तर में छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति के रूप में उभरता है।

भारतेन्दु-काल की अस्पष्ट स्वच्छन्दतावादी भावना आगे चलकर 'छायावाद' के रूप में विकसित हुई। छायावादी चेतना छायावादी काव्य के सामानान्तर किन्तु उससे निर्बल चलती रही। आगे जाकर 'छायावाद' और 'स्वच्छन्दतावाद' इतना घुल मिल गये कि उन्हें एक ही समझा गया।

पं० श्रीधर पाठक के काव्य की प्रवृत्तियाँ, **निराला, पन्त** तथा **महादेवी** के काव्यों में चरम परिणति

को प्राप्त हुई। यद्यपि द्विवेदी युग की भाषा सरल व सुन्दर थी किन्तु 'छायावादी काव्य' में क्लिष्ट भाषा के दर्शन होते हैं। छायावादी काव्यों में आध्यात्मिकता के कारण सौन्दर्याभिव्यक्ति में स्पष्टता, खुलापन एवं अनुभूति की स्पष्ट अभिव्यंजना भी नहीं हो सकी है फलतः कवि परम्परागत दिखायी देते हैं। अतिशय कल्पनाशीलता, भावुकता, व्यक्तिवादिता आदि इस काल के काव्यों की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं।

छायावादी काव्य के बाद अनुभूतिपरक काव्यों में प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति में सच्चाई, निराशा, विद्रोह एवं मानवतावादी स्वर मुखरित हुए हैं। इस सम्प्रदाय के कवियों में **नवीन, बच्चन, दिनकर, अंचल, नेपाली, भगवतीचरण वर्मा, नरेन्द्र शर्मा** तथा **आर० सी० प्रसाद सिंह** प्रमुख हैं।

प्रगतिवाद छायावाद में क्रान्तिकारी रूप का अगला चरण था जो छायावाद के साथ ही आगे बढ़ता रहा किन्तु यह रोमांटिक वृत्ति का तीव्र विरोधी साबित हुआ और कला के स्तर पर भी खरा नहीं उतरा तथा यही वृत्ति उसकी अल्पावधि का कारण बनी। प्रगतिवादी कवियों ने लोक-साहित्य एवं लोक-संस्कृति को अपने काव्य का प्रिय विषय बनाया। **पन्त** की **ग्राम्या निराला** की **बेला, नये पत्ते केदारनाथ** की **युग की गंगा, त्रिलोचन शास्त्री** की **धरती** तथा **डॉ० राम विलास शर्मा** की कविताएं इसका सजीव उदाहरण हैं।

छायावाद की प्रमुख प्रवृत्ति, प्रगतिवादी काव्यों में लुप्त होने के बाद प्रयोगवाद में पुनः नये रूप में जीवन्त होती है जो नये विचार, प्रेरणा और अनुभूति लेकर हिन्दी साहित्य में आई थी। यही व्यक्तिवादी चेतना मानव चेतना का प्राण थी, जो स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों को बल देती है। **अज्ञेय** की **'भग्नदूत'** और **'चिन्ता' प्रभाकर माचवे** की कविताओं में रोमानी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं।

प्रयोगवाद के बाद के काव्यों पर अंग्रेजी के रोमांटिसिज्म का सीधा प्रभाव है। इन काव्यों में साधारण विषयों तथा जन-जीवन को अभिव्यंजना मिली थी। इस काल में **'लिरिकल बैलेड्स'** तथा *लिटरेरिया बायोग्राफिया* को आधार मानकर काव्य रचना हुई। इसी कारण नयी कविता नवगीतकारों के काव्य में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति सघन रूप में दिखाई पड़ती है। **अज्ञेय, मुक्तिबोध, तरुण, धर्मवीर भारती, केदारनाथ सिंह, शमशेरबहादुर सिंह, ठाकुरप्रसाद सिंह, प्रेमशंकर** तथा **अशोक वाजपेयी** इस काल के कवियों में प्रमुख हैं।

हिन्दी आलोचकों में सर्वप्रथम **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने स्वच्छन्दतावाद को रेखांकित कर इसे कृत्रिम और रूढ़ि काव्य-प्रवाह की प्रतिक्रिया की स्वाभाविक कविता कहा है।

डॉ० नामवर सिंह स्वच्छन्दतावाद को प्रकृति-प्रेम, व्यक्तिगत जीवनानुभूति, विद्रोह, स्वच्छन्द तथा रमणीय कल्पना से युक्त तथा प्राचीन रूढ़ियों से मुक्ति की आकांक्षा मानते हैं। उन्होंने स्वच्छन्दतावाद को अन्तर्राष्ट्रीय रूप प्रदान किया है। **डॉ० नामवर सिंह** रोमांटिसिज्म के बहुवचन रूप को मानते हैं। एक वचन रूप को नहीं क्योंकि उन्होंने केवल एक रोमांटिसिज्म नहीं माना, प्रत्येक कवि का स्वच्छन्दतावाद अलग होता है। उन्होंने स्वच्छन्दतावाद के क्रान्तिकारी रूप का आह्वान किया है।

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने स्वच्छन्दतावाद को वैश्विक अवधारणा बताते हुए विचार की संघर्ष की सुन्दर कलात्मक अभिव्यक्ति कहा है। **डॉ ० दे वराज उपाध्याय** स्वच्छन्दतावादी कविता को स्वतःप्रसू त काव्य कहा है जो स्वयं की अभिव्यक्ति के लिए कवि को विवश कर देती है।

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने स्वतंत्रता की अभिलाषा और प्राचीन रूढ़ि बन्धनों के प्रति विद्रोह तथा अमान्यता की भावना को स्वच्छन्दतावादी काव्न-लालसा कहा है। उन्होने नियमों की अवहेलना को स्वच्छन्दतावाद के रूप में विश्लेषित किया है। स्वच्छन्दतावाद के नये विकास नवस्वच्छन्दतावाद को वह पहले ही कल्पित कर चुके थे जिसमें यथार्थवादी शैली को अपनाकर एक नवीन मार्ग पर चलने का आग्रह था। **रामधारी सिंह 'दिनकर'** ने रोमांटिक काव्य को विज्ञान का सबसे बड़ा प्रतिलोम बताते हुए कल्पना को काव्य का मूलतत्त्व माना है, जिसके अभाव में काव्य की सर्जना नहीं हो सकती। **डॉ० नगेन्द्र** ने स्वच्छन्दतावाद का गीतात्मकता, दिवास्वप्न बहुलता, कल्पना तथा उठप्रेरणा आदि प्रवृत्तियों के माध्यम से मनोवैज्ञानिक संदर्भ प्रस्तुत किया है। **डॉ० विश्वनाथप्रसाद मिश्र** ने स्वच्छन्दतावाद को सामाजिक बन्धनों का त्याग तथा जीवन में स्वच्छन्द विचरण की कामना अथवा लालसा कहा है। **डॉ० रामचंद्र मिश्र** ने स्वच्छन्दतावाद की कल्पना तथा आवेग से युक्त काव्य की विशेष सर्जना कहा है। **डॉ० अजब सिंह** ने स्वच्छन्दतावाद को नवीन अनुभूति की भूमि पर पुरानी परम्पराओं एवं रूढ़ियों से विद्रोह का चेतन, प्रकृति तथा लोक-जीवन की अनुभूति को वाणी देनेवाला कहा है।

इस प्रकार भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षकों के विश्लेषण से स्वच्छन्दतावाद की निम्न प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। कवि की सर्जनात्मक कल्पना, आवेग, आन्तरिक अनुभूति, विस्मय एवं रहस्यानुभूति, व्यक्तिवाद एवं मानववाद, दार्शनिकता एवं आध्यात्मिकता, स्वतः प्रसूत काव्य, सत्य के प्रति विचारशीलता, युग की सम्पूर्ण चेतना, सभी विचारों से संघर्ष, नियम एवं परम्परा की अवहेलना स्वातंत्र्य की लालसा, राष्ट्र-प्रेम एवं प्रकृति-प्रेम भाव, दो परस्पर विरोधी तत्त्वों का समन्वय, आत्मगौरव की भावना, यथार्थ वर्णन, विद्रोह की नवीनता, लोक-साहित्य, लोक-संस्कृति एवं लोक-गीत, वैयक्तिक स्वातंत्र्य की प्रबल लालसा, बिम्ब, प्रतीक, मिथक, प्रगीत, संगीतात्मक, मुक्तक काव्यों की प्रधानता आदि की अभिव्यक्ति स्वच्छन्द व विविध रूपों में हुई है। स्वच्छन्दतावादी कविता का उदय अस्पष्ट स्वच्छन्दतावादी चेतना के मध्य भारतेन्दु-काल में ही हो गया था।

भारतेन्दु युग के पश्चात् **श्रीधर पाठक** के काव्य की प्रवृत्तियाँ अपने उत्कृष्ट रूप में **महादेवी, प्रसाद, पंत** तथा **निराला** के काव्य में दृष्टिगोचर होती हैं। इस प्रकार अन्तर्निहित है कि स्वच्छन्दतावादी काव्यधारा अपना रूप निखारती हुई जब चरम सीमा की ओर बढ़ती है तो अत्यधिक आध्यात्मिक होने के कारण वह अपना रूप ही नहीं वरन् नाम भी बदलकर 'छायावादी काव्य' में परिणत हो जाती है। छायावाद अपने उदयकाल से ही अत्यन्त सशक्त, प्रौढ़ एवं विकसित रूप में मिलता है क्योंकि स्वच्छन्दतावादी कविता की प्रौढ़ता के मध्य ही छायावाद का उदय हुआ था।

छायावादी काव्य रीतिकालीन काव्य के प्रति प्रतिक्रिया का फल है। यह एक काव्यान्दोलन के रूप में 25-30 वर्षों तक काव्य-जगत् में छाया रहा किन्तु इसका प्रौढ़तम एवं विकसित रूप हमें सन् 1920 ई० से 1930 ई० के मध्य मिलता है।

'छायावाद' के विश्लेषण-विवेचन में **पं० श्रीधर पाठक** का नाम अग्रणी है। यद्यपि उन्होंने छायावाद पर अलग से कोई विचार नहीं किया किन्तु अपने काव्य के माध्यम से नवीन प्रवृत्तियों को अपनाकर जो नवीन सं दर्भ प्रस्तु त किया वछायावाद' के रूप में प्रकट हु आ था'छायावाद' पर सर्वप्रथम निबन्ध लिखने का श्रेय **पं० मुकुटधर पाण्डेय** को है। लेखन माला के रूप में प्रकाशित आपके चारों निबन्ध 'छायावाद' का रूप विश्लेषित करते हैं। **पं० मुकुटधर पाण्डेय** ने 'छायावाद' को पाश्चात्य

मिस्टिसिज्म के साथ जोड़ उसे मायामय और अविवेच्य करार दिया था। **पं० मुकुटधर पाण्डेय** के पाश्चात् 'छायावादी' सम्बन्धी तर्क-वितर्क एवं विचारों का विकास प्रारम्भ हुआ। प्रारम्भ में 'छायावाद' के नामकरण को लेकर भी वाद-विवाद व तर्क-वितर्क प्रस्तुत किये गये, किन्तु 'छायावाद' शब्द की सार्थकता असंदिग्ध मानते हुए उसे इसी नाम से पुकारा गया। कवियों एवं समीक्षकों ने विभिन्न दृष्टिकोणों से छायावाद को परिभाषित किया है।

सर्वप्रथम **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने छायावाद को रहस्यवाद एवं प्रतीक-व्यंजना की शैली के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित किया है। **आचार्य शुक्ल** की इस परिभाषा ने एक दिशा-सूत्र दियाँ और '**आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी** ने नवीन साहित्य के नवीन प्रश्नों को सार्वजनिक तथा स्थायी परिमाणों में परखा किन्तु कहीं-कहीं आचार्य वाजपेयी भी छायावाद को रहस्यवाद समझने की भ्रान्त-धारणा से स्वयं को बचा नहीं पाये हैं।

छायावादी युगप्रवर्तक **जयशंकर प्रसाद** ने छायावाद को कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की घटना अथवा देश-विदेश की किसी सुन्दरी के बाह्य-वर्णन से भिन्न वेदना के आधार पर स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति कहा है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के काव्य में हमें स्वच्छन्द उन्मुक्ति सौन्दर्य-दृष्टि, रहस्यवादी काव्य-प्रक्रिया, आदि छायावादी काव्य-प्रवृत्तियों के दर्शन होते हैं। वैसे निराला ने प्रत्यक्षतः 'छायावाद' के सम्बन्ध में अपने विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान नहीं की। किन्तु अपने विविध काव्य ग्रंथों में छायावादी काव्य की स्वच्छन्दतावादी विवेचना की है। उन्होंने छायावाद को साहित्य का सही-सही युग कहकर गौरवान्वित किया है।

सुमित्रानन्दन 'पन्त' ने छायावादी काव्यधारा को राष्ट्रीय अन्तर्जागरण की चेतना तथा विश्व-विकास के नये मूल्य के रूप में स्पर्श की वाणी तथा मानवतावादी उन्मुक्त अभिव्यक्ति कहकर विश्लेषित किया है। **महादेवी वर्मा** ने छायावाद की विवेचना रहस्यात्मक आधार पर ही की है साथ ही, सैद्धान्तिक दृष्टि से छायावाद में दर्शन को भी स्वीकार किया है किन्तु छायावादी काव्य की प्रेरणा-स्रोत सामाजिक परिस्थितियों को वह उतना स्वीकार नहीं कर सकी हैं। **महादेवी वर्मा** ने भाव, ज्ञान, कर्म के सिद्धान्त के आधार पर 'छायावाद' को विश्लेषित किया। उन्होंने काव्य-स्वरूप में लोक-समष्टि की भावना और काव्य-प्रयोजन में स्वान्तः सुखाय की भावना को सर्वोपरि रखा है। इस प्रकार **महादेवी** ने छायावाद को रहस्यवाद की प्रवृत्तियों के माध्यम से ही देखा है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने **महादेवी** की तर्ज पर रहस्यवाद को ही छायावादी काव्य की आत्मा माना है तथा छायावाद को नैसर्गिक प्रतिभा का वरदान बताते हुए आध्यात्मिक अनुभूति का काव्यान्दोलन कहा है।

छायावादी काव्य के व्याख्याता एवं निष्पक्ष द्रष्टा आचार्य **नन्ददुलारे वाजपेयी** के अनुसार वह सूक्ष्म सौन्दर्य जो स्वतंत्र एवं क्रियाशील होने के साथ-साथ किसी कथा अथवा आख्यायिक का वर्ण्य-विषय नहीं है छायावाद की सीमा-रेखा में आता है। **आचार्य वाजपेयी** ने छायावादी प्रवृत्तियों की चर्चा करते हुए उसे स्वच्छन्दतावाद से नितान्त भिन्न माना है तथा छायावाद को रोमांटिक कविता की कोरी नकल मानने से इन्कार करते हुए छायावाद को हिन्दी साहित्य के विकास की एक विशेषावस्था कहा है।

आचार्य वाजपेयी ने छायावाद के विषय-पक्ष एवं कला पक्ष को **प्रसाद, निराला, पन्त** तथा **महादेवी** के काव्यों की विवेचना द्वारा प्रस्तुत किया है। कामायनी की कल्पना प्रबन्धता, **निराला** के गीतिकाव्य, **पंत** की शब्दशक्ति व्यंजकता तथा **महादेवी वर्मा** का अमूर्त चित्रों की प्रतीक व्यंजनाओं का अध्ययन ही उनके छायावादी विवेचन का प्राण है।

सांस्कृतिक अन्वेषक **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने छायावाद को सांस्कृतिक चेतना का परिणाम माना है, जिसमें कवियों की भीतरी व्याकुलता की अभिव्यंजना नवीन भाषा शैली में हुई थी। उन्होंने छायावादी काव्य की मूलभूत इकाई मौलिक और सूक्ष्म अप्रस्तुत विधान माना है। **डॉ० द्विवेदी** ने छायावाद को स्वच्छन्दतावाद से अभिन्न पाश्चात्य रोमांटिक काव्य से प्रेरणा ग्रहण करने वाला कहा है किन्तु **डॉ० द्विवेदी** के ये विचार ग्राह्य नहीं हो सके क्योंकि छायावाद वेदान्तीय मानववाद की भूमिका पर पल्लवित एवं पुष्पित, आध्यात्मिकता से मण्डित, नवजागरण की सबसे अधिक निष्कलुष और तलस्पर्शी साहित्यिक अभिव्यक्ति है। कल्पना चिन्तन एवं अनुभूति का व्यापार करती है अतः **डॉ० द्विवेदी** ने छायावादी काव्य को कल्पना का व्यापार कहा है, अनुभूति का नहीं।

शान्तिप्रिय द्विवेदी ने छायावाद को वर्तमान जीवन का मानवतावादी एवं आध्यात्मिक ऐसा दृष्टिकोण कहा है जिसमें अव्यक्त का भावनाओं के उद्‌गारों के साथ-साथ माहात्म्य की सामाजिक स्वीकृति का उदार रूप भी उन्होंने छायावाद और रहस्यवाद में मौलिक वैषम्य को स्पष्ट करते हुए कहा है कि कवि की भाषा में जो छायावाद है सन्त की भाषा में वही रहस्यवाद है तथा कर्मयोगी की भाषा में गाँधीवाद।

डॉ० नगेन्द्र ने 'स्थूल के प्रति सूक्ष्म का आग्रह' को छायावाद की मूल प्रेरणा कहा है। छायावादी काव्य की एक अन्तर्मुखी प्रवृत्ति को काव्य का सम्पूर्ण परिवेश मानकर छायावादी काव्य को कुंठाग्रस्त काव्य कहते हैं। **डॉ० नगेन्द्र** ने छायावाद एवं स्वच्छन्दतावाद को एक घोषित करते हुए उसे कुंठा और जागरण का मिश्रण कहा है।

डॉ० विनयमोहन शर्मा ने छायावाद पर पाश्चात्य रोमांटिक कवियों के प्रभाव को स्वीकार करते हुए उसे स्वच्छन्दतावाद की शृंखला के रूप में विश्लेषित किया है।

'दिनकर' ने राष्ट्रीय आन्दोलन को छायावादी काव्यान्दोलन की मूल प्रवृत्ति माना है जो भारतीय सांस्कृतिक नवोत्थान का परिणाम तथा पाश्चात्य जीवन की स्वीकृति के साथ-साथ नवमानवतावादी व्यक्ति का प्रयास भी था। उन्होंने छायावाद को रोमांटिक आन्दोलन के समान माना है। छायावाद को उन्होंने द्विवेदीयुगीन काव्य की कल्पनाहीनता के विरुद्ध विद्रोह तथा मुख्यतः प्रगीतों का आन्दोलन कहकर विश्लेषित किया है।

प्रख्यात प्रगतिवादी समीक्षक **डॉ० रामविलास शर्मा** ने छायावाद को स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह न मानकर थोथी नैतिकता, रूढ़िवाद, साम्राज्यवादी तथा सामन्ती बंधनों के प्रति विद्रोह माना है। **डॉ० शर्मा** ने 'कल्पना' को छायावादी काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति मानते हुए उसे कवि की स्वप्रविष्ट काव्य-दृष्टि का चमत्कार कहा है।

डॉ० नामवर सिंह ने छायावाद को प्रवृत्तियों के आधार पर विश्लेषित किया है। उन्होंने छायावाद को चित्रण की सूक्ष्मता तथा राष्ट्रीय जागरण की कलात्मक अभिव्यक्ति कहकर उसे विद्रोह की कविता

का रूप प्रदान किया है। उनके अनुसार छायावादी कविता रूढ़ नियमों के विरुद्ध विद्रोह करती हुई व्यक्तिगत अनुभूतियों के दर्शन के प्रति अत्यन्त सचेत है। **डॉ० सिंह** ने 'कल्पना' को छायावाद की मूल प्रवृत्ति मानकर उसके दोनों रूपों अन्तर्दृष्टिदायिनी तथा जीवनशक्तिदायिनी का विवेचन किया है और इन्हें ही काव्य की अभिव्यंजना के लिए उत्तरदायी माना है। उन्होंने छायावाद पर अंग्रेजी रोमांटिक कविता के प्रभाव को अस्वीकार करते हुए कहा है कि छायावाद का अभ्युदय हमारी विशेष सामाजिक, साहित्यिक एवं ऐतिहासिक आवश्यकता के कारण हुआ था। यदि छायावाद स्वच्छन्दतावाद से प्रभावित होता है तो भारतेन्दु-काल के कवियों पर इसका प्रभाव क्यों नहीं पड़ा? जबकि **वर्ड्सवर्थ, शेली** के काव्य तो उस समय भी थे और भारतेन्दु-काल के कवि अंग्रेजी भाषा भी जानते थे।

अज्ञेय ने छायावादी काव्य को अन्तिम प्रकृति काव्य कहकर उस पर पाश्चात्य विचार-धारा का प्रभाव स्वीकार किया है, किन्तु साथ ही, छायावाद पर गर्व करने का अधिकार वह पश्चिम को नहीं देते क्योंकि यह विशुद्ध भारतीय उपलब्धि है।

डॉ० देवराज ने छायावादी काव्य को प्रकृतिवादी काव्य का आदर्श रूप कहा है, जिसके मूल में प्रेम एवं सौन्दर्य मुख्य है न कि आध्यात्मिकता। इस काव्य में उन्होंने स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह तो माना है किन्तु सूक्ष्म को आध्यात्मिकता से परे ही माना है। **डॉ० देवराज** ने कविता को न तो आध्यात्मिक काव्य के रूप में स्वीकारा है और न ही रहस्यवादी काव्य के रूप में अपितु वह उसे रोमांटिक काव्य रूप कहना अधिक समीचीन समझते हैं। क्योंकि उनके विचार से छायावादी काव्य रोमांटिक काव्य से प्रभावित हुआ था और उससे समानता भी रखता है।

प्रख्यात स्वच्छन्दतावादी समीक्षक **डॉ० अजब सिंह** ने छायावादी काव्य को आन्तरिक अनुभूतियों का काव्य कहा है, जिसके द्वारा अन्तः-बाह्य, चेतन-अचेतन के नवीन रहस्य उदघाटित होते हैं। इसे, साम्राज्य विरोधी चेतना के निखार का काव्य घोषित किया है जो स्वाधीनता आन्दोलन से प्रेरणा तो लेता ही है किन्तु तत्कालीन सामाजिक क्रान्ति से भी प्रेरित है। यह जीवन की स्वीकृति का काव्य है, जो निरन्तर प्रयोगशील है। उन्होंने छायावाद और स्वच्छन्दतावाद के मध्य एक विभाजक रेखा खींच उनकी अनेक भ्रान्तियों का निराकरण भी किया है। उन्होंने छायावाद एवं स्वच्छन्दतावाद के किंचित् वैभिन्य को इंगित करते हुए स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद की तुलना एक ऐसे बीज से की है, जिसे यदि अलग-अलग भूमियों में रोपा जाय तो जैसी भूमि होगी बीज का पल्लवन भी उसी प्रकार का होगा। इसी प्रकार का छायावाद का पल्लवन भारतवर्ष में और स्वच्छन्दतावाद का पल्लवन यूरोप में हुआ था। छायावाद को **डॉ० अजब सिंह** ने पूर्व और पश्चिम का मिश्रण माना है। छायावादी काव्य में कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ हैं जो पश्चिमी स्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रवृत्तियों के समान हैं किन्तु कुछ प्रवृत्तियाँ छायावाद में अधिक पायी जाती हैं क्योंकि छायावाद का अपना परिवेश भी है।

इस प्रकार छायावादी काव्य-समीक्षा के मूल्यांकन से स्पष्ट है कि छायावादी काव्य द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता के विरुद्ध प्रतिक्रिया है, स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह तथा अभिव्यंजना की एक शैली है। जीवन के स्वप्न तथा कुंठा इसके उपजीव्य हैं। अभिव्यक्ति के लिए छायावादी काव्य में प्रतीकों का आश्रय, बाह्य के स्थान पर आभ्यन्तरिक के प्रतिपादन का आग्रह, सौन्दर्य में आध्यात्मिक सत्ता का आभास जो दार्शनिक सर्वात्मवाद से ओत-प्रोत हैं, का आग्रह है, साथ ही, छायावादी काव्य पर ईसाई सन्तों के रहस्यवाद, बँगला, संस्कृत तथा अंग्रेजी की पदावली तथा रोमांटिक काव्य-शैली

का भी पर्याप्त प्रभाव है तथा छायावादी काव्य में इनका प्रयोग भी मिलता है।

स्वच्छन्दतावादी एवं छायावादी सम्बन्धी तर्क-वितर्क के साथ-साथ दोनों के मध्य एक तुलनात्मक रेखा खींचने का प्रयास अभी भी जारी है। यद्यपि **आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी** ने इस दिशा में अथक प्रयास कर स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद के पार्थक्य की ओर दृष्टि केंद्रित की। स्वच्छन्दतावादी चिंतन को छायावाद से इतर दशा में उन्मुक्त करने में आचार्य वाजपेयी का विशेष महत्त्वपूर्ण योगदान है। किन्तु, वहीं दूसरी ओर कुछ समीक्षक छायावाद को स्वच्छन्दतावाद का ही प्रतिरूप मान बैठे। छायावाद एवं स्वच्छन्दतावाद की मूल प्रवृत्तियों में पर्याप्त साम्य दृष्टिगोचर होने के कारण ही कुछ समीक्षकों ने स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद को एक ही समझ लिया है। स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद दोनों के मूल में सौन्दर्य-भावना, प्रकृति-प्रेम, राष्ट्र-प्रेम, मानवीय-चेतना, आत्माभिव्यंजना, विद्रोह-भावना, रहस्य-भावना, वैयक्तिकता, वैयक्तिक प्रेमानुभूति, देवकथा (मिथक), प्राचीन संस्कृति के प्रति मोह, प्रतीक-योजना, निराशा, पलायन, अहं के उदात्तीकरण और सृजन की अस्पष्टता आदि मूल प्रवृत्तियों के आधार पर दोनों साहित्यिक विधाओं में पर्याप्त साम्य दृष्टिगोचर होता है किन्तु केवल साहित्यिक प्रवृत्तियों के आधार पर किन्हीं दो विधाओं को 'एक-दूसरे' का साम्य घोषित नहीं किया जा सकता क्योंकि समस्त साहित्यिक प्रवृत्तियों के क्रियान्वयन के लिए तत्कालीन विशेष सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक पृष्ठभूमि का योगदान होता है और इसी पृष्ठभूमि में कोई भी प्रवृत्ति क्रियाशील साहित्यिक रूप लेती है तथा साहित्य परम्परा के अनुसार परिवर्तित होती रहती है। यदि इन काव्य-प्रवृत्तियों की समस्त परिस्थितियाँ एवं मान्यताएँ समान होती हैं तो साहित्यिक विधाओं में समानता स्वतः आ जाती है, जिससे दोनों समान प्रतीत होते हैं। किन्तु यदि परिस्थितियाँ विपरीत और वैषम्य लिये हुए हैं तो प्रवृत्ति-साम्य होते हुए भी साहित्य पर्याप्त वैषम्य लिये हुए होगा। स्वच्छन्दतावादी एवं छायावादी साहित्यिक विधाओं के आविर्भाव में भी यही सत्य निहित है। साहित्य समाज की ही उपज है और समाज को ही प्रतिबिम्बित भी करता है। साहित्य सदैव विकासशील रहता है किन्तु इसके विकास की गति सदैव एक सी न रहने के कारण साहित्य के उत्थान एवं पतन का क्रम भी सदैव चलता रहता है। अतः परिस्थितयाँ एवं मान्यताएँ सदैव साहित्यिक प्रवृत्तियों पर अपना प्रभाव डालती रहती हैं। वैसे भी साहित्य की सीमा असीम होती है। अतः साहित्य सदैव दूसरे साहित्य से भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। कभी-कभी यह पभाव साहित्य के अंश तक बन जाते हैं किन्तु इस आधार पर साहित्य में सब-कुछ विदेशी मान लेना, भ्रान्त धारणा के अतिरिक्त कुछ कहा नहीं जा सकता। यह सत्य है कि छायावाद में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती हैं किन्तु फिर भी छायावाद को स्वच्छन्दतावाद का प्रतिरूप नहीं कहा जा सकता। दोनों में बहिरंग परीक्षा के आधार पर पर्याप्त अन्तर दृष्टिगोचर होता है।

स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद की प्रेरक शक्तियों में भी पर्याप्त वैषम्य दिखायी पड़ता है। स्वच्छन्दतावाद की प्रमुख प्रेरक शक्तियों में फ्रांस की राज्यक्रान्ति के साथ-साथ जर्मनी की स्वच्छन्दतावादी विचारधारा, औद्योगिक क्रान्ति, तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियाँ तथा मध्यकालीन देवकथाओं आदि की भी चर्चा की जाती है वहीं दूसरी ओर छायावाद की प्रेरक शक्तियों में बँगला साहित्य, मध्यकालीन साहित्य, भारतीय एवं बौद्ध दर्शन, विवेकानन्द के विचार तथा तत्कालीन राजनीतिक एवं सामाजिक परिवेश के साथ-साथ अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद का भी प्रमुख हाथ रहा है।

छायावाद केवल स्वच्छन्दतावाद का प्रतिरूप या नकल अथवा मुखापेक्षी ही नहीं वरन् इसकी

अपनी अलग पृष्ठभूमि है, अलग परिवेश है। स्वच्छन्दतावादी कवि फ्रांस की राजक्रान्ति के प्रत्यक्षदर्शी थे जिसके कारण उनके मानवतावादी विचार अत्यन्त स्पष्ट एवं क्रांतिकारी थे। वह वैचारिक क्रांति में अधिक उत्तेजना पैदा कर सके थे क्योंकि फ्रांस की राज्यक्रान्ति शस्त्रीय प्रतिक्रिया थी। इसके विपरीत भारतीय सत्याग्रह एवं स्वाधीनता आन्दोलन पूर्णतया निःशस्त्र एवं अहिंसात्मक था तथा सामान्य जनता इसकी सफलता पर शंकित भी थी। अतः छायावादी कवि अपने काव्यों में वैचारिक क्रांति न उगल सके, वह उत्तेजना पैदा न हो सकी जो स्वच्छन्दतावादी काव्य में प्रमुख है।

छायावाद एवं स्वच्छन्दतावाद के मध्य एक भेद है– कालगत एवं स्थानगत वैषम्य। दोनों ही साहित्यिक विधाएँ अलग काल एवं अलग-अलग स्थान की उपज हैं। स्वच्छन्दतावाद यूरोप की उपज है और छायावाद का पल्लवन भारतवर्ष में हुआ है तथा दोनों में भेद अत्यन्त स्वाभाविक है।

सामान्य मान्यताओं के होते हुए भी दोनों साहित्यिक विधाओं में वैचारिक दृष्टिकोण पर्याप्त वैषम्य लिये हुए हैं। क्योंकि वैचारिक दृष्टिकोण की निर्णायक तत्कालीन परिस्थितियाँ तथा संस्कृति होती है। अतः समान मान्यताओं के होते हुए भी स्वच्छन्दतावादी कवि 'कामायनी' की रचना करने में तथा छायावादी कवि 'एंडिमियन' की रचना करने में सर्वथा असमर्थ रहे।

'कल्पना' सभी कवियों में व्यक्तिगत एवं भिन्न होती है। अतः एक ही विषय पर भिन्न कल्पना के कारण भिन्न काव्यों का सृजन होता है। छायावादी काव्य में 'कल्पना' चाहे वह स्वच्छन्दतावाद से प्रभावित ही क्यों न हो, उक्त काव्य के कवियों की वैयक्तिकता एवं प्रतिभा के अनुकूल परिवर्तित होकर ही अभिव्यक्ति हुई है। छायावादी कवि 'कल्पना' को केवल ग्रहण ही नहीं वरन् उसके अनुकरण की भी प्रेरणा देते हैं, जबकि 'कल्पना' स्वच्छन्दतावादी साहित्य का प्राण व साहित्यिक आवश्यकता है।

स्वच्छन्दतावाद एवं छायावादी कवियों के मध्य बड़ी भिन्नता यह है कि स्वच्छन्दतावादी कवि, कवि होने के साथ विवेचक एवं समीक्षक भी थे किन्तु छायावादी कवि, कवि पहले और अधिक थे, विवेचक अथवा समीक्षक कम।

छायावादी एवं स्वच्छन्दतावादी काव्यों में शैलीगत समानता दिखायी पड़ती है किन्तु दोनों काव्यों के वैचारिक भिन्नता के कारण दोनों की सत्ता अलग दिखायी पड़ती है और इसी बिन्दु पर दोनों साहित्यिक विधाओं के कवि अलग-अलग व अत्यधिक दूर दिखायी पड़ते हैं।

छायावादी काव्य में भारतीय दर्शन की छाप स्पष्टतः दृष्टिगोचर होती है किन्तु इस प्रकार की दार्शनिकता का स्वच्छन्दतावादी काव्य में सर्वथा अभाव है। **वर्ड्सवर्थ** के विचार इस ओर उन्मुख भी हुए किन्तु भारतीय दार्शनिकता की ऊँचाइयों को प्राप्त न कर सके।

छायावादी काव्य की भाषा अलंकृत, क्लिष्ट तथा जनजीवन से दूर थी जबकि स्वच्छन्दतावादी कवियों ने सरल, सहज तथा साधारण जन-जीवन की भाषा को अपनी अभिव्यक्ति की भाषा बनायी थी। अतः यदि छायावादी काव्य जन-जीवन से दूर का काव्य है तो स्वच्छन्दतावादी काव्य साधारण

जन-जीवन का पर्याय है।

छायावादी काव्य में सत्यं, शिवं, सुन्दरम् के दर्शन होते हैं, जबकि स्वच्छन्दतावादी काव्य में सौन्दर्य को सत्य और सत्य को ही सुन्दर मानकर, दोनों का अभेद सिद्ध कर, सत्यं, शिवम् तथा सुन्दरम् के संयम के हीं दर्शन होते हैं। स्वच्छन्दतावादी कवि जगत् में केवल सत्य और सुन्दर को ही जानता है जबकि छायावादी कवि सुन्दर और सत्य को शिव से मिलाकर जीवन की पूर्णता प्राप्त करना चाहता है।

छायावादी काव्य में नारी की दयनीय दशा, नारी-जागरण एवं नारी समस्याओं के आकलन का चित्रण प्रचुर मात्रा में हुआ है, जबकि स्वच्छन्दंतावादी काव्य में इसका सर्वथा अभाव है।

छायावादी काव्यों में राष्ट्रीय अभिव्यंजना में राष्ट्रीय जागरण, भारतीय अखण्डता तथा सांस्कृतिक उद्‌बोधन की अभिव्यक्ति छायावादी राष्ट्रीयता के मुख्य प्रिय स्वर हैं किन्तु अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद में यह वर्णन अत्यन्त दुर्लभ है।

स्वच्छन्दतावादी काव्य सर्वात्मवाद तथा रहस्यवाद से मण्डित है जबकि छायावादी काव्य न केवल रहस्यवाद वरन् उपनिषदों, वेदान्त, बौद्ध-दर्शन, शैवागम तथा सूफीवाद आदि दार्शनिक विचारों से केवल प्रभावित ही नहीं अपितु ये विचार छायावादी काव्य का मूल हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वच्छन्दतावादी काव्यों में केवल स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों को स्थान मिला है जबकि छायावादी काव्य में काव्य-प्रवृत्तियों के साथ पुरातनवादी काव्य-प्रवृत्तियाँ भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। इस प्रकार एक बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रत्येक छायावादी काव्य स्वच्छन्दतावादी हो सकता है किन्तु प्रत्येक स्वच्छन्दतावादी काव्य छायावादी नहीं हो सकता। छायावाद में स्वच्छन्दतावाद की सम्पूर्ण प्रवृत्तियाँ विद्यमान होने के बाद भी छायावाद स्वच्छन्दतावादी काव्य नहीं है।

छायावाद केवल काव्य तक ही सीमित है जबकि स्वच्छन्दतावाद ने साहित्य की अन्य विधाओं तक भी अपनी पहुँच बना ली है।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि छायावाद एवं स्वच्छन्दतावाद भी एक-दूसरे के प्रतिरूप नहीं हैं। छायावाद में अनेक ऐसी प्रवृत्तियाँ विद्यमान हैं जो स्वच्छन्दतावाद में नहीं हैं क्योंकि छायावाद अंग्रेजी स्वच्छन्दतावाद के करीब एक सौ वर्ष बाद आया है। इसमें यूरोप के स्वच्छन्दतावादी दौर के पश्चात् के सभी साहित्यिक आन्दोलनों के अतिरिक्त भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं परिवेश से प्रसूत प्रवृत्तियों का भी समावेश है और यही इसकी अपनी सत्ता है तथा स्वयं का अपना परिवेश भी है। छायावाद हिन्दी बोधक है, जबकि स्वच्छन्दतावाद अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अत्यधिक स्थायी, मानवीय तथा साहित्यिक प्रवृत्ति का बोध है जो विभिन्न देश के काव्यों में अपना स्थान बना बैठा।

इस प्रकार 19वीं शताब्दी से लेकर आज तक स्वच्छन्दतावाद निरन्तर अपने विकास की ओर अग्रसर है। स्वच्छन्दतावाद ने अपने विकास-मार्ग में अनेक पड़ाव डाले जो हिन्दी साहित्य-समीक्षा-संसार में मील के पत्थर साबित हुए और स्वच्छन्दतावादी समीक्षा संसार के लिए नये आयाम।

हिन्दी-समीक्षा-संसार के समीक्षकों ने स्वच्छन्दतावाद को अपने गहन चिन्तन के द्वारा विभिन्न दृष्टिकोणों से विश्लेषित कर उसे विभिन्न आयाम दिये और उसके विकास को सुनिश्चित किया।

सर्वप्रथम **आचार्य रामचंद्र शुक्ल** ने अंग्रेजी के रोमांटिसिज़्म को हिन्दी में स्वच्छन्दतावाद के नाम से पुकारा तथा इसी क्रम में छायावाद को स्वच्छन्दतावाद की एक विकसित शैली के रूप में विश्लेषित किया। **आचार्य शुक्ल** के प्रयासों के फलस्वरूप ही हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास का आरम्भ होता है। **आचार्य शुक्ल** ने सर्वप्रथम छायावाद और स्वच्छन्दतावाद के पार्थक्य की ओर दृष्टि केंद्रित की थी।

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने यद्यपि स्वच्छन्दतावाद को विश्लेषित करने के लिए कोई पुस्तक नही लिखी किन्तु **डॉ० देवराज उपाध्याय** की पुस्तक **'रोमांटिक साहित्य-शास्त्र'** की भूमिका के लिए उनका लेख हिन्दी स्वच्छन्दतावादी चेतना की आत्मा है। **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी** ने इस लेख के माध्यम से 'रोमांटिसिज़्म' को स्वच्छन्दतावाद कहने में आपत्ति की है किन्तु विकल्प में अन्य शब्द सुझाने में असमर्थ भी रहे, वहीं दूसरी ओर 'स्वच्छन्दतावाद' को रोमांटिक साहित्य के नाम से अभिहित करने से चूके भी नहीं। उन्होंने स्वच्छन्दतावाद को अपने युग की सम्पूर्ण चेतना और विचार संघर्ष की कलात्मक अभिव्यक्ति बताकर स्वच्छन्दतावाद की वैश्विक अवधारणा के रूप में विश्लेषित किया है। वह स्वच्छन्दतावाद को पुराने विचारों का नया नामान्तर न मानकर उसका अन्य वादों से समविरोधी रूप ही विश्लेषित करते हैं। **डॉ० द्विवेदी** ने रोमांटिसिज़्म में 'कल्पना' एवं 'आवेग' दोनों को आवश्यक माना है। किसी भी एक की अनुपस्थिति में कविता रोमांटिक कविता का रूप नहीं ले सकती।

डॉ० देवराज उपाध्याय ने हिन्दी में स्वच्छन्दतावादी आलोचना पर पुस्तक लिखकर हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास में अनन्य योगदान दिया है। इसी पुस्तक की भूमिका में **डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी** का लेख हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास में मील का पत्थर है।

डॉ० देवराज उपाध्याय ने हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा को एक नये आयाम पर विश्लेषित कर हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के लिए नवीन भूमि तैयार की। उन्होंने हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा को मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में, मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्तों को केंद्र में रखकर अपने चिंतन से सींचा था। हिन्दी स्वच्छन्दतावादी समीक्षा को एक नया आयाम देने के कारण हिन्दी स्वच्छन्दतावादी मनोविश्लेषणात्मक समीक्षक के रूप में आपका नाम हिन्दी-समीक्षा-संसार में अग्रणीय रहेगा।

हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास में स्वच्छन्दतावादी सौष्ठववादी समीक्षक **आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी** का विशेष महत्व है। **आचार्य वाजपेयी** ने **आधुनिक साहित्य** तथा **आधुनिक काव्य : रचना और विचार** के माध्यम से स्वच्छन्दतावाद को एक विशिष्ट आयाम दिया है। स्वच्छन्दतावाद को उन्होंने स्वच्छन्द काव्यधारा या स्वच्छन्दतावाद के ही नाम से पुकारा तथा उसे छायावाद से इतर (भिन्न) दिशा की ओर उन्मुख कर विश्लेषित भी किया। **आचार्य वाजपेयी** ने सागर विश्वविद्यालय में स्वच्छन्दतावादी अवधारणा को लेकर काव्य, कथा-साहित्य, उपन्यास तथा हिन्दी नाटकों में स्वच्छन्दतावादी दृष्टि से शोध की विभिन्न दिशाओं में स्वच्छन्दतावादी समीक्षा का मार्ग प्रशस्त किया

तथा उपरोक्त विधाओं में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों का अनुशीलन-विश्लेषण शोधपरक दृष्टि से हिन्दी में सबसे अधिक किया और करवाया। उन्होंने स्वच्छन्दतावाद को एक स्वच्छन्द काव्यधारा माना है, किसी अन्य धारा का प्रतिरूप एवं प्रतिबिम्बित रूप नहीं। इस प्रकार **आचार्य वाजपेयी** ने स्वच्छन्दतावाद को छायावाद से भिन्न दशा में विश्लेषित करके स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास में एक और कड़ी जोड़ी है।

वर्तमान आधुनिक समीक्षकों में **डॉ० नामवर सिंह** का नाम गर्व से लिया जा सकता है। **डॉ० सिंह** ने स्वच्छन्दतावाद को अन्तर्राष्ट्रीय अवधारणा के रूप में विश्लेषित कर एक नूतन और गौरवपूर्ण आयाम दियां। उन्होंने 'रोमांटिसिज़्म' के बहुवचन 'रोमांटिसिज़्म्स के प्रयोग को अधिक सार्थक बताया है क्योंकि केवल एक रोमांटिसिज़्म कभी था ही नहीं। **पन्त, निराला, प्रसाद** तथा **महादेवी वर्मा** कोई भी समान नहीं वरन् वैचारिक दुनिया में एक-दूसरे से नितान्त भिन्न हैं, अतः इनका रोमांटिसिज़्म भी नितान्त भिन्न है। **समीक्षा ठाकुर** के संकलन एवं सम्पादन **'एक दशक की बातचीत' : नामवर सिंह के साथ 'कहना न होगा'** में **डॉ० सिंह** के उक्त विचारों का उल्लेख मिलता है।

डॉ० नामवर सिंह ने अपनी पुस्तक **'कविता के नये प्रतिमान'** **मुक्तिबोध** की कविता **'अँ धे रे'** के संदर्भ में क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद का आह्वान किया है। इसी क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद को **गोर्की** ने समाजवादी यथार्थवाद के संदर्भ में तथा **डॉ० अजब सिंह** ने 'नवस्वच्छन्दतावाद' की एक प्रवृत्ति के रूप में प्रतिष्ठापित किया था। **डॉ० नामवर सिंह** ने छायावाद तथा स्वच्छन्दतावाद को एक दूसरे से नितान्त भिन्न बताया। उन्होंने स्वच्छन्दतावाद को अन्तर्राष्ट्रीय अवधारणा बताकर, इसके बहुवचन रूप को सार्थकता प्रदान किया तथा स्वच्छन्दतावाद को छायावाद से भिन्न बताकर स्वच्छन्दतावाद का एक व्यापक, विस्तृत एवं गौरवपूर्ण विकास सुनिश्चित कर क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद के रूप में नूतन आयाम प्रदान किया है।

स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के विकास को नूतन आयाम प्रदान करने का श्रेय अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के **प्रोफेसर अजब सिंह** को हैं, जिन्होंने **आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी** की परम्परा में स्वच्छन्दतावाद और छायावाद को व्यापक फलक पर विश्लेषित कर उसके नूतन आयाम को सुनिश्चित किया।

आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, स्वच्छन्दतावाद : छायावाद तथा नवस्वच्छन्दतावाद के माध्यम से **प्रोफेसर अजब सिंह** ने हिन्दी में **आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी** की परम्परा छायावाद और स्वच्छन्दतावाद में किंचित वैभिन्य तथा पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों के चिंतन के आधार पर स्वच्छन्दतावादी चिंतन को अद्यतन रूप में मूल्यांकित किया है। उनका विचार है कि स्वच्छन्दतावादी चिंतन-जीवन में परम्परा और रूढ़ियों से मुक्ति का संदेश देता है और यही काव्य की मोह चेतना भी है अतः स्वच्छन्दतावादी चिंतन परम्पराओं और रूढ़ियों से हटकर एक नवीन चिन्तन की रचना है। अंग्रेजी के रोमांटिक आन्दोलन से प्रेरणा लेकर विशुद्ध भारतीय सामाजिक एवं राजनीतिक परिवेश में इसकी प्रस्तुति होती है। यह काव्य का एक प्रकार नहीं वरन् काव्य की प्रवृत्तियाँ हैं।

स्वच्छन्दतावाद : छायावाद के माध्यम से स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद की अनेक भ्रांतियों का निराकरण **डॉ० अजब सिंह** ने किया है। दोनों विधाओं के मध्य एक विभाजक रेखा खींचकर उसे एक-दूसरे से पृथक् रूप में देखने व विश्लेषित करने की प्रवृत्ति को बल देकर आप ने **आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी** की समीक्षा-पद्धति को आगे बढ़ाया है।

आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ के माध्यम से **डॉ० अजब सिंह** ने स्वच्छन्दतावादी काव्य-विश्लेषण प्रस्तुत किया है तथा स्वच्छन्दतावाद को काव्य का प्रकार ही नहीं वरन् काव्य का तत्त्व बताकर उसे शाश्वत प्रवृत्ति का कहा है जो किसी भी देश या काल के साहित्य में अभिव्यक्ति को प्राप्त होती है। स्वच्छन्दतावाद की मूल चेतना क्रांति की भावना में निहित होती है तथा राष्ट्रीय चेतना को क्रांति की भावना से बल व नयी दिशा प्राप्त होती है। **'नवस्वच्छन्दतावाद'** ग्रन्थ के माध्यम से **डॉ० सिंह** स्वच्छन्दतावाद के साथ यथार्थवाद का समन्वय कर मार्क्सवादी दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में स्वच्छन्दतावादी अवधारणा को व्यापक फलक पर विश्लेषित कर स्वच्छन्दतावादी समीक्षा को विकसित कर उसे एक नवीन क्षितिज की ओर अग्रसर कर हिन्दी समीक्षा के महत्त्व को उच्चता की ओर ले गये। हिन्दी-समीक्षा के स्वच्छन्दतावादी चिंतन के इस सूत्र ने स्वच्छन्दतावाद को अन्तर्राष्ट्रीय गौरव प्रदान किया है। **प्रोफेसर सिंह** ने स्वच्छन्दतावाद के इस नूतन विकसित रूप को 'नवस्वच्छन्दतावाद' का नाम दिया। स्वच्छन्दतावाद अपने उत्कर्ष पर पहुँचकर जब दूसरी दिशा की ओर उन्मुख होता है तो वह यथार्थवाद के साथ मैत्रीभाव से नया रूप लेता है। उनके अनुसार यही नूतन प्रवृत्ति स्वच्छन्दतावाद को नवस्वच्छन्दतावाद के रूप में परिवर्तित कर देती है। अतः स्वच्छन्दतावाद एवं यथार्थवाद का समन्वित रूप ही 'नवस्वच्छन्दतावाद' के रूप में उभरता है। इसमें कवि की चेतना फैंटेसी एवं सक्रिय कल्पना के साथ जुड़कर अभिव्यंजना करती है जो इसकी विशेष पहचान है। वास्तव में नवस्वच्छन्दतावाद सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में यथार्थवादी धरातल पर मानवीय अनुभूतियों की अभिव्यंजना करता है। उन्होंने नवस्वच्छन्दतावाद को स्वच्छन्दतावाद के आधुनिक यथार्थवादी बोध से समन्वित एक नये रूप में ग्रहण किया है। इस संदर्भ में **डॉ० अजब सिंह** ने **युंग, लुकाच, अर्न्स्टफिशर** तथा **माइकेल** की नयी समाजवादी दृष्टि तथा भारतीय ऐतिहासिकता के माध्यम से हिन्दी कविता के बदलते प्रतिमानों को ध्यान में रख, **युंग** के सामूहिक अचेतन के विस्तार का सहारा लेते हुए स्वच्छन्दतावाद का सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक स्वरूप निर्धारित किया है।

डॉ० अजब सिंह ने नवस्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियों को सामाजिक, मार्क्सवादी तथा मनोवैज्ञानिक संदर्भों में विश्लेषित किया है। नवस्वच्छन्दतावाद के सामाजिक संदर्भ के अन्तर्गत हिन्दी की नवस्वच्छन्दतावादी कविता के सामाजिक एवं राजनीतिक संदर्भ का विस्तार से उल्लेख मिलता है, जिसमें कल्पना तथा यथार्थ, अनुभूति तथा परिवेश, वैयक्तिकता तथा सामाजिकता, विद्रोह तथा क्रांति, आधुनिकता तथा रोमांटिक आयरनी, यथार्थवाद तथा सामाजिक यथार्थवाद, मानववाद तथा नवमानववाद आदि प्रवृत्तियों की कलात्मक चेतना की अभिव्यंजना है। मार्क्सवादी संदर्भ में कविता आधुनिकता की ओर अग्रसर होती है। नवस्वच्छन्दतावाद का सामाजिक धरातल वास्तव में इनका मार्क्सवादी संदर्भ है। नवस्वच्छन्दतावादी मार्क्सवाद का मूल सम्पूर्ण क्रांति है जो एक नूतन व्यवस्था की अपेक्षा रखती है तथा सम्पूर्ण परिवर्तन की कामना करती है। सम्पूर्ण क्रांति नवस्वच्छन्दतावाद में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है और कल्पना को यथार्थवाद में, अनुभूति को परिवेश में, वैयक्तिकता को सामाजिकता में, विद्रोह को क्रांति में, आधुनिकता को रोमांटिक आयरनी में यथार्थवाद को सामाजिक

यथार्थवाद में तथा मानववाद को नवमानववाद में परिवर्तित कर देती है।

नवस्वच्छन्दतावादी कविता के मनोवैज्ञानिक संदर्भ में **डॉ० अजब सिंह** ने इदम्, अहम्, अति अहम्, चेतन, अचेतन और अर्द्धचेतन जैसी मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म क्रियाओं के प्रभावों का विश्लेषण **फ्रायड, युंग** तथा **एडलर** की मान्यताओं के परिप्रेक्ष्य में नवस्वच्छन्दतावादी काव्य-प्रवृत्तियों के रूप में किया है। नवस्वच्छन्दतावाद काव्य-सर्जना को इड, इगो तथा सुपर इगो के परिप्रेक्ष्य में चेतन, अर्धचेतन तथा अचेतन तीनों स्तरों पर मनोवैज्ञानिक संदर्भ में इस प्रकार विश्लेषित कर सकते हैं। क्रमशः ....

उपर्युक्त रेखाचित्र के माध्यम से नवस्वच्छन्दतावादी काव्यसर्जना में मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्तों का योगदान स्पष्ट होता है। मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्तों के परिप्रेक्ष्य में जीवनमूलक-प्रवृत्ति एवं मृत्युमूलक प्रवृत्ति, इड में उत्पन्न रोमांटिकता, इगो, क्लासिकल एवं सक्रिय कल्पना का योग, सुपर इगो, सामाजिकता, नैतिकता तथा सांस्कृतिक मूल्य, देशकाल, वातावरण तथा यथार्थ, व्यक्तिगत एवं सामूहिक अचेतन सभी कलाकार अथवा स्रष्टा के व्यक्तित्व को चेतन, अर्धचेतन तथा अचेतन तीनों स्तरों पर प्रभावित कर मानसिक व्यापार में संलग्न होते हैं तथा कलाकार अथवा स्रष्टा के कार्य एवं व्यवहार का संचालन और दिशा निर्धारित करते हैं । इस प्रकार स्रष्टा के व्यक्तित्व के माध्यम से जो कार्य एवं व्यवहार वातावरण में सम्पादित होता है वह साहित्य जगत् में 'नवस्वच्छन्दतावाद' का रूप लेता है।

नवस्वच्छन्दतावाद की शिल्पगत प्रवृत्तियों के रूप में **डॉ० अजब सिंह** ने भाषा, बिम्ब, प्रतीक, मिथक एवं प्रगीतात्मक काव्य-प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। ये शिल्प तत्त्व कवि की आत्मिक अनुभूति एवं व्यक्तित्व से सिक्त होकर काव्य में प्रकट होते हैं। अतः यह सभी शिल्पगत विशिष्टताएँ नवस्वच्छन्दतावादी कवियों की आन्तरिकता तथा नितान्त आत्मीय प्रक्रियाओं को मूर्तमान करती हैं। कवि अपनी चेतना के अनुसार मिथक, फैंटेसी, बिम्ब, प्रतीक एवं प्रगीतात्मकता के द्वारा समकालीन जीवनबोध की यथार्थता से सम्पृक्त हो सक्रिय कल्पना और सामूहिक अचेतन के सहयोग से जब अपने विचारों की अभिव्यंजना करता है तो वास्तव में 'नवस्वच्छन्दतावादी' काव्य का ही सृजन करता है।

स्वच्छन्दतावादी दौर के पश्चात् आधुनिक कविता ने अपना रूप-विस्तार किया है और उसमें परिवर्तन व अन्तर भी पैदा हुए। वास्तव में वह छायावादोत्तर कविता का नवीन पड़ाव और स्वच्छन्दतावादी कविता का नवीन आयाम है, साथ ही, यह एक नयी चेतना की उद्घोषणा भी है। आधुनिक हिन्दी कविता 1938 के आसपास नूतनता एवं व्यापकता ग्रहण करती है और यथार्थ की प्रशस्त भूमि पर पदार्पण करती है। अनेक आन्दोलनों से सम्बन्धित अभिव्यक्तियाँ भी इस कविता में क्रान्तिकारी रूप लिये विद्यमान हैं, क्योंकि इन्हीं आन्दोलनों ने कवियों को प्रेरणा दी थी। सामाजिक चेतना की यह क्रान्तिकारी अभिव्यंजना थी। ऐतिहासिकता के कारण आधुनिकता के नूतन संदर्भों का आरम्भ हो चुका था। आधुनिकता के पाश्चात्य एवं साम्यवादी दो संदर्भ अपनाये भी गये क्योंकि यह परम्परा-विरोधी थे। साम्यवादी आधुनिकता में निचले, गरीब, मध्यवर्ग से सम्बन्धित मिथकों का प्रयोग, क्रान्ति की दृष्टि, परम्परा एवं रूढ़ियों से विद्रोह था। यहीं से साम्यवादी आधुनिकता में एक नयी प्रवृत्ति उभरती है। इसे हम 'नवस्वच्छन्दतावादी' मोड़ कह सकते हैं। इस प्रकार नवस्वच्छन्दतावाद आधुनिकता की चुनौती के परिणामस्वरूप आया, यह कविता का नया विस्तार है और स्वच्छन्दतावादी कविता के प्रति प्रतिक्रिया का परिणाम है। इस प्रकार नवीन धरातल पर युगसापेक्ष की अभिव्यंजना ही नवस्वच्छन्दतावाद है। नवस्वच्छन्दतावाद स्वच्छन्दतावाद का क्षय नहीं वरन् व्यापक विस्तार है। स्वच्छन्दतावाद में 'नव' जोड़ने से स्वच्छन्दतावाद को व्यापक विस्तार मिलता है और नवस्वच्छन्दतावाद अपने में पूर्ण युगसापेक्षता की चेतन अभिव्यक्ति बन जाता है।

स्वच्छन्दतावाद के परम्परागत होने के बाद भी स्वच्छन्दतावादी चेतना पूर्णतया समाप्त नहीं हुई वरन् युगसापेक्षता के संस्पर्श में आकर अपना रूप सँवारती हुई यथार्थ से मिलती हुई नये रूप में स्वयं को अभिव्यक्त कर अपने रूप का विस्तार करती है। वस्तुतः नयी कविता स्वच्छन्दतावाद का विस्तार है और नवस्वच्छन्दतावाद नयी कविता का भी अत्यन्त विस्तृत रूप है। प्रयोगवाद को नयी कविता

के नाम से अभिहित किया जाता है। उसी के अनुसार 'नवस्वच्छन्दतावाद' का विकास हुआ।

इस प्रकार नयी कविता को **नवस्वच्छन्दतावाद, नवयथार्थवाद, नवरोमनवाद** आदि नामों से अभिहित किया जाता है। यह सब नाम पाश्चात्य किन्तु रूप भारतीय हैं। **डॉ० बच्चन सिंह** ने छायावादोत्तर काव्य-प्रवृत्तियों अर्थात् नवस्वच्छन्दतावाद को 'उत्तर-स्वच्छन्दतावाद' के रूप में स्वीकार किया है जबकि **इन्द्रनाथ मदान** ने 'उत्तर छायावाद' की संज्ञा दी है किन्तु 'उत्तर छायावाद' क्षयी स्वच्छन्दतावाद के रूप में जाना जाता है। **डॉ० नामवर सिंह** तथा **आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी** ने स्वच्छन्दतावाद के विकसित रूप को 'नवस्वच्छन्दतावाद' ही कहा है।

डॉ० अजब सिंह ने छायावादोत्तर समस्त प्रवृत्तियों को 'नवस्वच्छन्दतावाद' के नाम से ही अभिहित किया है क्योंकि व्यक्तिपरक काव्य, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, नयी कविता, साठोत्तरी कविता, अकविता और अत्याधुनिक कविता सभी स्वच्छन्दतावादी काव्य के विकसित आयाम हैं और इन सभी काव्य-प्रवृत्तियों को **डॉ० सिंह** ने केवल एक 'नवस्वच्छन्दतावाद' के नाम से सम्बोधित किया है।

वस्तुतः 'नवस्वच्छन्दतावाद' नयी कविता के विस्तृत रूप स्वच्छन्दतावाद का विस्तार है। कविता को आधुनिकता एवं समसामयिकता की संज्ञाओं से अभिहित किया गया है। नयी कविता जब व्यापक फलक पर अपने पाँव पसारती है तो आधुनिकता के धरातल पर यथार्थ की सीढ़ी लगा वह अपने आपको और अधिक प्रौढ़ तथा समृद्धिशाली बनाती हुई नवस्वच्छन्दतावादी कविता के रूप में उभरती है, परिणत होती है। इस प्रकार स्वच्छन्दतावादी यथार्थवादी आधुनिकता के फलस्वरूप स्वच्छन्दतावाद का नया विस्तार होता है- नवस्वच्छन्दतावाद के रूप में। स्वच्छन्दतावादी काव्य आधुनिकता की सारी प्रक्रियाओं का समावेश अपने में नहीं कर सका, जिसके फलस्वरूप आधुनिक हिन्दी कविता का सामाजिक परिवेश से टकराव हो गया और यही यथार्थ की स्थिति है क्योंकि आधुनिक हिन्दी कविता वैज्ञानिक आविष्कारों के फलस्वरूप सामाजिक परिवेश से प्रभाव ग्रहण कर यथार्थवादी चेतना से जा मिलती है। इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद के कलात्मक समन्वित रूपायन से 'नवस्वच्छन्दतावाद' उभरता है। स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद जब कल्पना के सम्पर्क में आता है तो यथार्थ भावात्मक रूप लेता है और कवि की भावना से जुड़ जाता है तो यही वास्तव में 'नवस्वच्छन्दतावाद' की स्थिति होती है। स्वच्छन्दतावाद, यथार्थवादी चेतना और सक्रिय कल्पना का समन्वित रूप और सामूहिक अचेतन जब एक साथ जुड़ जाता है तो वह स्वच्छन्दतावादी चेतना का रूप परिवर्तित कर देता है। स्वच्छन्दतावादी चेतना का यह परिवर्तित एवं विकसित रूप नवस्वच्छन्दतावाद कहलाता है। स्वच्छन्दतावाद यथार्थवाद की सम्पूर्ण परिधि को नहीं घेरता और न ही उसका समग्र रूप से विरोध करता है। वह तो केवल यथार्थवाद को अपने में समाहित कर उसका एक नूतन विशिष्ट रूप निखारता है। नवस्वच्छन्दतावाद जीवन से पलायन एवं कल्पना-लोक में परिभ्रमण को अस्वीकार कर देता है क्योंकि नवस्वच्छन्दतावाद एक विशेष प्रकार के यथार्थ को स्वयं में समाहित कर लेता है। इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद के सहज समन्वित एवं एकत्रित रूप का नाम नवस्वच्छन्दतावाद है।

नवस्वच्छन्दतावादी साहित्य में यथार्थवाद अनेक रूप लेकर स्वच्छन्दतावादी साहित्यक परिवेश से जुड़ता है। आलोचनात्मक यथार्थवाद के रूप में वह समसामयिक युग के अन्तः एवं बाह्य परिवेश की सामाजिक व्यवस्था का प्रस्तुतीकरण तथा जीवन की वास्तविकता का अंकन पूरी ईमानदारी,

जीवन्तता एवं प्राणवत्ता से करता है। यह क्रान्तिकारी यथार्थवाद का स्रष्टा है। समाजवादी यथार्थवाद के रूप में यह चिन्तन यथार्थ जीवन का समाजवादी दृष्टि से मूल्यांकन करता है। मानव जिसके काएँ कल्याण के संघर्ष का यथार्थ अंकन करते हुए नवसमाजवादी मानव का सृजन करता है इसका सम्बन्ध नवस्वच्छन्दतावादी साहित्यिक चेतना से जुड़ जाता है। यही इसका क्रांतिकारी रूप है। किसी भी साहित्यिक रचना को उत्कृष्टता प्रदान करने के लिए आलोचनात्मक तथा समाजवादी यथार्थता का सहज समन्वय अत्यन्त अपेक्षित है। आलोचनात्मक तथा समाजवादी अथवा क्रांतिकारी यथार्थवाद के साथ जब स्वच्छन्दतावाद का समन्वय 'सक्रिय कल्पना' के साथ होता है तो स्वच्छन्दतावाद का एक नूतन विकास होता है क्योंकि क्रांतिकारी यथार्थवाद सदैव रचनात्मक होता है जो स्वच्छन्दतावाद एवं यथार्थवाद के साथ मिलकर 'नवस्वच्छन्दतावाद' बन जाता है। समाजवादी यथार्थवाद स्वच्छन्दतावाद का ही अंग है। स्वच्छन्दतावाद के बिना समाजवादी यथार्थवाद की कल्पना नहीं की जा सकती। अतः स्वच्छन्दतावाद और तत्पश्चात् स्वच्छन्दतावाद के नवीन विकास 'नवस्वच्छन्दतावाद' में यथार्थ विशेषकर समाजवादी यथार्थ व क्रान्तिकारी स्वच्छन्दतावाद प्रमुख प्रवृत्तियों के रूप में उभरता है। संस्कृति को एक नया आयाम देने के लिए स्वच्छन्दतावाद एवं यथार्थवाद का मिलन होता है तथा इनके मिलन से मार्क्सवादी संदर्भ में स्वच्छन्दतावादी चेतना का विकास होता है। इस प्रकार युगसापेक्षता में स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति एक नूतन रूप में परिवर्तित होती है और यथार्थ के कारण इसकी पहचान नवस्वच्छन्दतावादी हो जाती है। कवि जीवन की अनुभूतियों की व्यंजना करते समय सामाजिक व्यवस्था पर कुछ व्यंग्य भी करता है, जिसकी अभिव्यंजना वह रोमांटिक आयरनी द्वारा करता है। इस प्रकार नवस्वच्छन्दतावादी चेतना आधुनिकता को रोमांटिक आयरनी में परिवर्तित कर देता है। इस प्रकार प्रत्येक मनुष्य का मनोवैज्ञानिक पहलू उसके सामाजिक धरातल को आलोकित करता है। यही मार्क्सवादी कलात्मक चिंतन है, जो नवस्वच्छन्दतावाद का सामाजिक परिप्रेक्ष्य है। स्वच्छन्दतावाद अपने विकास की स्थिति में मनोवैज्ञानिक तथा यथार्थवादी संदर्भ में नवस्वच्छन्दतावाद का रूप धारण कर लेता है।

रोमांटिक भावनाओं के साथ यथार्थ के मिलन से कवि मन में नवीन भाव उत्पन्न होंगे। यही नवस्वच्छंदतावादी काव्य की रूप सृष्टि है। अतः यह स्पष्ट है कि स्वच्छन्दतावादी और यथार्थवादी चेतना के समन्वय और सीमा-विस्तार से ही नवस्वच्छन्दतावादी चेतना का जन्म होता है। यह चेतना साहित्य में भावजगत् और बाह्य जगत् में कोई अन्तर्विरोध नहीं रखती। भाव-जगत् और बाह्य जगत् के समन्वय से ही यथार्थ का विकास होता है और जहाँ से यथार्थ का विकास होता है, वहीं से नवस्वच्छन्दतावादी कला चेतना का विकास होता है। अतः स्वच्छन्दतावादी साहित्यकार यथार्थवादी और यथार्थवादी लेखक स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्ति का होता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वच्छन्दतावादी समीक्षा का क्रमिक विकास हुआ है। सर्वप्रथम, पूर्व-स्वच्छन्दतावाद, स्वच्छन्दतावादी तत्पश्चात् नवस्वच्छन्दतावादी, जिसे क्रांतिकारी स्वच्छन्दतावाद का नाम दिया **डॉ० नामवर सिंह** ने और विस्तृत फलक पर विश्लेषित किया **डॉ० अजब सिंह** ने।

अतः निष्कर्ष रूप में विस्थापित किया जा सकता है कि स्वच्छन्दतावाद का विकसित नूतन रूप नवस्वच्छन्दतावाद है। हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के क्रमिक विकास के रूप में 'नवस्वच्छन्दतावाद' का स्वरूप बनता है।

किन्तु, आज स्वच्छन्दतावादी चिन्तन निरन्तर आगे की ओर अग्रसर है। स्वच्छन्दतावाद में

यथार्थवाद के समन्वय से 'नवस्वच्छन्दतावाद' विकसित होता है। किन्तु, आज नवस्वच्छन्दतावाद भी स्वयं में नये संदर्भों एवं नवीन मूल्यों का अधिग्रहण कर रहा है। मानववाद की नूतन व्याख्या ने मानव को अखण्ड मानव-रूप प्रदान किया जिसने यथार्थवाद के पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता के कारण यथार्थवाद की 'रचनात्मक क्रांतिकारी यथार्थवाद' के रूप में नूतन व्याख्या प्रस्तुत की। मानव के विकास के साथ 'अस्तित्ववाद' भी नये परिप्रेक्ष्य में नवस्वच्छन्दतावाद से जुड़ता है। इस प्रकार स्वच्छन्दतावाद एवं यथार्थवाद का समन्वित चिंतन मनोवैज्ञानिक समाजवादी एवं अस्तित्ववादी परिप्रेक्ष्य में जब आध्यात्मिकता से जुड़कर एकरूपता को प्राप्त होता है तो नवस्वच्छन्दतावाद विस्तृत व्याख्या पाकर 'सहज नवस्वच्छन्दतावाद' के रूप में सँवरता है, उभरता है। स्वच्छन्दतावादी चिंतन को पूर्णत्व में वैश्विक संदर्भों में आत्मसात् करने के लिए स्वच्छन्दतावाद को नये संदर्भों में ग्रहण करना होगा क्योंकि सम्पूर्ण विश्व का साहित्य युगों-युगों से कहीं-न-कहीं किसी-न-किसी रूप में स्वच्छन्दतावाद से जुड़ा है वैसे भी स्वच्छन्दतावाद मानवीय अनुभूतियों की ही सहज अभिव्यक्ति है। जीवन एवं जगत् की सहजता, मानवीय इहलौकिकता ही स्वच्छन्दतावादी काव्य की आत्मा है तथा मानव और मानववाद की कल्पना अध्यात्म के अभाव में सम्भव नहीं। मानवीयता की पहचान ही आध्यात्मिकता है और यही आध्यात्मिकता इहलौकिकता है, जो स्वच्छन्दतावादी काव्य की आत्मा है। यही कारण है कि स्वच्छन्दतावादी चेतना वैश्विक ब्रह्माण्डीय चेतना की ही सहजावस्था का दूसरा नाम है जिसमें मानवीय चेतना बहुआयामी संदर्भों में अभिव्यंजित होती है।

ग्रन्थानुक्रमणिका

अमृत राय : नयी समीक्षा, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, 1950 ई०

डॉ० अजब सिंह : आधुनिक काव्य की स्वच्छन्दतावादी प्रवृत्तियाँ, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1975 ई०

– स्वच्छन्दतावाद : छायावाद, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1975 ई०

– नवस्वच्छन्दतावाद, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1987 ई०

– चेतना, शिक्षा एवं संस्कृति, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1997 ई०

यथार्थवाद : पुनर्मूल्यांकन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी, प्रथम संस्करण, 1997 ई०

अम्बादत्त पाण्डेय : आधुनिकता और आलोचना, प्र० सं० 1985 ई०, प्रेम प्रकाशन, दिल्ली

डॉ० इन्द्रनाथ मदान : आधुनिक कविता का मूल्यांकन, हिन्दी भवन, जालन्धर और इलाहाबाद, प्र० सं० मार्च, 1962

– आधुनिकता और हिन्दी आलोचना,

राधाकृष्ण प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली-6 प्र० सं०, 1975

– आधुनिकता और हिन्दी साहित्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं० 1963

डॉ० कुमार विमल : नयी कविता, नयी आलोचना और कला, भारती भवन, पटना, प्र० सं०, 1963

– कला विवेचन, भारती भवन, पटना, प्र० सं०, 1968

– काव्यानुशीलन : आधुनिक-अत्याधुनिक, ज्ञानपीठ, प्रा० लि०, पटना-4

– आधुनिक हिन्दी काव्य, अर्चना प्रकाशन, आरा (बिहार), प्र० सं०, 1964

डॉ० केसरीनारायण शुक्ल : आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत, सरस्वती-मन्दिर, काशी, प्र० सं०, वसन्त पंचमी, सं० 2004

डॉ० कृष्णवल्लभ जोशी : नव्य हिन्दी समीक्षा, ग्रंथम् रामबाग, कानपुर, प्र० सं०, 1966

डॉ० कमलाप्रसाद पाण्डेय : छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, रचना प्रकाशन, 45 ए, खुल्दाबाद, इलाहाबाद,- 1, प्र० सं०, 1962

डॉ० कुन्दनलाल उप्रेती : लोक साहित्य के प्रतिमान, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़, द्वि० सं०, 1980

जयगोपाल त्रिपाठी : असामान्य मनोविज्ञान, प्रकाशक एवं प्रकाशन वर्ष उपलब्ध नहीं।

[illegible] : [illegible]तावादी काव्यधारा का दार्शनिक विवेचन, 1966.

डॉ० डी० एन० श्रीवास्तव : सामाजिक मनोविज्ञान, साहित्य प्रकाशन, आगरा, तृ० सं०, 1989

– आधुनिक असामान्य मनोविज्ञान, साहित्य प्रकाशन, आगरा छ० सं०

देवराहा दिव्य दर्शन : सीवान सत्संग समिति, प्र० सं०, 1984

डॉ० देवराज उपाध्याय : रोमांटिक साहित्य-शास्त्र, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली- 6, प्र० सं०, 1951

– विचार के प्रवाह, मंगल प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण, 1958

– ग्रन्थावली भाग-2, अनुराग प्रकाशन, इलाहाबाद, प्र० सं०, 1982

– मनोवृत्तानुवर्ती आख्यान रचना, वासुदेव प्रकाशन, भोजपुर, बिहार, प्र० सं०, 1977

– कथा साहित्य के मनोवैज्ञानिक समीक्षा सिद्धान्त, सौभाग्य प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 1974

डॉ० दीनानाथ सिंह : काव्य प्रवृत्तियाँ : भारतीय और पाश्चात्य, विजय प्रकाशन, सुडिया, वाराणसी प्र० सं०, 1989

– छायावादोत्तर प्रबन्ध-शिल्प, विजय-प्रकाशन, सुडिया, वाराणसी, प्र० सं०, 1989

डॉ० देवराज : आधुनिक समीक्षा, राज्यपाल एण्ड सन्स, दिल्ली- 6, प्रथम संस्करण, 1954

– छायावाद का पतन, वाणी मन्दिर प्रेस, छपरा, 1947

– प्र० सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : हिन्दी साहित्य कोश, भाग-2, नामवाची शब्दावली, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, वाराणसी, प्र० सं०, संवत् 2020

डॉ० नगेन्द्र : आधुनिक हिन्दी काव्य की मुख्य प्रवृत्तियाँ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली 7, तृ० सं०, अगस्त, 1966

– आस्था के चरण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1968

– विचार और विश्लेषण, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, द्वि० सं०, 1961

– विचार और अनुभूति, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, शरद पूर्णिमा, 1951

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी : आधुनिक साहित्य, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद सं सं०, 2013

– आधुनिक काव्य रचना और विचार, साथी प्रकाशन, सागर, च० सं०, 1969

– नया साहित्य : नये प्रश्न, विद्या मंदिर, ब्रह्मनाला, बनारस सं० सं० 1949

– हिन्दी साहित्य बीसवीं शब्दावली, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण, 1978

– नयी कविता, मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया लि०, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण

डॉ० नामवर सिंह : आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, 15-ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद- 1, चतुर्थ संस्करण, 1968

– इतिहास और आलोचना साहित्य, प्रकाशन-2 डी, मिण्टोरोड, इलाहाबाद, फरवरी, 1962

– कविता के नये प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6, द्वि० सं०

डॉ० नन्दकिशोर नवल : हिन्दी आलोचना का विकास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्र० सं० 1981

डॉ० परशुराम शुक्ल 'बहरी' : आधुनिक हिन्दी काव्य में यथार्थवाद, ग्रंथम्, रामबाग, कानपुर, 1967

डॉ० प्रेमशंकर : हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, मालवीय नगर, भोपाल, प्र० सं०, 1974

– सृजन और समीक्षा, प्रकाशन संस्थान, 4715/21 दयानन्द मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, प्र० सं० 1987

प्रकाशचंद्र गुप्त : नया हिन्दी साहित्य : एक भूमिका, सरस्वती प्रेस, बनारस, 1952

डॉ० पी० आदेश्वर राव : स्वच्छन्दतावादी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, प्रगति प्रकाशन, वैतुल विल्डिंग, आगरा संस्कणा, 1972

डॉ० फूलबिहारी शर्मा : हिन्दी की स्वच्छन्दतावादी समीक्षा, तारामण्डल, अलीगढ़, 1982

डॉ० बच्चन सिंह : आलोचक और आलोचना, प्रकाशन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23 दरियागंज, नई दिल्ली, 18 मार्च, 1988

डॉ० भगवतस्वरूप मिश्र : हिन्दी आलोचना उद्‌भव और विकास, साहित्य सदन, देहरादून, सं० तृतीय, 1972

डॉ० मिथिलेश सिंह : स्वच्छन्दतावादी समीक्षा के नये आयाम, अतुल प्रकाशन, ब्रह्म नगर, कानपुर, प्र० सं०, 1985

डॉ० मक्खनलाल शर्मा : आधुनिक हिन्दी आलोचना एक अध्ययन, साहित्य प्रकाशन, मालीवाडा, दिल्ली सं०, 1968

डॉ० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और सौन्दर्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, दिल्ली, प्र० सं०, 1958

– जयशंकर : वस्तु और कला, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, प्र० सं०, 1968

– सं० हिन्दी आलोचना के आधार स्तम्भ, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1966

– समीक्षा के वातायन, नटराज पब्लिशिंग हाउस, होली मोहल्ला, करनाल, संस्करण 983।

श्री रामधारी सिंह दिनकर : काव्य की भूमिका, उदयाचल, आर्यकुमार रोड, पटना- 4, प्र० सं०, 1958

– 'चक्रवाल' उदयाचल, आर्यकुमार रोड, पटना-4, प्र० सं०

– शुद्ध कविता की खोज : उदयाचल, राजेन्द्र नगर, पटना-4, प्रथम संस्करण, सितम्बर, 1966

आचार्य रामचंद्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, आठवाँ संस्करण

डॉ० रामविलास शर्मा : निराला की साहित्य साधना, द्वितीय खण्ड, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली-6, प्र० संस्करण

– नयी कविता और अस्तित्ववाद, राजकमल प्रकाशन, प्र० सं०1978

डॉ० रामचंद्र प्रसाद : आधुनिक हिन्दी आलोचना पर पाश्चात्य प्रभाव, लोक भारती प्रकाशन, 15-ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1 द्वारा प्रकाशित, प्र० सं०, 1973

डॉ० राजकिशोर कक्कड़ : आधुनिक हिन्दी साहित्य में आलोचना का विकास, एस० चंद्र एण्ड कम्पनी, रामनगर, नई दिल्ली-4, 14 नवम्बर, 1969

डॉ० रामचंद्र तिवारी : हिन्दी का गद्य साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 1968

रामदरश मिश्र : हिन्दी समीक्षा : स्वरूप और संदर्भ, एम को प्रिंटर्स, दिल्ली- 32, प्र० सं०, 1974

डॉ० रांगेय राघव : आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और शृंगार, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली प्र० सं०, 1961

डॉ० रघुवंश : साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र० सं०, 1963

डॉ० राजेन्द्र सिंह : आधुनिक हिन्दी काव्य : ग्रन्थम्, कानपुर, फरवरी, 1966

डॉ० राजेश्वरदयाल सक्सेना : छायावाद : स्वरूप और व्याख्या, अनुसंधान प्रकाशन, 87/259, आचार्य नगर, कानपुर, प्र० सं० 1976

डॉ० रतनकुमार पाण्डेय : सम्पादन, साहित्यसौन्दर्य और संस्कृति, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्र० सं०, 1995

डॉ० रामअवधि द्विवेदी : अंग्रेजी भाषा और साहित्य, प्रकाशन भाषा, सूचना विभाग, उ० प्र०, प्र० सं०, 1960

डॉ० रवीन्द्र सहायक वर्मा : पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव, विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर, 1960

डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय : बीसवीं शताब्दी : हिन्दी साहित्य नये संदर्भ, साहित्य भवन प्रा० लि०, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1966

डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु : हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, त्रयोदश भाग, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, 3 नवम्बर, 1989

डॉ० विजयेन्द्र नारायण सिंह : वक्रोक्ति सिद्धान्त और छायावाद, परिमल प्रकाशन, 743, मोतीलाल नेहरू मार्ग, इलाहाबाद, प्र० सं०, 1971

– अशुद्ध काव्य की संस्कृति में, परिमल प्रकाशन, अल्लापुर, इलाहाबाद, प्र० सं०, 1984

– काव्यालोचन की समस्याएँ, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली

डॉ० वेंकट शर्मा : आधुनिक हिन्दी साहित्य में समालोचना का विकास, कश्मीरी गेट, दिल्ली, प्र० सं० 1962

डॉc विनयमोहन शर्मा : साहित्यान्वेषण, साहित्य सदन, देहरादून, प्रथम संस्करण, 1969

विश्वम्भर 'मानव' : आधुनिक कवि, लोक भारती प्रकाशन, 15-ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-1, द्वि० परिवर्द्धित संस्करण, 1965

– नयी कविता : नये प्रतिमान, लोक भारती प्रकाशन, लोक भारती प्रकाशन, 15-ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद- 1, 1 जनवरी, 1968

डॉ० शिवकुमार मिश्र : यथार्थवाद, दि मैकमिलन कम्पनी आफ इण्डिया, प्र० सं०, 1975

डॉ० शिवकरण सिंह : स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद का तुलनात्मक अध्ययन, किताब महल, इलाहाबाद, तेरहवीं आवृत्ति, सं० 2016

डॉ० शिवकुमार शाण्डिल्य, कौरवी लोकोक्तियाँ, मंगला प्रकाशन, नई दिल्ली -22, 1983

शिवदानसिंह चौहान : आलोचना के सिद्धान्त, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली 1960

– साहित्यानुशीलन, आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली-6, 1955

डॉ० शिवप्रसाद सिंह : आधुनिक परिवेश और नवलेखन, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1970

डॉ० संतोषकुमार तिवारी : छायावादी काव्य की प्रगतिशील चेतना, भारतीय ग्रंथ निकेतन-133, लाजपतराय मार्केट, दिल्ली- 110006

डॉ० सत्येन्द्र : ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन, साहित्यरत्न भण्डार, आगरा, द्वि० सं०, 1957

समीक्षा ठाकुर : संकलन-सम्पादन 'कहना न होगा ' : एक दशक की बातचीत नामवर सिंह के साथ, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, प्र० सं०, 1994

श्री सुमित्रानन्दन पंत : पल्लव, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, आठवाँ सं०, 1967

– आधुनिक कवि, हिन्दी साहित्य सम्मलेन, प्रयाग, सातवाँ संस्करण

सुलेख शर्मा : काव्य-शिल्प के आयाम, आदर्श साहित्य प्रकाशन, दिल्ली- 7, प्र० सं०, 1971

डॉ० सुरेशचंद्र गुप्त : आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त, हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली-7, प्र० सं०, 1960

डॉ० सुरेशचंद्र सहगल : नई कविता और उसका मूल्यांकन : आत्मा राम एण्ड संस, दिल्ली, प्र० सं० 1963

सिद्धेश्वरप्रसाद : छायावादोत्तर काव्य, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1966

डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी : हिन्दी साहित्य उसका उद्‌भव और विकास, उत्तरचंद एण्ड सन्स, देहली, 1955

डॉ० हौसिलाप्रसाद सिंह : प्रगतिशील हिन्दी आलोचना की रचना, प्रक्रिया, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी-1, प्रथम संस्करण।

डॉ० त्रिभुवन सिंह : आधुनिक हिन्दी की स्वच्छन्दधारा, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी-1, द्वि० सं०

डॉ० हरिश्चंद्र वर्मा : कवि तरुण का काव्य-संसार, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, प्र० सं०, 1994

डॉ० हरिचरण शर्मा : नयी कविता : नये धरातल, पद्‌म प्रकाशन, जयपुर, प्र० सं०, 1969

इतिहास

आधुनिक हिन्दी साहित्य : **डॉ० कृष्णलाल,** हिन्दी परिषद् प्रकाशन विश्वविद्यालय, प्रयाग, चतुर्थ सं०, 1965

हिन्दी साहित्य का इतिहास : **आचार्य रामचंद्र शुक्ल,** काशी नागरी प्रचारिणी सभा, आठवाँ संस्करण

हिन्दी साहित्य उसका उद्‌भव एवं विकास : **डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी,** उत्तरचंद एण्ड संस, देहली, 1955

हिन्दी साहित्य की प्रवृत्तियाँ : **डॉ० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल,** विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा अष्टम सं०, 1971

हिन्दी साहित्य का बृहद् इतिहास, चतुर्दश भाग : **डॉ० हरवंश लाल शर्मा,** काशी नागरी प्रचारिणी सभा, प्र० सं० 1

हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (दशम भाग) : **सं० डॉ० नगेन्द्र,** नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, प्र० सं० ।

हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (षष्ठ भाग) : सं० **डॉ० नगेन्द्र,** नागरी प्रचारिणी काशी, काशी, संस्करण, 2015 वि० ।

हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल : **डॉ० जयकिशन प्रसाद खण्डेलवाल,** विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, तृतीय संस्करण, 1969

हिन्दी का सामयिक इतिहास : **आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र,** वाणी वितान, काशी, प्रयाग

भारतीय संस्कृति का इतिहास (प्राचीन काल से आधुनिक काल तक) : **दिनेशचंद्र भारद्वाज** विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, प्र० सं०, 1962

कोश

बृहत हिन्दी कोश : सं० **कालिका प्रसाद,** ज्ञान मण्डल लि० वाराणसी, तृतीय संस्करण

वृहत् अंग्रेजी-हिन्दी कोश, भाग 1, 2 **डॉ० हरदेव बाहरी**- ज्ञान मण्डल लि०, वाराणसी, 1969

मानविकी पारिभाषिक कोश साहित्य खण्ड : सं० **डॉ० नगेन्द्र,** राजकमल प्रकाशन, प्रा० लि०, दिल्ली, 1965

साहित्यशास्त्र का पारिभाषिक शब्दकोश : **राजेन्द्र द्विवेदी,** आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 1955

हिन्दी साहित्य कोश, भाग-1 (पारिभाषिक शब्दावली) : **डॉ० धीरेन्द्र वर्मा,** ज्ञान मण्डल लि०, द्वि० सं०

नालन्दा विशाल शब्द-सागर, सं० **नवल जी,** न्यू इम्पीरियल बुक डिपो, नई सड़क, देहली,

प्रथम संस्करण, संवत् 2007

डॉ० राजपाल हिन्दी शब्दकोश : **डॉ० हरदेव बाहरी** : राजकमल एण्ड संस, कश्मीरी गेट, आठवाँ सं०, 1994

पत्र-पत्रिकाएँ

अवन्तिका : काव्यालोचनांक, जनवरी, 1954, नवम्बर, 1955, अप्रैल, 1956

आलोचना : जनवरी, 1953, दिसम्बर, 1970, मार्च, 1971, दिसम्बर, 1966, अप्रैल-जून, 1973

ज्योत्स्ना : पटना, नवम्बर, 1985, अगस्त, 1987, जुलाई, 1988, अप्रैल 1991

नई धारा, पटना, जून, 1970, फरवरी, मार्च, 1989, फरवरी, मार्च, 1997

नागरी पत्रिका, अगस्त-दिसम्बर, 1975, मार्च-अप्रैल, 1975, जून-जुलाई, 1975

निरन्तर, वर्ष 1, अंक 15-16

संभावना, शोध-तंत्र विशेषांक, वर्ष 3, अंक 5-6

सन्मार्ग, दैनिक पत्र, कलकत्ता, 22 अगस्त, 1979

युगसाक्षी, लखनऊ, वर्ष 8, अंक 3, जुलाई-सितम्बर, 1994

सरस्वती, जून, 1921

साहित्य धर्मिता, दिसम्बर, 1986

साप्ताहिक हिन्दुस्तान, 10 मार्च, 1968, 10 फरवरी, 1974

धर्मयुग, 6 अगस्त, 1967, 13 अगस्त, 1967

ज्ञानपीठ पत्रिका, जून, 1969

श्री देवराहा बाबा दिव्य आलोक : देवराहा दिव्य प्रकाशन, श्री देवराहा बाबा समाधि स्थल दिव्य मचान, गुरुपूर्णिमा, 1995

ENGLISH BOOKS

1. Aesthetics and Poetics : **Yuri Bara Bash,** Moscow, 1977

2. A History of Modern Criticism (The Romantic Age) : **Rene Welleck,** London, 1961

3. An Introduction to abnormal psychology, **V.E. Fisher,** 1948

4. A General Introduction to psychoanalysis, **F. Freud,** N.Y. Garden City, Books, 1948

5. Biographia Literaria : **S. T. Coleridge,** London, 1949

6. Concept of Criticism : **Rene Welleck,** Yale University Press, London, 1965

7. Element of Folk Psychology : **W. Wundt.** Macmillian Company, 1921

8. Imagination : **E. J. Farlong George,** Allen & Unwin, N.Y. 1961

9. Interpreting Personality Theories : **L. J. Bischof. Harper & Row,** N. Y. 1964

10. Lyrical Ballads : Ed. **R.L. Brettons,** A.R. Jones, 1963

11. Literature and Life Ed. **V.V. Mikhailovski** (A selected writings of Maxim Gorki), Hutchison International Authors Ltd., N.Y. 1946

12. New Humanism : A Manifesto : **M.N. Roy,** Ajanta Publisher, Delhi, 1981

13. On Literature and Art : **Karl Marx and F. Engels,** Progress Publication, Moscow, 1978

14. Psychodynamics of Abnormal Psychology : **J.S. Brow,** N.Y. Mc. Grow. Hill, 1960

15. Romantic Image : **Frank Dermode Kegan Paul,** London, 1957

16. Romanticism Reconsidered : Edited by **Northrop Frye,** Columbia University Press, U.S.A., 1963

17. Realism and Nationalism : **Robert C. Binkley, Harper and Row,** N.Y., 1935

18. Romanticism in Perspective : **Lilan, r. Furst, Macmillan,** London, New York, 1969

19. Romance and Realism : A Study in English Bourgeois, Literature, By **Chirostopher Caudwell.**

20. Studies in European Realism : **George Lukcas,** Hil way, London, 1950

21. The Romantic Imagination : **C.M. Bowra,** Oxford University, Press, London, 1961

22. The Mirror and the Lamp : **H. M. Abrams,** Oxford University Press, London, 1953

23. Theories of Personality : **Hall and Lindzey, John Wiley & Sons**, Inc., 1972

24. Text Book of Abnormal Psychology, **N.Y. Harper**, 1951

25. The Novel and the People : **R. Fox**, Foreign Language Press, 1954

ENGLISH JOURNAL AND MAGAZINES

Studies in Romanticism : Editor W.H. Stevenson.

Volume 12 No. 1 Winter, 1973

Volume 12 No. 2 Spring, 1973

Volume 12 No. 3 Summer, 1973

Volume 12 No. 4 Fall, 1978

Volume 17 No. 4 Fall, 1978

Volume 17 No. 3 Summer, 1978

Volume 19 No. 1 Spring, 1980

Volume 21 No. 4 Winter, 1982

The Twentieth Century Literature : Volume-24, Summer, No. 2, 1978